Table of Contents

किताब के बारे में
शीर्षक पेज
समर्पण
अंतर्वस्तु
लघुरूप
प्रकाशक का नोट
सह-लेखक का नोट
1. भ्रष्टाचार का इतिहास
2. सीबीआई की स्थापना
सिक्किम में एक संक्षिप्त प्रवास: 1979
एक राजनेता का सामना करना: 1993
कामकाज सीखना: 1963
प्रधानमंत्री के हस्ताक्षर की जालसाजी: 1967
एक अंदरूनी साजिश: 1968
ट्रेन विस्फोट: 1993
सिकंद हत्याकांड: 1982
3. गौरवशाली दिन, अंधकारमय दिन
भारतीय जीवन बीमा निगम घोटाला: 1957
जयंती धर्म तेजा, असली विजय माल्या
भ्रष्टाचार के आरोप में जेल जाने वाला पहला नौकरशाह: 1953
भ्रष्टाचार के आरोप में जेल जाने वाले पहले केंद्रीय मंत्री: 1951
बिरला टेक्सटाइल्स घोटाला: 1975
Arrest of Minister Kalpnath Rai: 1996
4. पतन की शुरुआत
अरुण शौरी, कमल नाथ और एक लीपापोती: 1989
हवाला घोटाले की सच्चाई: 1991
Krishnamurthy Saga: 1992
आपातकाल और शाह आयोग की रिपोर्ट: 1977
सैयद मोदी हत्याकांड: 1988
यूरिया घोटाला: 1995
5. सीबीआई के पास दिल और आत्मा है।
संजय दत्त मामला: 1993
युद्ध छेड़ने के आरोपों को हटाना: 1993
याकूब मेमन की फांसी: 2015
अनीस इब्राहिम फाइल्स: 1993
घटनाक्रम: मुंबई बम धमाकों का मामला: 1993

ऑपरेशन ब्लू स्टार: 1984
Khandelwal and Harshad Mehta: 1993
जिंक कॉर्पोरेशन मामला: 1990
6. बिल्कुल निचले स्तर पर पहुंचना
सोहराबुद्दीन-कौसर बी जुड़वां हत्याकांड: 2005
आगे का रास्ता?
7. एक जासूस के दिमाग से
सिकंद हत्याकांड पर और अधिक जानकारी: 1982
गोल्ड मोहर चेज़: 1987
जनरल वैद्य की हत्या: 1986
एक और भाग्यशाली सफलता
प्यार, जुनून और अपराध
अपराध और दंड
एक बैंक डकैती और एक बड़ी सफलता: 1987
एक कम चुना हुआ रास्ता: 1987
प्रतिभूति घोटाले में आरबीआई गवर्नर की भूमिका
एक हिट फिल्म का निर्देशन: 1965
एक अनकही कहानी: 1972
8. एलजी के पुलिस सलाहकार ने बात की
9. यात्रा डायरी
अंतिम शब्द: एक युद्धघोष
लेखक के बारे में
कॉपीराइट

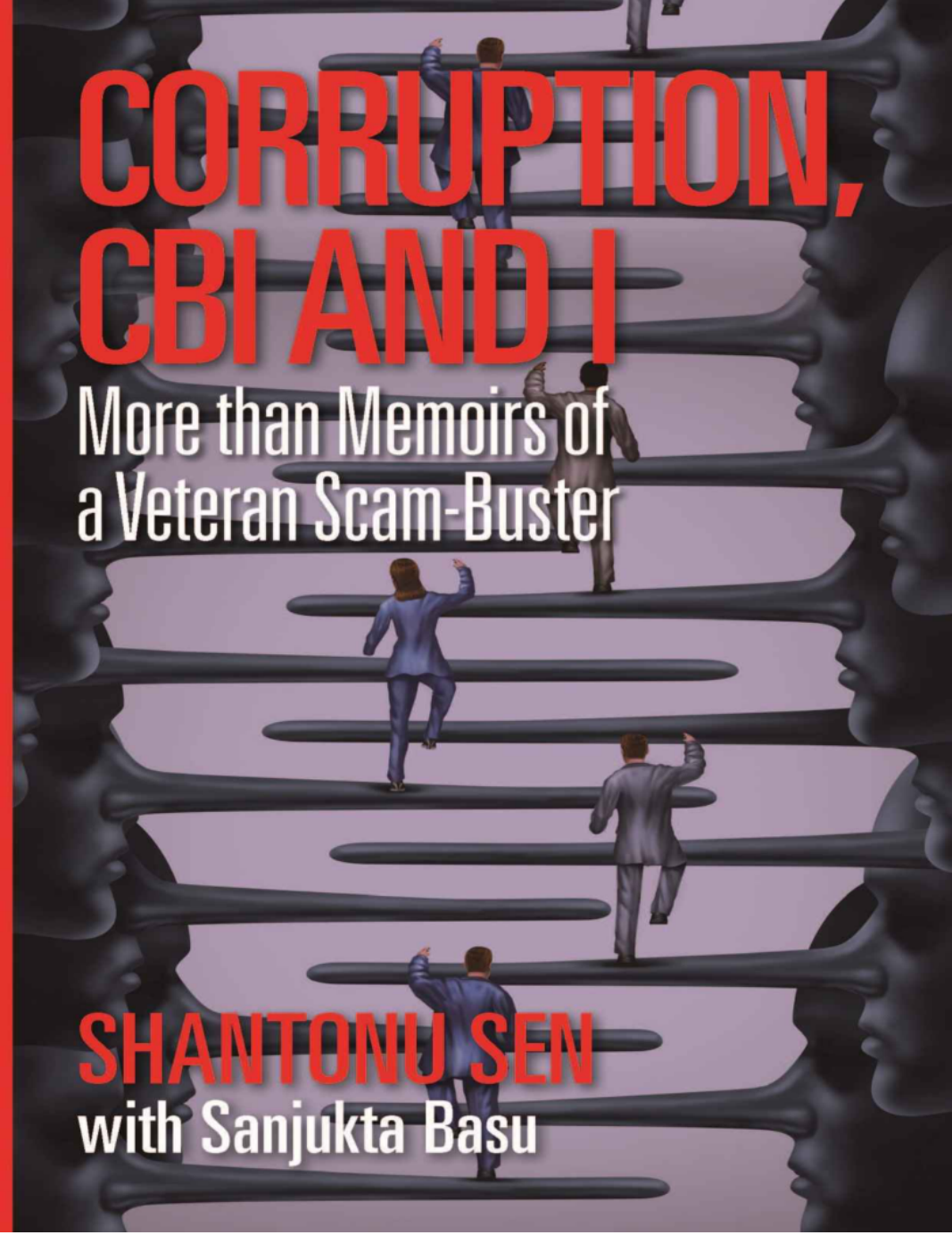
CORRUPTION, CBI AND I
More than Memoirs of a Veteran Scam-Buster
SHANTONU SEN
with Sanjukta Basu

Table of Contents

किताब के बारे में
शीर्षक पेज
समर्पण
अंतर्वस्तु
लघुरूप
प्रकाशक का नोट
सह-लेखक का नोट
1. भ्रष्टाचार का इतिहास
2. सीबीआई की स्थापना
सिक्किम में एक संक्षिप्त प्रवास: 1979
एक राजनेता का सामना करना: 1993
कामकाज सीखना: 1963
प्रधानमंत्री के हस्ताक्षर की जालसाजी: 1967
एक अंदरूनी साजिश: 1968
ट्रेन विस्फोट: 1993
सिकंद हत्याकांड: 1982
3. गौरवशाली दिन, अंधकारमय दिन
भारतीय जीवन बीमा निगम घोटाला: 1957
जयंती धर्म तेजा, असली विजय माल्या
भ्रष्टाचार के आरोप में जेल जाने वाला पहला नौकरशाह: 1953
भ्रष्टाचार के आरोप में जेल जाने वाले पहले केंद्रीय मंत्री: 1951
बिरला टेक्सटाइल्स घोटाला: 1975
Arrest of Minister Kalpnath Rai: 1996
4. पतन की शुरुआत
अरुण शौरी, कमल नाथ और एक लीपापोती: 1989
हवाला घोटाले की सच्चाई: 1991
Krishnamurthy Saga: 1992
आपातकाल और शाह आयोग की रिपोर्ट: 1977
सैयद मोदी हत्याकांड: 1988
यूरिया घोटाला: 1995
5. सीबीआई के पास दिल और आत्मा है।
संजय दत्त मामला: 1993
युद्ध छेड़ने के आरोपों को हटाना: 1993

याकूब मेमन की फांसी: 2015
अनीस इब्राहिम फाइल्स: 1993
घटनाक्रम: मुंबई बम धमाकों का मामला: 1993
ऑपरेशन ब्लू स्टार: 1984
Khandelwal and Harshad Mehta: 1993
जिंक कॉर्पोरेशन मामला: 1990
6. बिल्कुल निचले स्तर पर पहुंचना
सोहराबुद्दीन-कौसर बी जुड़वां हत्याकांड: 2005
आगे का रास्ता?
7. एक जासूस के दिमाग से
सिकंद हत्याकांड पर और अधिक जानकारी: 1982
गोल्ड मोहर चेज़: 1987
जनरल वैद्य की हत्या: 1986
एक और भाग्यशाली सफलता
प्यार, जुनून और अपराध
अपराध और दंड
एक बैंक डकैती और एक बड़ी सफलता: 1987
एक कम चुना हुआ रास्ता: 1987
प्रतिभूति घोटाले में आरबीआई गवर्नर की भूमिका
एक हिट फिल्म का निर्देशन: 1965
एक अनकही कहानी: 1972
8. एलजी के पुलिस सलाहकार ने बात की
9. यात्रा डायरी
अंतिम शब्द: एक युद्धघोष
लेखक के बारे में
कॉपीराइट

किताब के बारे में

शांतनु सेन के लेखन में तात्कालिकता और तात्कालिकता का भाव दोनों ही झलकते हैं। पिछले 50 वर्षों में हमने अखबारों में जिन घटनाओं के बारे में पढ़ा है, उनकी पृष्ठभूमि केवल एक सुसंस्कृत व्यक्ति, अटूट सत्यनिष्ठा और मानवता के धनी अधिकारी द्वारा ही लिखी जा सकती है। वे सफलताओं पर संतोष के साथ-साथ संकीर्ण मानसिकता वाले लोगों द्वारा बाधित कार्यों पर भी शांति से विचार कर सकते हैं। उनकी निडरता युवाओं को प्रेरित करेगी, जिन्हें उनसे यह सीखने की आवश्यकता है कि "कानून के शासन को स्थापित करने वाला हर छोटा कार्य राष्ट्र के महान निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।"

— Narayani Gupta

जामिया मिलिया इस्लामिया में इतिहास के पूर्व प्रोफेसर

यह एक बेहद रोमांचक उपन्यास है, इसमें कोई शक नहीं! शुरुआत में किसी अनभिज्ञ पाठक को लग सकता है कि यह किसी जासूस का एक और साहित्यिक प्रयास है जो नीरस और उबाऊ होगा। लेकिन उसकी यह गलतफहमी जल्द ही दूर हो जाएगी। जेफरी आर्चर जैसे माहिर लेखक की तरह, शांतनु सेन सीबीआई के तथ्यों और इतिहास को कुशलतापूर्वक मिलाकर यह कहानी बयां करते हैं कि कैसे यह संस्था एक बेहतरीन जांच एजेंसी के रूप में विकसित हुई। उनकी लेखन शैली में वह अंतर्दृष्टि झलकती है जो केवल सीबीआई के सीधे भर्ती हुए अधिकारी को ही मिल सकती है। फिर भी, यह सीबीआई की उपलब्धियों का नीरस और उबाऊ वर्णन मात्र नहीं है। एक कुशल कहानीकार की शैली में, सेन सफलता और असफलता, साजिशों, राजनेताओं और बदमाशों, भ्रष्ट और ईमानदार दोनों की कहानियों को इस तरह से पिरोते हैं कि अपराध कथा लेखकों को भी चुनौती मिल सकती है। सेन एक प्रतिभाशाली कथाकार हैं और उनके पास कहानियों का भंडार है। उनकी अगली किताब का बेसब्री से इंतजार है।

— प्रणब रंजन दासगुप्ता

भारतीय प्रशासनिक सेवा के सेवानिवृत्त अधिकारी शांतनु सेन के लंबे अनुभव और शासन की पेचीदगियों से भरी चुनिंदा कहानियाँ, जो रोचक किस्सों और टिप्पणियों से सजी हैं, पाठकों के दिलों और दिमागों को अवश्य छू लेंगी। अगर कोई अपनी अंतरात्मा को बंद न कर ले, तो सीबीआई की ये कहानियाँ, जो उनके लंबे अनुभव और शासन की पेचीदगियों से गहराई से परिचित होने के बाद चुनी गई हैं, न केवल लोगों को इस कड़वी सच्चाई से रूबरू कराती हैं कि सीबीआई उतनी स्वायत्त और शक्तिशाली नहीं है जितना आमतौर पर लोग मानते हैं, बल्कि यह भी बताती हैं कि कैसे दृढ़ संकल्प, प्रतिबद्धता और कल्पनाशीलता के बल पर अधिकारी सच्चाई की खोज में कई बाधाओं, मुश्किलों, तनाव और दबावों को पार करते हैं। जंगल में किसी शाकाहारी जानवर की तरह जो खतरे से बचने के लिए हर समय अपने कान और नाक को सतर्क रखता है, सीबीआई का एक जासूस भी किसी महत्वपूर्ण सुराग पर से ध्यान भटकने के डर से हर पल सतर्क रहता है, जब तक कि मामला पूरी तरह से सुलझ न जाए, जैसा कि इन कहानियों में देखने को मिलता है जो हमारा ध्यान खींचने के लिए एक-दूसरे से होड़ करती हैं।

— एन दिलीप कुमार

भारतीय पुलिस सेवा के सेवानिवृत्त अधिकारी

CORRUPTION, CBI AND I

More than Memoirs of a Veteran Scam-Buster

SHANTONU SEN
with Sanjukta Basu

authors UPFRONT | PARANJOY

कहीं हम इस आदर्श वाक्य को भूल न जाएं

केंद्रीय जांच ब्यूरो

उद्योग, निष्पक्षता और सत्यनिष्ठा

अंतर्वस्तु

प्रकाशक का नोट
सह-लेखक का नोट
1. भ्रष्टाचार का इतिहास
2. सीबीआई की स्थापना
सिक्किम में एक संक्षिप्त प्रवास: 1979
एक राजनेता का सामना करना: 1993
कामकाज सीखना: 1963
प्रधानमंत्री के हस्ताक्षर की जालसाजी: 1967
एक अंदरूनी साजिश: 1968
ट्रेन विस्फोट: 1993
सिकंद हत्याकांड: 1982
3. गौरवशाली दिन, अंधकारमय दिन
भारतीय जीवन बीमा निगम घोटाला: 1957
जयंती धर्म तेजा, असली विजय माल्या
भ्रष्टाचार के आरोप में जेल जाने वाला पहला नौकरशाह: 1953
भ्रष्टाचार के आरोप में जेल जाने वाले पहले केंद्रीय मंत्री: 1951
बिरला टेक्सटाइल्स घोटाला: 1975
Arrest of Minister Kalpnath Rai: 1996
4. पतन की शुरुआत
अरुण शौरी, कमल नाथ और एक लीपापोती: 1989
हवाला घोटाले की सच्चाई: 1991
Krishnamurthy Saga: 1992
आपातकाल और शाह आयोग की रिपोर्ट: 1977
सैयद मोदी हत्याकांड: 1988
यूरिया घोटाला: 1995
5. सीबीआई के पास दिल और आत्मा है।
संजय दत्त मामला: 1993
युद्ध छेड़ने के आरोपों को हटाना: 1993
याकूब मेमन की फांसी: 2015
अनीस इब्राहिम फाइल्स: 1993
घटनाक्रम: मुंबई बम धमाकों का मामला: 1993
ऑपरेशन ब्लू स्टार: 1984
Khandelwal and Harshad Mehta: 1993
जिंक कॉर्पोरेशन मामला: 1990

6. बिल्कुल निचले स्तर पर पहुंचना
सोहराबुद्दीन-कौसर बी जुड़वां हत्याकांड: 2005
आगे का रास्ता?
7. एक जासूस के दिमाग से
सिकंद हत्याकांड पर और अधिक जानकारी: 1982
गोल्ड मोहर चेज़: 1987
जनरल वैद्य की हत्या: 1986
एक और भाग्यशाली सफलता
प्यार, जुनून और अपराध
अपराध और दंड
एक बैंक डकैती और एक बड़ी सफलता: 1987
एक कम चुना हुआ रास्ता: 1987
प्रतिभूति घोटाले में आरबीआई गवर्नर की भूमिका
एक हिट फिल्म का निर्देशन: 1965
एक अनकही कहानी: 1972
8. एलजी के पुलिस सलाहकार ने बात की
9. यात्रा डायरी
अंतिम शब्द: एक युद्धघोष
लेखक के बारे में
कॉपीराइट

लघुरूप

AAP: Aam Aadmi Party BJP: Bharatiya Janata Party BCCI: Board of Control for Cricket in India

बीएसपी: बोकारो स्टील प्लांट, बीएसई: बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज, बीएसएफ: सीमा सुरक्षा बल, सीबीआई: केंद्रीय जांच ब्यूरो, सीएफएसएल: केंद्रीय फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला

CRPF: केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल CVC: केंद्रीय सतर्कता आयोग CPIL: जनहित याचिका केंद्र सीआईडी: आपराधिक जांच विभाग

सीआरपीसी: आपराधिक प्रक्रिया संहिता डीएसपीई: दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान

डीएसपी: पुलिस उपाधीक्षक, ईओडब्ल्यू: आर्थिक अपराध शाखा, ईडी: प्रवर्तन निदेशालय, एफबीआई: संघीय जांच ब्यूरो, एफआईआर: प्रथम सूचना रिपोर्ट, एफईआरए: विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम

INC: भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस IPC: भारतीय दंड संहिता IPS: भारतीय पुलिस सेवा IB: खुफिया ब्यूरो ISI: अंतर-सेवा खुफिया IO: जांच अधिकारी JIC: संयुक्त खुफिया समिति JPC: संयुक्त संसदीय समिति LG: उपराज्यपाल MMTC: भारतीय धातु एवं खनिज व्यापार निगम

विदेश मंत्रालय (MEA), गृह मंत्रालय (MHA), राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन (NDA), राष्ट्रीय उर्वरक लिमिटेड (NFL), राष्ट्रीय तापीय विद्युत निगम (NTPC), तेल एवं प्राकृतिक गैस निगम (ONGC), भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम (PCA), प्रधानमंत्री कार्यालय (PMO), जनहित याचिका (PIL), जनसंपर्क कार्यालय (PRO), पंजाब राष्ट्रीय बैंक (PNB), अनुसंधान एवं विश्लेषण शाखा (RAW), सूचना का अधिकार (RBI), भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (RTI), भारतीय शिपिंग निगम (SCI), विशेष धोखाधड़ी जांच कार्यालय (SFIO), भारतीय स्टेट बैंक (SBI), भारतीय स्टेट ट्रेडिंग निगम (STC), भारतीय इस्पात प्राधिकरण लिमिटेड (SAIL), पुलिस अधीक्षक (SP), आतंकवादी एवं विघटनकारी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम (TADA), आतंकवादी एवं विघटनकारी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम (TADA)

UPSC: संघ लोक सेवा आयोग UPA: संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन WEF: विश्व आर्थिक मंच ZCI: भारतीय जस्ता निगम

प्रकाशक का नोट

एक अनुभवी घोटाले के संस्मरणों से कहीं अधिक

बस्टर

क्या भ्रष्टाचार हमारे समाज समेत हर समाज में व्याप्त है? जब तक मनुष्य अपनी आवश्यकता और लालच में अंतर नहीं कर पाता, जब तक सत्ता में बैठे लोग अपने विवेकाधिकार का दुरुपयोग करते हैं और जब तक निर्वाचित प्रतिनिधि उन लोगों को, जिन्होंने उन पर भरोसा जताया है, स्वामी नहीं बल्कि सेवक समझते हैं, तब तक किसी भी समाज से भ्रष्टाचार को कम करना (पूरी तरह से मिटाना तो दूर की बात है) असंभव है। लेकिन ऐसे देश भी हैं जिन्होंने पारदर्शी शासन प्रणाली स्थापित की है, ऐसे राष्ट्र/राज्य जहां शक्तिशाली लोग अपने अधीन लोगों के प्रति अपेक्षाकृत अधिक जवाबदेह हैं, और जहां धनी और प्रशासन चलाने वाले लोग जनता के आक्रोश और निंदा का सामना किए बिना अपनी मनमानी नहीं कर सकते। भारत निश्चित रूप से ऐसे देशों में शामिल नहीं है। विश्व भर के कई राष्ट्र कानून के शासन को बेहतर ढंग से लागू करने और आपराधिक न्याय प्रणाली को अपेक्षाकृत अधिक निष्पक्ष और संतुलित तरीके से संचालित करने में सक्षम रहे हैं, जितना कि हम इस देश में अभी तक नहीं कर पाए हैं।

यह पुस्तक उन सभी को अवश्य पढ़नी चाहिए जो भ्रष्टाचार के जटिल कारणों को समझना चाहते हैं, न केवल अकादमिक या सैद्धांतिक दृष्टिकोण से, बल्कि अपराध और भ्रष्टाचार के खिलाफ एक अनुभवी योद्धा के नजरिए से। शांतनु सेन ने केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) में 33 वर्षों तक सेवा की, जिसे भारत की 'प्रमुख पुलिस जांच एजेंसी' माना जाता है, और संगठन से संयुक्त निदेशक के वरिष्ठ पद से सेवानिवृत्त हुए। वे अपने विषय को भलीभांति जानते हैं क्योंकि उनका अनुभव उनके लिए महत्वपूर्ण है। उन्होंने न केवल संगठन की कई उपलब्धियों और सफलताओं में व्यक्तिगत रूप से भाग लिया है, बल्कि उन्होंने सीबीआई के पतन को भी देखा है, जो एक ऐसी एजेंसी बन गई है जिसमें ईमानदारी, निष्ठा और लगन से अपने कर्तव्यों का पालन करने में विफल रहने वाले व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक रही है और अभी भी है, ऐसे व्यक्ति जिन्होंने जघन्य अपराधों को नजरअंदाज किया है, प्रक्रियाओं में हेरफेर किया है, कानून की खामियों का फायदा उठाया है और अपने राजनीतिक और नौकरशाही आकाओं को खुश करने के लिए हर संभव प्रयास किया है।

सेन उन पहले अधिकारियों में से थे जिनकी भर्ती संघ लोक सेवा आयोग (यूपीएससी) के माध्यम से सीधे सीबीआई में हुई थी। अपने कई पूर्व सहकर्मियों के विपरीत, जो भारतीय पुलिस सेवा (आईपीएस) में राज्य सरकारों के कैडरों से संबद्ध थे, वे राजनीतिक दबावों से कुछ हद तक मुक्त थे। उन्होंने व्यक्तिगत रूप से कुछ सबसे संवेदनशील और सनसनीखेज आपराधिक मामलों की जांच की, जो दशकों से सुर्खियों में छाए रहे हैं, कभी-कभी कई महीनों और वर्षों तक।

इन जांचों में जून 1984 में पंजाब के स्वर्ण मंदिर परिसर में भारतीय सेना द्वारा चलाए गए ऑपरेशन ब्लू स्टार के बाद की कार्रवाई से संबंधित जांच शामिल हैं (जिसके परिणामस्वरूप उसी वर्ष अक्टूबर में प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या हुई थी), साथ ही ऑपरेशन का नेतृत्व करने वाले जनरल ए.एस. वैद्य की 1986 में पुणे में हुई हत्या की जांच भी शामिल है। 1984 से

1992 के बीच पंजाब में आतंकवाद विरोधी विभाग के प्रभारी उप महानिरीक्षक के रूप में, सेन ने कई अलगाववादियों और उग्रवादियों की जांच की और उन पर मुकदमा चलाया, जिन पर पारंपरिक और हिंसक अपराधों का आरोप था।

उनके द्वारा जांचे गए सबसे सनसनीखेज मामलों में से एक अपराध और जुनून का मामला था: 1988 में भारत के सबसे प्रसिद्ध बैडमिंटन खिलाड़ियों में से एक सैयद मोदी की हत्या और उनके, उनकी अलग रह रही पत्नी अमीता और राजनेता संजय सिंह के बीच त्रिकोणीय संबंध। इसी तरह सनसनीखेज लेकिन कम चर्चित मामला दिल्ली के एक धनी व्यवसायी की हत्या थी, जिसकी साथी ने अपने पति को छोड़ दिया था, जो एक उच्च पदस्थ सेना अधिकारी थे। सेन इन मामलों की निष्पक्षता से चर्चा करते हैं और इस प्रक्रिया में देश की आपराधिक न्याय प्रणाली की खामियों और सीमाओं को भी उजागर करते हैं।

जिनकी याददाश्त अच्छी है, और निश्चित रूप से जो भारत के समकालीन इतिहास में रुचि रखते हैं, उनके लिए ये अद्भुत कहानियां हैं कि कैसे एक रंगीन मिजाज शिपिंग टाइकून जयंती धर्म तेजा —जिन्हें लेखक 'असली विजय माल्या' बताते हैं, मेरे स्कूल के साथी जो वर्तमान में लंदन में कानून से भागे हुए हैं—ने 1960 के दशक के मध्य में देश की कानून प्रवर्तन एजेंसियों को कई बार चकमा दिया; कैसे तत्कालीन अविभाजित बिड़ला परिवार के नेतृत्व वाले व्यापार समूह ने कपड़ा निर्माण करते समय करों से बचने की कोशिश की, जिसका खुलासा 1975 में हुआ; कैसे केंद्र सरकार में देश के पहले मंत्री और पहले वरिष्ठ सिविल सेवक को 1950 के दशक की शुरुआत में उन अपराधों के लिए जेल भेजा गया जो आज के मानकों के अनुसार अपेक्षाकृत 'मामूली' अपराध प्रतीत होते हैं; कैसे सीबीआई ने विवादास्पद केंद्रीय मंत्री कल्पनाथ राय को अपराधियों से संबंध होने के कारण गिरफ्तार किया; कैसे भारतीय रेलवे के एक अपेक्षाकृत कनिष्ठ अधिकारी ने प्रधानमंत्री के हस्ताक्षर जाली किए और लगभग बच निकला, और किस प्रकार एक पूर्व शाही परिवार के सदस्य द्वारा देश से दो सबसे मूल्यवान सोने के सिक्के (मोहर) बाहर ले जाए गए।

ये वृत्तांत यहीं समाप्त नहीं होते। सेन के संस्मरण इस पुरानी कहावत को पुष्ट करते हैं, 'सत्य कल्पना से भी विचित्र होता है।' इनमें कई रोचक किस्से हैं, जैसे कि 1993 में फिल्म स्टार संजय दत्त को अवैध रूप से हथियार रखने के आरोप में जेल जाना पड़ा; दिसंबर 1992 में उत्तर प्रदेश के अयोध्या स्थित फैजाबाद में हिंदू कट्टरपंथियों द्वारा बाबरी मस्जिद को ध्वस्त किए जाने के बाद हुए बॉम्बे (मुंबई) विस्फोटों की जांच; देश भर में ट्रेनों में हुए कम चर्चित सिलसिलेवार बम विस्फोट; 1991 के जैन हवाला डायरी कांड की अंदरूनी कहानी, जिसे सीबीआई के अंदरूनी सूत्रों ने कथित तौर पर कुछ बड़े राजनेताओं की संलिप्तता के कारण 'जानबूझकर' दबा दिया था; 2015 में याकूब मेमन को फांसी दिए जाने के बारे में; और 2005 में सोहराबुद्दीन और उनकी पत्नी कौसर बी की मुठभेड़ में हुई हत्याओं का मामला।

कई वर्षों तक सेन ने आर्थिक अपराधों की जांच की और इनमें से कुछ मामलों का विस्तृत वर्णन पुस्तक में किया गया है। देश के केंद्रीय बैंक और सर्वोच्च मौद्रिक प्राधिकरण, भारतीय रिज़र्व बैंक के तत्कालीन गवर्नर एस. वेंकिटारमनन की 1992 के प्रतिभूति घोटाले में कथित संलिप्तता,

जिसका नेतृत्व स्टॉक ब्रोकर हर्षद मेहता ने किया था, एक ऐसा ही मामला है, साथ ही घोटालेबाज के प्रभावशाली चार्टर्ड अकाउंटेंट (सीए) एमडी खंडेलवाल से संबंधित विवरण भी इसमें शामिल है। सेन ने कभी भी प्रभावशाली लोगों से भिड़ने से परहेज नहीं किया और ऐसे ही एक व्यक्ति थे वरिष्ठ टेक्नोक्रेट और योजना आयोग के पूर्व सदस्य वी. कृष्णमूर्ति - उन पर और उनके बेटों पर, जो मेहता से भी जुड़े थे, सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों के साथ वित्तीय लेनदेन में विभिन्न अनियमितताओं का आरोप लगाया गया था।

व्यक्तिगत तौर पर

यहां एक किस्सा सुनाया जा रहा है। सेन से मेरी पहली मुलाकात तब हुई जब वे कृष्णमूर्ति के मामलों की जांच कर रहे थे। यह 1992 का मध्य था और मैं उस समय दैनिक समाचार पत्र 'पायनियर' के व्यापार एवं अर्थव्यवस्था अनुभाग का प्रभारी पत्रकार था, जिसका संपादन विख्यात विनोद मेहता कर रहे थे। मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि सीबीआई के एक संयुक्त निदेशक मुझसे मिलना चाहते हैं। यह घटना तब हुई जब मैंने कृष्णमूर्ति से जुड़े विभिन्न विवादों पर एक लेख लिखा था, जो केंद्रीय राज्य मंत्री के पद पर योजना आयोग में वरिष्ठ अधिकारी बनने से पहले उनके साथ जुड़े थे, विशेष रूप से देश की सबसे बड़ी सार्वजनिक क्षेत्र की इस्पात निर्माता कंपनी, स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड (एसएआईएल) के प्रमुख के रूप में उनके कार्यकाल पर। कुछ साल पहले, मैंने कृष्णमूर्ति पर 'इंडिया टुडे' पत्रिका के लिए एक लेख लिखा था, जिसके लिए मैं 1980 के दशक के उत्तरार्ध में काम करता था। यह लेख इस्पात मंत्रालय के एक वरिष्ठ सिविल सेवक द्वारा दी गई विस्तृत जानकारी पर आधारित था, इस शर्त पर कि मैं उनकी पहचान उजागर नहीं करूंगा।

जब मैंने कृष्णमूर्ति से मिलने का अनुरोध किया, तो वे मेरे द्वारा SAIL के अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक के रूप में लिए गए उनके कुछ निर्णयों के बारे में जुटाई गई जानकारी को देखकर स्पष्ट रूप से आश्चर्यचकित रह गए। उन्होंने व्यंग्यपूर्वक पूछा कि क्या मैं उद्योग भवन (जहाँ इस्पात मंत्रालय का मुख्यालय है) में उनके बारे में शोध करने में कई दिन बिता रहा था। मेरा उन्हें यह बताने का साहस नहीं हुआ कि मैंने उस भव्य सरकारी इमारत में केवल कुछ घंटे ही बिताए थे, और मंत्रालय में उनके आलोचकों ने उनके बारे में एक विस्तृत दस्तावेज़ तैयार किया था। कृष्णमूर्ति ने मेरे द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर दिए और मैंने आगे बढ़कर अपनी कहानी प्रकाशित कर दी।

नई दिल्ली के लोदी रोड स्थित केंद्रीय सरकारी कार्यालय (सीजीओ) परिसर में सीबीआई मुख्यालय वाली पुरानी इमारत में प्रवेश करते ही मेरे मन में यह सवाल उठा कि यातना कक्ष कहाँ स्थित होंगे। सेन ने मुझे अपने विशाल कार्यालय में चाय पिलाई और अपने सौहार्दपूर्ण व्यवहार से मेरा दिल जीत लिया। एक वरिष्ठ पुलिस अधिकारी द्वारा एक अपेक्षाकृत कनिष्ठ पत्रकार पर बरसाए गए इस सम्मान से मैं बेहद प्रसन्न हुआ। स्पष्ट रूप से उन्होंने मुझसे मिलने से पहले उस प्रभावशाली टेक्नोक्रेट पर मेरे लिखे लेख को पढ़ा था। उन्होंने कृष्णमूर्ति के बारे में मुझसे गहन पूछताछ शुरू की, मुझसे पूछा कि क्या मेरे पास साझा करने के लिए कोई दस्तावेज हैं और उनके दोनों बेटों से जुड़ी कंपनियों के बारे में भी सवाल किए। मेरे पास उन्हें देने के लिए कोई नई

जानकारी नहीं थी। वे एक तरह से मेरे मित्र बन गए। कोलकाता स्थित व्यापार पत्रकार और लेखिका अदिति रॉय घटक (जिनके साथ मैं अभी भी काम करता हूँ) हमारी एक साझा पेशेवर परिचित थीं।

वह एक टेलीविजन कार्यक्रम में आए थे जिसे मैं एंकर करता था और उन्होंने यूरिया घोटाले के बारे में खुलकर बात की थी, जिसमें भारत के पूर्व प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिम्हा राव के बेटे का नाम जुड़ा था। चर्चा की रिकॉर्डिंग के दौरान मौजूद एक अमेरिकी अतिथि इस बात से हैरान थे कि एक शीर्ष पुलिस अधिकारी ने आयात घोटाले के बारे में इतनी बेबाकी से कैसे बात की (जिसका विस्तृत वर्णन पुस्तक में किया गया है)। सेन बाद में नियमित रूप से अखबारों में स्तंभकार बने और भ्रष्टाचार और सीबीआई के कामकाज से जुड़े मुद्दों पर टेलीविजन चर्चाओं में भाग लेने लगे। अक्टूबर 2018 में सीबीआई के दो शीर्ष अधिकारियों, निदेशक आलोक वर्मा और अतिरिक्त निदेशक राकेश अस्थाना के बीच हुए अभूतपूर्व सार्वजनिक विवाद के बाद टेलीविजन चर्चाओं में उनकी काफी मांग बढ़ गई थी। इस विवाद के कारण कुख्यात 'मध्यरात्रि तख्तापलट' हुआ, जिसमें दोनों को भारी प्रचार के बीच उनके पदों से हटा दिया गया। सेन बताते थे कि सीबीआई में शीर्ष अधिकारियों के बीच गुटबाजी और अहंकार के कई मामले सामने आए थे, लेकिन भारत में इससे पहले मीडिया की चकाचौंध में इस तरह का अशोभनीय टकराव कभी नहीं हुआ था। इस अशोभनीय घटना के सीबीआई की पहले से ही धूमिल प्रतिष्ठा पर पड़े प्रभाव से वह बेहद दुखी थे।

कई दशकों तक, मेरी मुलाकात सेन से अक्सर होती रही, कभी-कभी राजधानी के आलीशान दिल्ली जिमखाना क्लब में। या फिर हर्ष सेठी के साथ शानदार लंच पर, जो मासिक पत्रिका 'सेमिनार' के संपादक थे, और प्रख्यात समाजशास्त्री शिव विश्वनाथन के साथ—जिनके साथ उन्होंने 1998 में प्रकाशित पुस्तक 'फाउल प्ले: क्रॉनिकल्स ऑफ करप्शन' को संकलित करने में सहयोग किया था, जिसमें 1947 से 1997 के बीच भारत में हुए भ्रष्टाचार की 18 सच्ची कहानियाँ वर्णित हैं—हम देश में व्याप्त भ्रष्टाचार के इस भयावह माहौल का मुकाबला करने के उपायों पर चर्चा करते थे। सेन हमेशा अपना समय, अपनी जानकारी और अपने विचार साझा करने में उदार थे। वे उन लोगों के प्रति सहिष्णु थे जो उनसे असहमत होते थे, जैसा कि मैं अक्सर होता था, लेकिन कभी भी अप्रिय तरीके से नहीं। उच्च पदों पर भ्रष्टाचार से लड़ने का उनका जुनून उनसे संक्षिप्त या अनौपचारिक मुलाकात करने वाले किसी भी व्यक्ति को स्पष्ट हो जाता था।

संजुक्ता बसु को इस परियोजना में शामिल करना एक तरह का जोखिम था। मैं उनके बारे में ज्यादा नहीं जानता था, बस कभी-कभार सामाजिक समारोहों में उनसे मुलाकात हो जाती थी। मैंने ऑनलाइन पोर्टलों पर प्रकाशित उनके कुछ लेख पढ़े थे। मुझे पता था कि शांतनु सेन को शोध और लेखन में सहायता की आवश्यकता होगी। संजुक्ता एक सहायक से कहीं बढ़कर साबित हुईं। उन्होंने सेन के जीवन और अनुभवों में गहराई से खुद को समाहित कर लिया। एक बाहरी व्यक्ति होने के नाते, उन्होंने पुरानी कहानियों को नए ढंग से प्रस्तुत किया। सह-लेखिका के रूप में, संजुक्ता ने पुस्तक को प्रासंगिकता, संदर्भ, गहराई और परिप्रेक्ष्य प्रदान किया है।

यह पुस्तक एक ऐसे व्यक्ति के संस्मरणों से कहीं अधिक है, जिसने व्यापक यात्रा की है, जो अपराधों के हर प्रकार और प्रकार की पड़ताल करने में माहिर और अनुभवी है। सेन बेशक एक

अनुभवी घोटालेबाज हैं, लेकिन वे इससे कहीं बढ़कर हैं। वे एक दृढ़ निश्चयी व्यक्ति हैं। वे चाहते हैं कि उनके पोते-पोतियां एक बेहतर भारत में रहें, एक ऐसा देश जहां उच्च पदों पर बैठे लोग कम भ्रष्ट हों, जहां आपराधिक न्याय प्रणाली अधिक प्रभावी हो और दोषियों के धनी और शक्तिशाली होने पर आंखें न मूंद ले, और जहां कानून वास्तव में किसी से ऊपर न हो। अपराध और भ्रष्टाचार की इन रोमांचक कहानियों में अंतर्निहित आदर्शवाद ही इस पुस्तक को इतना आकर्षक बनाता है कि इसे पढ़ना शुरू करने के बाद छोड़ना मुश्किल हो जाता है।

परानजॉय गुहा ठाकुरता

फरवरी 2020

सह-लेखक का नोट

जब केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) के पूर्व संयुक्त निदेशक शांतनु सेन ने 1963 में संगठन में कार्यभार संभाला, तब मेरी माँ किशोरावस्था में भी नहीं थीं और मेरे पिता हाई स्कूल में ही थे। मेरे और मेरे मुख्य लेखक के बीच पीढ़ी का अंतर कुछ ऐसा ही है। और मैं उनके साथ घंटों बैठा करता था, उनकी पत्नी द्वारा रसोई से माँ के स्नेह से भेजे गए स्वादिष्ट व्यंजनों का आनंद लेता था, और उनके जीवन की कहानियाँ सुनता था, जो उनकी वास्तविक उम्र से कहीं अधिक पुरानी लगती थीं, चालीस के दशक, पचास के दशक से लेकर नब्बे के दशक तक की। ये ऐसी कहानियाँ थीं जिन्हें मैं नहीं जानता था। मैं एक अलग ही दुनिया में जी रहा था।

दस साल पहले, मैं एक रियल एस्टेट वकील थी। फिर मैं फोटोग्राफर बनी, एक नागरिक समाज संगठन में काम किया और अंत में एक सामाजिक उद्यमी बन गई। मैं एक जगह टिकती नहीं। निजी जीवन, दोस्त, रिश्ते अनिश्चित और अस्थिर हैं। मैं आसानी से विचलित हो जाती हूँ, मेरी आदत है कि मैं बहुत भुलक्कड़ हूँ। लेकिन इन सभी वर्षों में, जब मैं 'आप क्या करते हैं' और 'आप क्या बनना चाहते हैं' जैसे सवालों के जवाब खोजने के लिए संघर्ष कर रही थी, तब भी मैं लिखती रही।

और देखिए, इसने मुझे कहाँ पहुँचा दिया—जयपुर के सबसे प्रतिष्ठित परिवारों में से एक के वंशज के साथ काम करने का अवसर मिला, जिनके पूर्वजों ने आगरा में 1857 के स्वतंत्रता संग्राम को करीब से देखा था, राय बहादुर संसार चंद्र सेन के परपोते, जो भारतीय साम्राज्य के कमांडर (सीआईई) थे और महाराजा माधव सिंह के अधीन जयपुर राज्य के पूर्व दीवान थे। मुझ जैसे बिल्कुल अनभिज्ञ व्यक्ति के लिए, ऐसे व्यक्ति के साथ समय और स्थान साझा करना, जिसका जीवन फिल्मों की कहानियों जैसा है, जिसका इतिहास मेरे जन्म से एक सदी पहले शुरू हुआ था, सचमुच एक अलौकिक अनुभव था, एक ऐसा अनुभव जो मुझे पहले कभी नहीं मिला था।

मैं इस परियोजना में सेन के साथ काम करने के लिए शामिल हुआ ताकि उनकी पहले से लिखी गई एक पुस्तक में कुछ कहानियों को फिर से लिखा जा सके, उनमें उनकी अन्यत्र प्रकाशित रचनाएँ और उनके पेशेवर अनुभवों के बारे में अनकही कहानियाँ जोड़ी जा सकें।

शुरुआत में यह काफी आसान काम लग रहा था। लेकिन मैं गलत था। सबसे पहले, मार्गदर्शन प्रक्रिया के हिस्से के रूप में, मैंने सेन की पहली किताब उठाई और फिर अचानक कुछ असाधारण घटित हुआ। जिस समय-स्थान के निरंतर प्रवाह में मैं था, उसमें एक दरार आ गई। उत्तर-सत्य के युग में एक चौंकाने वाला व्यवधान उत्पन्न हुआ।

मैं एक चलता-फिरता ब्लैक बॉक्स हूँ जो वाईफाई से जुड़े 24x7 लाइव स्ट्रीमिंग फीचर के साथ लगातार अपने पास आने वाली हर तरह की जानकारी को संग्रहित करता रहता है। मैं जो कुछ भी देखता, सुनता, पढ़ता और महसूस करता हूँ, उसे दुनिया के साथ तुरंत साझा करने की मुझमें एक अनियंत्रित इच्छा होती है। जब सेन अपनी कहानियाँ सुनाते थे, तो मैं बेचैन और घबरा जाता था। अक्सर मेरा मन करता था कि मैं दरवाजे से बाहर भाग जाऊँ और दुनिया को चिल्ला कर कहूँ: 'आप लोगों को कुछ पता नहीं है। आप कुछ नहीं जानते।'

सेन की कहानियाँ पाठकों को भारत के समकालीन राजनीतिक विमर्श की हलचल को समझने में

मदद करेंगी। पिछले लगभग एक दशक से भारतीय मीडिया, राजनीतिक विश्लेषक और नागरिक समाज के प्रतिनिधि लगभग हर दिन भ्रष्टाचार, इसे समाप्त करने के तरीके, इससे लड़ने के तरीके और एक तरह की क्रांति के बारे में लगातार शिकायत करते रहे हैं। मध्यम वर्ग के लाखों लोगों ने दशकों पुरानी उदासीनता को त्यागकर 2011 में भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन में अन्ना हजारे का साथ देने के लिए सड़कों पर उतर आए। फिर 2014 में अदम्य नरेंद्र मोदी आए, जिन्होंने 60 महीनों में देश को 60 वर्षों के भ्रष्टाचार और अन्य सामाजिक बुराइयों से मुक्त करने का वादा किया। जैसे-जैसे उनके भाषणों में उनकी आवाज़ बुलंद होती गई, वैसे-वैसे भ्रष्टाचार मुक्त होने की हमारी उम्मीदें भी बढ़ती गईं। 'भारत फिर से महान बनेगा। सीबीआई फिर से महान बनेगी।' हम सपने देखते रहे।

'अरे बस करो।' सेन हमेशा की तरह अपने शाही, सज्जनतापूर्ण और शांत स्वभाव में, और निराशा की एक गहरी भावना के साथ मुझसे कहते थे, 'कोई भी सरकार भ्रष्टाचार की समस्या को कभी हल नहीं कर पाएगी। राजनेता तो इसे करना ही नहीं चाहते। हम जैसे मूर्ख लोग पहले भी इसी वादे पर भरोसा कर चुके हैं, उन्हें निर्वाचित प्रतिनिधि के रूप में चुन चुके हैं, और बार-बार धोखा खा चुके हैं।'

सेन 1963 में सीबीआई की स्थापना के समय ही इसमें शामिल हो गए थे। वे भ्रष्टाचार नियंत्रण में विश्व मानकों के अनुरूप काम करने की आकांक्षा रखने वाले पहले बैच के जासूसों में से एक थे। ब्यूरो का पूर्ववर्ती स्वरूप द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान भ्रष्ट आचरणों को नियंत्रित करने के लिए ब्रिटिश-भारतीय सरकार की एक विशेष पुलिस इकाई थी। 1963 में, इस संगठन का सीबीआई के रूप में पुनर्जन्म हुआ, जिसका मुख्य उद्देश्य नौकरशाही में व्याप्त भ्रष्टाचार से निपटना था।

सेन के समय में सीबीआई एक ऐसी संस्था थी जिससे न केवल भय और सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था, बल्कि सभी उसे प्यार भी करते थे। यह भारत के भ्रष्टाचार-विरोधी हथियारों के जखीरे में सबसे शक्तिशाली हथियार थी। इसके शीर्ष पर सीधे भर्ती किए गए, ईमानदार और निष्ठावान अधिकारी थे जो राजनीतिक प्रभाव से पूरी तरह मुक्त थे और अपने कर्तव्यों का पालन गर्व से करते थे। सेन ने सीबीआई द्वारा संभाले गए कुछ सबसे महत्वपूर्ण मामलों पर तैंतीस वर्षों तक पूरी लगन से काम किया, जिनमें 1984 का ऑपरेशन ब्लू स्टार, दाऊद इब्राहिम द्वारा रचित 1993 के मुंबई बम धमाके, जैन हवाला डायरी, यूरिया घोटाला, सैयद मोदी की हत्या और जनरल ए.एस. वैद्य की हत्या से संबंधित मामले शामिल हैं। उन्होंने कल्पनाथ राय, वी. कृष्णमूर्ति जैसे शक्तिशाली और प्रभावशाली लोगों के साथ-साथ सर्वशक्तिशाली बिड़ला व्यापार साम्राज्य के वंशजों की भी जांच की।

उन्होंने ये कहानियां मुझसे बड़ी खुशी और गर्व से साझा कीं। उन्हें इस संस्था का हिस्सा होने पर गर्व महसूस हुआ। फिर वे निराश हो गए। उन्होंने बड़े दुख के साथ बताया कि कैसे राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण सीबीआई वर्षों से कमजोर होती चली गई। उन्होंने मुझे सीबीआई और नौकरशाही के उच्च अधिकारियों के जटिल तौर-तरीकों से अवगत कराया। उन्होंने मुझे सत्ता के गलियारों में घूमने वाले लोगों और राजनेता-अपराधी गठजोड़ की कार्यप्रणाली के बारे में बताया। यह पुस्तक सीबीआई अधिकारियों की कहानियों से भरी है, जो अक्सर प्रतिकूल परिस्थितियों में

फंस जाते थे और शक्तिशाली लोगों की धमकियों का सामना करते हुए भी दृढ़ रहे। कुछ ऐसे भी थे जो प्रलोभन के आगे नहीं झुके। आप उन लोगों की कहानियां पढ़ेंगे जो एक निर्दयी रोबोट और एक दयालु अधिकारी के बीच संतुलन बनाए रखते थे। उन्होंने पुलिस बल और सीबीआई जैसी जांच एजेंसियों की उन आंतरिक कार्यप्रणालियों को साझा किया जो अक्सर हमें दिखाई नहीं देतीं।

हमने कठुआ में आदिवासी समुदाय की आठ वर्षीय मुस्लिम बच्ची के बलात्कार और हत्या के मामले पर चर्चा की, जिसमें आरोपी जम्मू-कश्मीर पुलिस से डरते थे और सीबीआई जांच चाहते थे। हर पुलिस मामला सीबीआई को नहीं सौंपा जाता, लेकिन आम लोगों को यह नहीं पता होता कि कौन से मामले सौंपे जाते हैं और क्यों। कई लोग इस एजेंसी पर अविश्वास करते हैं। कई लोग इससे डरते हैं। जब आरोपी बरी हो जाते हैं या गंभीर आरोप हटा दिए जाते हैं, तो सीबीआई पर अक्सर घटिया जांच का आरोप लगता है। लेकिन सभी मामले जो हटाए जाते हैं, वे भ्रष्टाचार के कारण नहीं होते। सेन ने खुद 1993 के मुंबई धमाकों के सिलसिले में गिरफ्तार कई लोगों के खिलाफ 'युद्ध छेड़ने' के आरोप हटा दिए थे। उन्होंने कहा, 'यह सही काम था, भले ही यह आम लोगों की भावनाओं के खिलाफ था।'

इससे पहले, उन्होंने 1984 के ऑपरेशन ब्लू स्टार मामले में भारतीय सेना द्वारा अपनाई गई कानूनी स्थिति का विरोध किया था, जिसके लिए उन्हें कोई पछतावा नहीं है।

इसी गंभीर माहौल में हमने मिलकर इस पुस्तक को लिखने का सफर शुरू किया। यह सिर्फ अतीत के सुनहरे किस्से सुनाकर पुरानी यादों में खो जाने या वर्तमान दयनीय स्थिति पर अफसोस जताने की कोशिश नहीं है। न ही यह दिखावा करने के लिए लिखी गई कोई किताब है कि सेन कितने शानदार और कुशल जासूस थे। उनके साथ एक साल तक चले मेरे संवाद में, उन्होंने अपने बारे में बात करने की बिल्कुल भी इच्छा नहीं जताई। यह पुस्तक भ्रष्टाचार की कहानी बयां करने का एक प्रयास है, जो देश की राजनीतिक व्यवस्था को खोखला कर देने वाले कैंसर की तरह है, और सीबीआई को उस भ्रष्टाचार का इलाज करने वाली संस्था के रूप में प्रस्तुत करती है। हर कहानी में जांचकर्ताओं, नौकरशाहों, राजनीतिक नेताओं और नागरिकों की आने वाली पीढ़ियों के लिए सबक छिपे हैं।

इससे मुझे उस आयु अंतर की याद आ गई जिसका जिक्र मैंने पहले किया था। इसने इस पुस्तक का महत्व काफी बढ़ा दिया है। यहाँ सुनाई गई कई कहानियाँ मेरे जन्म से पहले के समय में घटी थीं, कुछ तब घटीं जब मैं बहुत छोटा था। मैंने इन कहानियों को एक नए नजरिए से देखा। उनकी कहानियों में बीते समय की एक सकारात्मक चमक और उमंग थी, जो मेरी पीढ़ी के निराशावादी नजरिए से गुजरी और कई अलग-अलग दृष्टिकोणों में बिखर गई।

साधारण कहानियों से जटिल वृत्तांतों में तब्दील हो गईं। कहानियों को संदर्भ देने के लिए हमने समानांतर समयरेखाओं का उपयोग किया जो समय में आगे-पीछे जाती थीं। अतीत से प्रेरणा लेकर हमने वर्तमान पर विचार किया और भारत में राजनेताओं, अपराधियों और नौकरशाहों के बीच के गठजोड़ पर टिप्पणी प्रस्तुत की।

हाल के वर्षों में, राफेल लड़ाकू विमान सौदे को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (INC) ने प्रमुखता से

उठाया है, जिसके नेताओं ने इसे घोटाला बताया है। हम इस सौदे पर चर्चा करेंगे और आपको दशकों पीछे ले जाकर 1950 के दशक के उन घोटालों की कहानियां सुनाएंगे जो उस समय हुए थे। अगर सरकार राफेल सौदे से संबंधित दस्तावेजों के प्रकाशन को 'फर्जी' बताकर खारिज कर देती है, तो हम आपको याद दिलाते हैं कि 1990 के दशक में जब कांग्रेस सरकार सत्ता में थी, तब इसी तरह के दस्तावेज एक अखबार में प्रकाशित होने पर क्या हुआ था। चीजें जितनी बदलती हैं, उतनी ही वैसी ही रहती हैं। सत्ता में बैठे लोग कभी भी सत्ता छोड़ना नहीं चाहते। वे CBI जैसी संस्थाओं पर अपना नियंत्रण बनाए रखना चाहते हैं। सत्ता के दुरुपयोग के खिलाफ लड़ने वाले अपना काम करते रहते हैं। वही लोग जो आज भारतीय जनता पार्टी (BJP) सरकार के खिलाफ अदालत का दरवाजा खटखटा रहे हैं, पहले कांग्रेस सरकार का पर्दाफाश कर रहे थे।

* * * * *

हर किताब ज्ञान के विशाल सागर में एक बूंद मात्र है। सागर की प्रकृति ही ऐसी है कि उसमें सब कुछ जानना असंभव है। सत्यजीत रे की निराशावादी फिल्म 'हीरक राजार देशे' (1980) में अत्याचारी हीरक ज्ञान की खोज को व्यर्थ बताता है: 'जानने का कोई अंत नहीं, जानने का कोई अंत नहीं' (ज्ञान का कोई अंत नहीं। इसलिए, जानना व्यर्थ है)।

दरबारी उनकी बुद्धिमत्ता को स्वीकार करते हैं और अपने स्वामी के बाद एक स्वर में दोहराते हैं।

लेकिन हमें कोशिश जरूर करनी चाहिए—यह जानने और समझने की कि हमारे जीवन और समाज को बेहतर बनाने के लिए क्या मायने रखता है। अन्यथा, हम कभी भी अपने अधिकारों का लाभ नहीं उठा पाएंगे और नागरिक के रूप में अपना जीवन पूरी तरह से नहीं जी पाएंगे। फिल्म में, हीराक इन पंक्तियों पर जोर देता है ताकि लोगों को ज्ञान प्राप्त करने से रोका जा सके और वह उनका शोषण जारी रख सके। ज्ञान ही शक्ति है, यह बात हर तानाशाह जानता है।

क्या यह पुस्तक भारत के युवाओं को मूल्यवान ज्ञान प्रदान करेगी? बिना किसी अतिशयोक्ति के, मैं पाठकों को आश्वस्त करना चाहता हूँ कि यह पुस्तक केवल ज्ञान प्राप्ति के बारे में नहीं है। यह उत्तर-सत्य ज्ञानमीमांसा या ज्ञान के तरीकों के युग में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन को उजागर करती है।

आदिम मनुष्य हर अज्ञात चीज़ को ईश्वर और प्रकृति से जोड़ते थे। भाषा के जन्म ने मनुष्यों को ज्ञान को दर्ज करने और आगे बढ़ाने की क्षमता प्रदान की। आज हम जिस तरह से चीजों को जानते हैं, शोध और विश्लेषण की प्रक्रिया, ज्ञानोदय के युग से शुरू हुई, जब लोगों ने ईश्वर और धार्मिक व्यवस्थाओं की श्रेष्ठता को अस्वीकार कर दिया और ज्ञान और तर्क प्राप्त करके अपने भाग्य के स्वामी बन गए।

प्रत्यक्षवाद का उदय 18वीं शताब्दी के यूरोप में हुआ, जहाँ ऑगस्टे कॉम्टे, जॉन स्टुअर्ट मिल और हर्बर्ट स्पेंसर जैसे दार्शनिकों ने 16वीं और 17वीं शताब्दियों में यूरोप में हुई वैज्ञानिक क्रांति के कारण विश्व को बहुत अलग-अलग दृष्टिकोणों से देखना शुरू किया। विज्ञान, तर्कशीलता, नास्तिकता, आलोचनात्मक चिंतन और आदर्शवाद का खंडन प्रत्यक्षवाद का आधार बने। प्रत्यक्षवादियों के अनुसार, केवल वही ज्ञान सत्य माना जाता था जिसे देखा, सुना, छुआ, अवलोकन किया, मापा और वैज्ञानिक रूप से पुनरुत्पादित किया जा सके। इसके अलावा,

मानवीय भावनाएँ, अनुभव, रोमांटिकतावाद - इन सभी को ज्ञान निर्माण के दायरे से बाहर रखा गया।

प्रत्यक्षवाद लंबे समय तक ब्रह्मांड को जानने और समझने का आधार बना रहा, जब तक कि आलोचनात्मक यथार्थवाद, उत्तर-आधुनिकतावाद, अधीनस्थ अध्ययन और नारीवादी ज्ञानमीमांसा का उदय नहीं हुआ। इन विचारधाराओं ने वस्तुनिष्ठता, परिमाणीकरण और सत्यापन की सर्वोच्चता को नकार दिया और व्यक्तिपरकता तथा प्रत्येक मनुष्य की वास्तविकताओं को प्रमुखता दी। इन्होंने इस विचार को खारिज कर दिया कि 'संपूर्ण सत्य' या 'शुद्ध ज्ञान' जैसी कोई चीज होती है जिसे जाना जा सकता है, या इसे जानने का केवल एक ही उचित तरीका होता है।

लगभग 2010 के आसपास, राजनीति में उत्तर-सत्य की अवधारणा उभरी। व्यक्तिपरक वास्तविकताएँ इतनी व्यापक हो गईं कि वे किसी भी ज्ञान और कथन को, जो जनभावनाओं के अनुकूल हो, सिद्ध या खंडित करने में असमर्थ हो गईं। जब तक कोई प्रभावशाली नेता, जिसकी जन अपील प्रबल हो, जनता से जुड़ाव स्थापित कर ले, उन्हें अपने भाषण कौशल से प्रभावित कर ले और उन्हें बिना किसी प्रश्न के अपने कथन को स्वीकार करने के लिए राजी कर ले, तब तक हर बात को सत्य मान लिया जा सकता है। सत्य और ज्ञान का साझा मानदंड लुप्त हो गया है। लोग अपने ही विचारों के दायरे में सिमटकर रह रहे हैं और ऐसी किसी भी बात पर विश्वास करने से इनकार कर रहे हैं जो उनकी मूलभूत प्रवृत्तियों को संतुष्ट न करे।

2016 में, 'पोस्ट-ट्रुथ' को ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी द्वारा 'वर्ड ऑफ द ईयर' के रूप में चुना गया था क्योंकि यूनाइटेड किंगडम में यूरोपीय संघ के जनमत संग्रह और संयुक्त राज्य अमेरिका में राष्ट्रपति चुनाव के संदर्भ में इसका उपयोग कई गुना बढ़ गया था, जिसमें डोनाल्ड ट्रम्प सत्ता में आए थे।

उत्तर-सत्य का सीधा अर्थ यह है कि हमारे राजनीतिक नेता हमसे लगातार झूठ बोलते हैं। सिडनी विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जॉन कीन अपने एक निबंध में बताते हैं कि उत्तर-सत्य में 'पुराने जमाने का झूठ बोलना, बकवास करना और मसखरापन' शामिल है, जिसका उद्देश्य 'मुख्यधारा की राजनीतिक चर्चा से जनता का ध्यान आकर्षित करना और/या भटकाना' है। इसमें 'बेतुके पल, चुटकुले, शेखी बघारना, चालाकी भरी बातें, पांडित्य और जानबूझकर की गई अतिशयोक्ति' शामिल हैं और यह जनता को गुमराह करने के समान है, जो आत्ममुग्ध लोगों की पसंदीदा रणनीति है, ताकि उन्हें भ्रमित और विचलित किया जा सके, और उनमें संदेह और असंतोष के बीज बोए जा सकें। उत्तर-सत्य सुनियोजित चुप्पी, वास्तविक मुद्दों से जबरन ध्यान भटकाने और अनकही या न कही जा सकने वाली बातों की प्रकृति से आकार लेता है।

आपके हाथ में मौजूद यह पुस्तक भारत के उत्तर-सत्य वृत्तांत में एक ज़बरदस्त चुनौती है, जहाँ नए नेता लगातार पिछली सरकारों को भ्रष्टाचार और पतन के लिए दोषी ठहराते हैं और दावा करते हैं कि वे उनसे अलग हैं। यह उस धारणा को चुनौती देती है कि नए नेता नायक हैं और पिछले नेता खलनायक थे।

इस पुस्तक को पढ़कर आपको पता चलेगा कि भारत की कहानी, सीबीआई की कहानी, भ्रष्टाचार की कहानी या कोई भी अन्य विषय, कभी भी काले और सफेद रंग के दो हिस्सों में विभाजित

करके नहीं बताया जा सकता है और सच्चाई उत्तर-सत्य से कहीं अधिक जटिल है।

संजुक्ता बसु

फरवरी 2020

नई दिल्ली

1

भ्रष्टाचार का इतिहास

आजकल हम भ्रष्टाचार के बारे में बहुत कुछ सुनते हैं। बेशक,

भ्रष्टाचार किसी भी व्यवस्था को नष्ट कर सकता है। यह हर तरह से बुरा है।

हर दृष्टिकोण—नैतिक, नीतिशास्त्रीय, प्रशासनिक—को ध्यान में रखना चाहिए। हमें प्रयास करना चाहिए।

इसे पूरी तरह से रोकने के लिए।

– जवाहरलाल नेहरू, सार्वजनिक संबोधन में

पणजी (गोवा), 22 मई 1963

एक परीक्षा में शामिल हुए एक छात्र से सिविल इंजीनियरिंग में भूविज्ञान के महत्व को समझाने के लिए कहा गया। उसके उत्तर के लिए उसे बीस में से शून्य अंक मिले। उसका उत्तर कुछ इस प्रकार था, 'भूविज्ञान सिविल इंजीनियरिंग में बहुत महत्वपूर्ण है और इतना महत्वपूर्ण है कि इसके महत्व को शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता, इसीलिए भूविज्ञान सिविल इंजीनियरिंग में महत्वपूर्ण है।'

किसी ने उत्तर पुस्तिका लीक कर दी और वह सोशल मीडिया पर वायरल हो गई, जिसके चलते अगले कुछ दिनों तक खूब हंसी-मजाक चलता रहा। भारतीय राजनीतिक चर्चा में, अगर आप किसी से भी भ्रष्टाचार के बारे में सवाल पूछें, तो आपको लगभग एक जैसा ही जवाब मिलेगा। 'भ्रष्टाचार हमारे देश के लिए बहुत बुरा है; यह इतना बुरा है कि इसे समझाना या खत्म करना मुश्किल है।' भारतीय पीढ़ियों ने लगभग जैन हवाला डायरी, बोफोर्स, 2जी और हाल ही में राफेल जैसे भ्रष्टाचार और घोटालों के चर्चित शब्दों को सुनते हुए ही अपना जीवन व्यतीत किया है। फिर भी, अगर आप उनसे किसी भी मामले को विस्तार से समझाने को कहें, तो आपको लगभग एक जैसा ही जवाब मिलेगा, 'हवाला घोटाला एक बड़ा घोटाला है; और सरकार इसमें बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार में शामिल थी। यह सबसे बड़ा घोटाला है और इसलिए यह बहुत बुरा है।'

अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति ओलिवर डब्ल्यू होम्स ने अपने निबंध 'आदर्श और संदेह' (1915) में इस प्रकार की समझ को इस प्रकार समझाया है: 'एक

अपूर्ण सामाजिक सामान्यीकरण का समूह जिसे भावनाओं के रूप में व्यक्त किया गया है। 1 भ्रष्टाचार की बात होने पर भावनाएँ उग्र हो जाती हैं। ईमानदार, करदाता, कानून का पालन करने वाला और अखबार पढ़ने वाला नागरिक भ्रष्टाचार को पूरी तरह से जाने या समझे बिना ही क्रोधित हो जाता है।

चैम्बर्स ट्वेंटिएथ सेंचुरी डिक्शनरी के अनुसार, 'भ्रष्टाचार' की परिभाषा है: 'किसी चीज़ की पवित्रता को नष्ट करना; उसे सड़ाना; भ्रष्ट, सड़ा हुआ, नकली,' इत्यादि। लेकिन 'भ्रष्टाचार' का शाब्दिक अर्थ समाज की इस विचित्र, स्वतः-परिवर्तित समस्या को पूरी तरह से समझा नहीं सकता—जो राजनीतिक आंदोलनों को गति भी देती है और उन्हें नष्ट भी कर देती है। यहां तक कि भ्रष्टाचार विरोधी संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन (UNCAC), जो एकमात्र कानूनी रूप से बाध्यकारी

सार्वभौमिक दस्तावेज है, भी भ्रष्टाचार को परिभाषित नहीं करता है।

विश्वभर के राष्ट्र—चाहे वे विकसित लोकतांत्रिक देश हों या अफ़्रीका की संकटग्रस्त तानाशाही—अपनी अधिकांश सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के लिए भ्रष्टाचार को ज़िम्मेदार ठहराते हैं और इससे लड़ने और इसे समाप्त करने का प्रयास करते हैं। फिर भी, यही लोग भ्रष्टाचार के तंत्र को जीवित रखने में भी सहयोग करते हैं। भ्रष्टाचार के विरुद्ध जन क्रांतियों ने दमनकारी शासनों के पतन का मार्ग प्रशस्त किया है। नेताओं को आपराधिक मुकदमों और यहाँ तक कि राजनीतिक मृत्युदंड का भी सामना करना पड़ा है। लेकिन यह समस्या स्वतः ही पनपती है—यह अनादि काल से चली आ रही है और आने वाली शताब्दियों में भी बनी रहेगी, भले ही हम इससे लड़ने के तरीके खोजते रहें। भ्रष्टाचार राजनीतिक व्यवस्था का कैंसर है। इसका निदान करना कठिन है, और इसका इलाज करना उससे भी कठिन।

* * * * *

तो, भारत में भ्रष्टाचार की कहानी क्या है?

मैंने भारत में भ्रष्टाचार से निपटने के लिए गठित एक संगठन में तैंतीस वर्षों तक काम किया है, और मैं आपको बता सकता हूँ कि यह भारत की सबसे चर्चित कहानी है। जनता और सत्ता में बैठे लोगों ने भ्रष्टाचार को जड़ से खत्म करने के लिए अथक प्रयास किए हैं। स्वतंत्र भारत में भ्रष्टाचार से लड़ने के लिए केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) जैसे जांच संगठन और भ्रष्टाचार विरोधी कानून बनाए गए हैं। राजनीतिक नेताओं ने भी भ्रष्टाचार को अपना चुनावी मुद्दा बनाया है। क्या आपको 2011 का वह ऐतिहासिक बदलाव याद है जब एक पूर्व सरकारी कर्मचारी से कार्यकर्ता बने व्यक्ति ने लाखों भारतीयों को सड़कों पर उतरने के लिए प्रेरित किया था? उन्हें किस बात ने प्रेरित किया? भ्रष्टाचार से लड़ने की पुकार ने। फिर भी, भारत में भ्रष्टाचार की कहानी वही है जिसे फ्रांसीसी उपन्यासकार जीन-बैप्टिस्ट अल्फोंस कार (1808-90) ने 'जितना अधिक बदलाव होता है, उतना ही वह वैसा ही रहता है' के रूप में वर्णित किया था।

मेरे साथ बने रहिए, क्योंकि मैं आपको भारत में व्याप्त भ्रष्टाचार की गाथा के सफर पर ले जाऊंगा और सीबीआई अधिकारी के रूप में अपने जीवन और अनुभवों की कहानियां सुनाऊंगा, और आपको समझाऊंगा कि क्यों कुछ भी नहीं बदलता है।

उससे पहले, थोड़ा इतिहास जान लेते हैं।

* * * * *

भ्रष्टाचार की अवधारणा मूल रूप से नैतिक या आध्यात्मिक अशुद्धता को संदर्भित करती थी, लेकिन आधुनिक संदर्भ में इसका प्रयोग आमतौर पर अधिकारियों द्वारा किए गए भ्रष्टाचार के संदर्भ में किया जाता है—यानी कोई भी व्यक्ति जो सार्वजनिक जीवन को बेहतर या बदतर तरीके से प्रभावित करने की शक्ति रखता है। इसलिए भ्रष्टाचार की सार्वजनिक धारणा 'रिश्वत' शब्द से शुरू होती है, जिसे तुर्की में रुश्वेत या उर्दू/हिंदी में रिश्वत कहा जाता है—यह एक विवादास्पद शब्द है जिसका उल्लेख अधिकांश प्राचीन सभ्यताओं के इतिहास में मिलता है। रिश्वतखोरी को हमेशा से एक गंभीर अपराध माना गया है। मनु, नारद और बृहस्पति जैसे प्राचीन ग्रंथों में भ्रष्ट लोक सेवक की तुलना चोर से की गई है। यहूदी, चीनी, जापानी, रोमन, यूनानी और

हिंदू सभ्यताओं की दंड संहिता में रिश्वतखोरी को समाज की एक बड़ी समस्या बताया गया है। रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार के अन्य रूपों को शक्तिशाली रोमन साम्राज्य के पतन का मुख्य कारण बताया गया है।

लेकिन जो लोग भ्रष्ट हैं, उन्होंने 'रिश्वत' शब्द का प्रयोग करने से बचते हुए या भ्रष्टाचार के विभिन्न अन्य रूपों को अपनाकर भ्रष्टाचार में लिप्त होने के तरीके भी खोज लिए हैं - चाहे वह छोटे स्तर का हो, बड़े स्तर का हो या संस्थागत स्तर का हो।

मुझे लोकप्रिय और पुरस्कार विजेता ब्रिटिश कॉमेडी सीरीज़ 'यस मिनिस्टर' (1980-84) का एक एपिसोड याद आता है जिसका शीर्षक था 'द मोरल डायमेंशन' (1980)। एक दृश्य में, मंत्री जेम्स हैकर अखबारों में छपी उन खबरों को देखकर हैरान रह जाते हैं जिनमें बताया गया है कि एक ब्रिटिश इलेक्ट्रॉनिक सिस्टम अनुबंध, जिसे उन्होंने अनुमोदित किया था और जिसे ब्रिटेन के सबसे बड़े निर्यात सौदों में से एक माना जाता था, वास्तव में रिश्वतखोरी से हासिल किया गया था। 'ब्रिटिश मूल' के लोगों के खिलाफ लगाए गए 'बख्शीश' और 'हब-हब रिश्वत' जैसे शब्दों के इस्तेमाल से आहत होकर, वे अपने स्थायी सचिव हम्फ्री एप्पलबी से पूछते हैं कि क्या इन आरोपों में कुछ सच्चाई है।

एप्पलबी 'रिश्वत' शब्द के प्रयोग को सिरे से खारिज करते हैं और यह घोषणा करते हैं कि 'गुप्त निधि, रिश्वत, भूरे लिफाफे' जैसे वाक्यांश भी 'रचनात्मक बातचीत के अलावा और कुछ नहीं' के लिए 'अत्यंत भद्दे और अशोभनीय अभिव्यक्तियाँ' हैं और सरकारी गलियारों में 'यह आम चलन' है।

यह प्रकरण राजनेताओं और नौकरशाहों के बीच व्याप्त भ्रष्टाचार की व्यापकता को दर्शाने में ऐतिहासिक था। इसमें भ्रष्टाचार के विभिन्न रूपों—बड़े, छोटे और राजनीतिक—और उन्हें उचित ठहराने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले नैतिक मानकों के विभिन्न स्तरों को रेखांकित किया गया। आज के राजनेता और सार्वजनिक अधिकारी उतने ही भ्रष्ट हैं जितना वे होने का साहस करते हैं और उतने ही ईमानदार हैं जितना उन्हें होना चाहिए।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में चालीस प्रकार के भ्रष्टाचार का वर्णन किया गया है, जिसमें आज के समय में ज्ञात भ्रष्टाचार के लगभग सभी प्रकार शामिल हैं—राजा के आदमियों द्वारा जालसाजी, व्यक्तिगत आर्थिक लाभ प्राप्त करके राजकोष को राजस्व से वंचित करना, सरकारी अभिलेखों में हेराफेरी, राजस्व अभिलेखों में विसंगतियां, दुर्भावनापूर्ण गलत अभिलेख, आज के समय में दर्ज की जाने वाली हाजिरी सूचियों में हेराफेरी, कच्चे माल का भुगतान होने के बावजूद प्राप्त न होना और भुगतान न होने के बावजूद प्राप्त होना, सोने और चांदी की गुणवत्ता के संबंध में झूठे प्रमाण पत्र प्रस्तुत करना, झूठे बाट और माप आदि।

प्राचीन हिंदू ग्रंथों से पता चलता है कि सार्वजनिक सेवा में भ्रष्टाचार से निपटना आवश्यक था। रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार को चोरी के बराबर माना जाता था और इसके लिए जुर्माना और संपत्ति की ज़ब्ती की सज़ा दी जाती थी। मनु ने राजा को भ्रष्ट लोक सेवकों से अपनी प्रजा की रक्षा के लिए नए उपाय करने का आग्रह किया था; जैसे कि उन स्थानों पर भेस बदलकर जासूस तैनात करना जहाँ भ्रष्ट अधिकारियों द्वारा अपनी अवैध कमाई खर्च करने की संभावना थी—वेश्यालय,

शराबखाने और थिएटर—ताकि उन्हें रंगे हाथों पकड़ा जा सके।

कौटिल्य ने युक्त से लेकर उपयुक्त और तत्पुरुष तक, सभी श्रेणियों के लोक अधिकारियों की सत्यनिष्ठा की जांच के लिए एजेंट प्रोवोकेटर नियुक्त करने का सुझाव दिया। उन्होंने भ्रष्टाचार को एक अत्यंत गंभीर अपराध माना और मृत्युदंड जैसी कठोर सजा की वकालत की। कम गंभीर मामलों में, उन्होंने कोड़े मारने और जुर्माने की सजा का समर्थन किया, जो किए गए कार्य के मूल्य, लिए गए दिनों की संख्या और पूंजी की राशि के अनुपात में हो सकता था।

खर्च की गई धनराशि और दैनिक मजदूरी की राशि।' 2 अपने समय से आगे की सोच रखने वाले राजनेता माने जाने वाले चतुर कौटिल्य ने शांतिपूर्ण और समृद्ध समाज के निर्माण के लिए भ्रष्ट लोक अधिकारियों पर लगाम लगाने की आवश्यकता को सही ढंग से समझा था। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक, भ्रष्टाचार राष्ट्र के विकास और प्रगति में बाधा डालने वाले मुख्य कारणों में से एक रहा है।

आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश जगमोहन रेड्डी ने 1980 में इस समस्या का वर्णन इस प्रकार किया था: 'हमारे देश में भ्रष्टाचार हमारे प्रशासन की जड़ों को लगातार खोखला कर रहा है और यदि जनमत को स्वीकार किया जाए तो यह कैंसर का रूप ले चुका है; यह सर्वव्यापी है।'

भ्रष्टाचार की कीमत बहुत भारी होती है और सबसे बुरे मामलों में इसकी कीमत मानव जीवन के रूप में चुकानी पड़ती है तथा यह किसी न किसी रूप में उनकी स्वतंत्रता, स्वास्थ्य, धन और राष्ट्र की प्रगति को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करता है।

यह स्पष्ट है कि यदि कोई राष्ट्र उन्नति और विकास करना चाहता है तो उसे भ्रष्टाचार से पुरजोर तरीके से लड़ना होगा। दुर्भाग्य से, भारत ने भ्रष्टाचार से वास्तविक रूप से लड़ने के लिए अभी तक वह दृढ़ता और संकल्प नहीं दिखाया है। ट्रांसपेरेंसी इंटरनेशनल द्वारा जारी ग्लोबल परसेप्शन इंडेक्स 2017 के अनुसार, जो सरकारों, व्यवसायों और नागरिक समाज समूहों के साथ मिलकर रिश्वतखोरी, सत्ता के दुरुपयोग और गुप्त सौदों को रोकने के लिए काम करने वाला एक अंतरराष्ट्रीय गैर-सरकारी संगठन है, भारत 180 देशों में 81वें स्थान पर रहा और भ्रष्टाचार और प्रेस की स्वतंत्रता के मामले में सबसे खराब स्थिति वाले देशों में से एक माना गया।

इतिहास में देखें तो मुगल काल में भ्रष्टाचार से लड़ने की कोई इच्छा नहीं दिखी। ब्रिटिश औपनिवेशिक शासक भी इससे अलग नहीं थे। प्लासी के युद्ध (1757) के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारियों द्वारा भ्रष्टाचार चरम पर पहुंच गया। ब्रिटिश संसद लगभग अनियंत्रित साम्राज्य के कामकाज से चिंतित थी, जो वित्तीय संकट में था और बैंक ऑफ इंग्लैंड और सरकार का भारी कर्जदार था। लेकिन कंपनी, किसी भी अन्य निगम की तरह, केवल अपने शेयरधारकों के प्रति जवाबदेह थी, न कि भारत की जनता या ब्रिटिश राजशाही के प्रति।

आज जब हम एक संप्रभु राष्ट्र हैं और अंग्रेजों द्वारा किए गए औपनिवेशिक उत्पीड़न से अवगत हैं, तो यह बात भले ही विचित्र लगे, लेकिन 18वीं शताब्दी में भारत एक अत्यंत महत्वपूर्ण क्षेत्र था और ब्रिटिश सरकार वास्तव में इस बात को लेकर चिंतित थी कि भारत की संपत्ति का उपयोग या दुरुपयोग कैसे हो रहा है। इसलिए, ब्रिटिश संसद ने 1773 का विनियमन अधिनियम

(औपचारिक रूप से, ईस्ट इंडिया कंपनी अधिनियम 1772) पारित किया, जिसने कंपनी को अपने नियंत्रण वाले क्षेत्रों के शासन के लिए जिम्मेदार बनाया। अधिनियम के प्रावधानों को ध्यानपूर्वक पढ़ने से पता चलता है कि इसका उद्देश्य कंपनी के अधिकारियों के कुप्रथाओं और भ्रष्टाचार से निपटना था। अधिनियम के प्रमुख प्रावधानों में से एक यह था: 'नागरिक और सैन्य प्रतिष्ठानों में कोई भी व्यक्ति कोई उपहार, पुरस्कार या भेंट स्वीकार नहीं कर सकता।'
और भारतीयों से मिलने वाले किसी भी प्रकार के आर्थिक लाभ।3
फिर भी, कंपनी में भ्रष्टाचार फलता-फूलता रहा, और 1784 में कंपनी की सर्वशक्तिमत्ता और उसके कर्मचारियों के व्यवहार से चिंतित ब्रिटिश संसद ने ईस्ट इंडिया कंपनी अधिनियम, 1784 पारित किया, जिसने कंपनी को ब्रिटिश भारत सरकार के पूर्ण नियंत्रण में ला दिया। तभी जाकर अपार धन अर्जित करने वाले भ्रष्ट अधिकारियों की गतिविधियों पर कुछ हद तक नियंत्रण संभव हो सका।
इतिहासकार एडवर्ड थॉम्पसन ने अपनी पुस्तक 'राइज एंड फुलफिलमेंट ऑफ द ब्रिटिश इंडिया' में लिखा है कि ब्रिटिश भारत का प्रारंभिक इतिहास शायद भ्रष्टाचार का विश्व का सबसे चरम उदाहरण है।
ब्रिटिश भारत (1935).4 यह ब्रिटिश शासन के तीन सौ वर्षों के लिए सच था, जलस्तर उच्च और निम्न के बीच उतार-चढ़ाव करता रहा लेकिन कभी पूरी तरह से गायब नहीं हुआ - कंपनी के अधिकारियों के बीच भ्रष्टाचार ने भारत को भारी मात्रा में धन की हानि पहुँचाई।
इतिहासकार अक्सर यह सुझाव देते हैं कि भारत में भ्रष्टाचार की जड़ दो शताब्दियों के ब्रिटिश शासन में थी। रॉबर्ट क्लाइव, जिन्होंने बंगाल के नवाब सिराज-उद-दौला पर ब्रिटिश विजय का नेतृत्व किया और कंपनी के शासन को मजबूत किया, औपनिवेशिक इतिहास में एक बहादुर व्यक्ति माने जाते हैं, लेकिन बाद के वर्षों में वे लालची और भ्रष्ट हो गए। अप्रैल 2004 में, लंदन में क्रिस्टीज़ में हुई एक नीलामी में, क्लाइव द्वारा ब्रिटेन ले जाए गए दुर्लभ मुगल खजाने 4.7 पाउंड में बिके।
ये दुर्लभ वस्तुएँ क्लाइव के पास कैसे पहुँचीं, यह अज्ञात है, लेकिन माना जाता है कि इन्हें भ्रष्टाचार के माध्यम से प्राप्त किया गया था। यह सर्वविदित है कि जब क्लाइव 1767 में भारत से लौटे, तो उन्हें भ्रष्टाचार के आरोपों की संसदीय जाँच का सामना करना पड़ा।
जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुस्तक डिस्कवरी ऑफ इंडिया (1946) में एक किस्से का जिक्र किया था, जिसमें ब्रिटिश राज के दौरान भाई-भतीजावाद पूंजीवाद की बात कही गई थी।
युद्ध-पूर्व के दिनों में बड़ी संख्या में दवाइयाँ, औषधियाँ और टीके उपलब्ध थे।
जर्मनी से लोग भारत आते थे। युद्ध के कारण यह सिलसिला रुक गया।
तुरंत सुझाव दिया कि कुछ अधिक आवश्यक टीके और
भारत में दवाइयां बनाई जा सकती हैं। कुछ देशों में यह आसानी से किया जा सकता है।
सरकारी संस्थानों के। भारत सरकार ने ऐसा नहीं किया।
उन्होंने अनुमोदन किया और बताया कि अब जो कुछ भी आवश्यक था वह किया जा सकता है।
इसे इंपीरियल केमिकल इंडस्ट्रीज के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। जब यह था

उन्होंने सुझाव दिया कि वही चीज भारत में बहुत कम लागत पर बनाई जा सकती है।
और इसका उपयोग सेना के साथ-साथ आम जनता के लिए भी बिना किसी निजी दायित्व के किया जाता है।
उच्च अधिकारियों ने इस तरह के निम्न स्तर के हस्तक्षेप पर कड़ी आपत्ति जताई।
राज्य नीति के मामलों में विचारणीय बातें। 'सरकार,' ऐसा कहा गया था।
'यह कोई व्यावसायिक संस्था नहीं थी!'
सरकार एक वाणिज्यिक संस्था नहीं थी, लेकिन यह बहुत हद तक
वाणिज्यिक संस्थानों में रुचि रखने वाले लोगों में से एक इंपीरियल था।
रसायन। इस विशाल संयोजन को कई सुविधाएं प्रदान की गईं।
ऐसी सुविधाओं के बिना भी उसके पास इतने विशाल संसाधन थे कि कोई भारतीय
टाटा को छोड़कर, कुछ हद तक अन्य कंपनियां भी संभवतः इसके साथ प्रतिस्पर्धा कर सकती हैं।
इन सुविधाओं के अलावा, इसे भारत और अन्य देशों में भी सशक्त समर्थन प्राप्त था।
इंग्लैंड। भारत के वायसराय पद से हटने के कुछ महीनों बाद, लॉर्ड
लिनलिथगो ने इंपीरियल केमिकल्स के निदेशक के रूप में एक नई भूमिका निभाई।
क्या यह भ्रष्टाचार की वह चरम सीमा थी जिसका जिक्र थॉम्पसन ने किया था? यह कहना मुश्किल है, लेकिन जैसा कि आसानी से अनुमान लगाया जा सकता है, इसके बदले में जो कुछ हुआ वह निश्चित रूप से यह था कि लॉर्ड लिनलिथगो, भारत के वायसराय (1936-43) रहते हुए भी, जब यह निर्णय लिया गया था, इंपीरियल केमिकल्स में एक महत्वपूर्ण शेयरधारक रहे होंगे।
जैसा कि नेहरू ने आगे कहा,
यह इंग्लैंड के बड़े व्यवसायों और भारत सरकार के बीच घनिष्ठ संबंध को दर्शाता है, और यह भी कि यह संबंध नीति को अनिवार्य रूप से कैसे प्रभावित करता है।
लगभग अस्सी साल बाद, हमें एक ऐसी ही स्थिति का सामना करना पड़ रहा है, जहाँ सार्वजनिक कंपनी हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड (एचएएल) से एक बड़ा अनुबंध छीनकर एक निजी कंपनी को दे दिया गया है, जो सौदे से महज बारह दिन पहले अस्तित्व में आई थी और जिसकी मूल कंपनी को रक्षा उपकरण निर्माण का कोई अनुभव नहीं है। भारत सरकार द्वारा 60,145 करोड़ रुपये के 36 राफेल विमानों की खरीद के पीछे के तर्क को लेकर पूरे देश को अंधेरे में रखा गया है। यह रिकॉर्ड में है कि सौदा अचानक अंतिम रूप दिया गया था और प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 2015 में अपनी फ्रांस यात्रा के दौरान इसकी घोषणा की थी और रक्षा मंत्री मनोहर पर्रिकर को इसकी जानकारी नहीं थी। मीडिया और विपक्षी दलों ने राफेल सौदे में उचित प्रक्रिया के पालन या उसकी कमी पर सवाल उठाए हैं, लेकिन भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) के नेतृत्व वाली सरकार ने अनुबंध में निहित एक 'गोपनीयता खंड' का हवाला देते हुए जवाब देने से परहेज किया है।
यह आशंका हमें लगातार सता रही है कि हमारे नेताओं में से एक, जिनकी ईमानदारी और सत्यनिष्ठा के कारण पूरा देश उनकी ओर देखता है, कहीं भ्रष्टाचार और स्वार्थ के शिकार होकर अपने कॉरपोरेट मित्रों को लाभ पहुंचाने का निर्णय न ले लें।

नेहरू ने ब्रिटिश शासन को शुद्ध लूट और वैधीकृत शोषण बताया, जिसके कारण बंगाल में भीषण अकाल पड़ा। उन्होंने कहा, 'ब्रिटिश शासन की शुरुआती पीढ़ियों में व्याप्त भ्रष्टाचार, बेईमानी, भाई-भतीजावाद, हिंसा और धन का लालच चरम पर था।'

नेहरू ने लिखा, 'भारत में शासन कुछ ऐसा है जो समझ से परे है।' 6 सिवाय इसके कि नेहरू ने अपने निष्पक्ष आकलन में जिसे 'ब्रिटिश शासन की प्रारंभिक पीढ़ी' की समस्या माना था, वह पूरे ब्रिटिश काल के लिए सत्य था। जहाँ तक इसकी बात है, भारत सरकार द्वारा नवंबर 2016 में किए गए नोटबंदी के कदम को भी 'संगठित लूट और वैध लूट' के रूप में वर्णित किया गया है।

पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह। 7 हम जितना अधिक बदलते हैं, उतना ही हम वैसे ही बने रहते हैं। तो, हम भ्रष्टाचार की समस्या से निपटने में क्यों सफल नहीं हो पाए हैं? यह फलता-फूलता क्यों रहता है? इस प्रश्न का कोई एक सटीक उत्तर नहीं है, लेकिन सीबीआई अधिकारी के रूप में अपने वर्षों के अनुभव से मैं कह सकता हूँ कि भ्रष्टाचार इसलिए बना रहता है क्योंकि इसके खिलाफ कोई जन आक्रोश नहीं है, और इसे खत्म करने की कोई राजनीतिक इच्छाशक्ति नहीं है —क्योंकि इससे सभी को लाभ होता है। उपेंद्र ठाकुर ने अपनी कृति 'प्राचीन भारत में भ्रष्टाचार' (1976) में लिखा है कि भ्रष्टाचार इसलिए मौजूद है क्योंकि 'यह तर्क देना हास्यास्पद होगा कि कोई चीज तब भी मौजूद है जब समाज उसे नहीं चाहता। भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी जैसी बुराइयाँ समाज में इसलिए मौजूद हैं क्योंकि प्रशासन में बैठे लोग और समाज के सदस्य दोनों ही इसे चाहते हैं।'

क्या यह कहना अतिशयोक्ति होगी कि समाज भ्रष्टाचार को बनाए रखना चाहता है? शायद इस पुस्तक में हमें इसके उत्तर मिल जाएं, यदि हम यह देखें कि देश में बढ़ते भ्रष्टाचार के मामलों पर जनता और मीडिया किस प्रकार प्रतिक्रिया देते हैं। क्या समाज रिश्वतखोरों और भ्रष्ट लोगों को उसी प्रकार घृणा की दृष्टि से देखता है, जिस प्रकार चोरों, लुटेरों, डाकुओं या बलात्कारियों को देखता है? उत्तर यहीं छिपा है।

लोकसभा ने 1 अगस्त 2019 को बारह वर्ष से कम आयु के बच्चे के बलात्कार के लिए मृत्युदंड का प्रावधान करने वाला विधेयक पारित किया। अपराध विज्ञान और अपराध सांख्यिकी के अध्ययनों से पता चलता है कि कठोर दंड अपराधों को रोकने में कारगर नहीं होता, और प्रभावी अभियोजन और दोषसिद्धि ही आवश्यक है। इसके बावजूद, जनता के गुस्से को शांत करने के लिए विधायिका ने विधेयक को पारित कर दिया। दुर्भाग्य से, जब नीरव मोदी या मेहुल चिनुभाई चोकसी जैसे लोग देश के अरबों डॉलर चुराकर भाग जाते हैं, तो हमें जनता का वैसा ही गुस्सा और आक्रोश देखने को नहीं मिलता।

हालांकि, यह कहना गलत होगा कि भारत की जनता भ्रष्टाचार के खिलाफ अपना गुस्सा जाहिर करने में पूरी तरह नाकाम रही है। लोग बार-बार भ्रष्टाचार के खिलाफ सड़कों पर उतरे हैं। सत्ता में आने पर उन्होंने उन नेताओं से बहुत उम्मीदें लगाईं जिन्होंने भ्रष्टाचार को दूर करने का वादा किया था। विश्वनाथ प्रताप सिंह से लेकर अरविंद केजरीवाल और नरेंद्र मोदी तक, जनता ने इन नेताओं से उम्मीदें लगाईं, लेकिन उन्हें निराशा ही हाथ लगी। यहां तक कि मोदी ने भी प्रधानमंत्री के रूप में अपने पहले कार्यकाल के अंत से कुछ ही हफ्ते पहले तक लोकपाल या जन लोकपाल लाने

का अपना वादा पूरा नहीं किया, और वह भी तब जब सूचना के अधिकार (आरटीआई) के तहत कई बार पूछताछ से पता चला कि वे लोकपाल के मामले में ढिलाई बरत रहे थे।

नियुक्ति 8. एक आरटीआई क्वेरी से पता चला कि प्रधानमंत्री ने अपने कार्यकाल के पहले 45 महीनों में लोकपाल चयन समिति की एक भी बैठक की अध्यक्षता नहीं की। किसी ने सोचा होगा कि मोदी जैसे नेता सत्ता में आने के पहले ही सप्ताह में यह काम करवा लेंगे। लेकिन अफसोस!

जब जनता का नेतृत्व पर से विश्वास उठ जाता है, तो वे उदासीन और लापरवाह हो जाते हैं और भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई व्यर्थ हो जाती है। समाज के सदस्यों और राजनीतिक नेताओं दोनों को यह समझना चाहिए कि किसी राष्ट्र का भविष्य सार्वजनिक जीवन में उसके महिला और पुरुष नेताओं के गुणों पर निर्भर करता है। मुझे इस बात का बहुत दुख है क्योंकि मेरा मानना है कि भारत के राजनीतिक नेतृत्व में सत्यनिष्ठा और ईमानदारी का अभाव है। जब चुनाव के लिए धन जुटाने की प्रक्रिया ही संभवतः भ्रष्टाचार का सबसे बड़ा स्रोत है, तो इससे ऐसे ईमानदार नेता कैसे पैदा हो सकते हैं जो भ्रष्टाचार को रोकने के लिए तैयार और सक्षम हों?

भारत निर्वाचन आयोग (ईसीआई) ने राजनीतिक दलों के वित्तपोषण की प्रक्रिया में अधिक ईमानदारी और पारदर्शिता लाने के लिए कई सिफारिशें की हैं, लेकिन सार्वजनिक जीवन के इस क्षेत्र में सुधारों की बढ़ती मांग पर किसी भी सरकार ने पर्याप्त प्रतिक्रिया नहीं दी है। मोदी सरकार मई 2014 में व्यवस्था को साफ करने और देश को भ्रष्टाचार और घोटालों से मुक्त करने के वादों के साथ सत्ता में आई थी। दुर्भाग्य से,

चुनावी बांड 9 की शुरुआत और विदेशी नीति में 2018 का संशोधन

अंशदान विनियमन अधिनियम (एफसीआरए) 10 के तहत राजनीतिक दलों को 1976 से पूर्वव्यापी प्रभाव से प्राप्त विदेशी धन की जांच से छूट देने से भ्रष्टाचार उन्मूलन के प्रति सरकार के इरादे पर भरोसा नहीं होता। मोदी सरकार ने एक झटके में भारत के चुनावों में पिछले 42 वर्षों से अवैध रूप से डाले जा रहे विदेशी धन को वैध ठहरा दिया है।

यह सरकार किसी भी तरह से बदलाव लाने वाली नहीं है, बल्कि इसके कदम भ्रष्टाचार को बढ़ावा देते हैं। हम फिर से इस बात को समझने लगे हैं कि वे बदलाव के जितने ज्यादा वादे करते हैं, उतना ही कुछ नहीं बदलता।

हालांकि, मैंने पाठकों को भारत में फैले भ्रष्टाचार की कहानी केवल शोक व्यक्त करने के लिए नहीं सुनाई है। यह कहावत, भले ही पुरानी और उबाऊ हो गई हो, आज भी सच है: जहां चाह होती है, वहां राह होती है। मेरा प्रयास है कि लोगों के मन में इस चाह को जगाया जाए।

1860 में ब्रिटिश राज ने भ्रष्टाचार से लड़ने की इच्छा दिखाई, जब रिश्वतखोरी को कानून में अपराध घोषित किया गया। लेकिन निर्धारित सजा हल्की और नाममात्र की थी। किसी सरकारी कर्मचारी को, जो आधिकारिक कार्य के संबंध में कानूनी पारिश्रमिक के अलावा कोई अन्य रिश्वत लेता पाया जाता था, उसे तीन साल की कैद या जुर्माना हो सकता था। यह कानून सत्तासी वर्षों तक लागू रहा और इस दौरान प्रशासन की ओर से भ्रष्टाचार के मामलों का पता लगाने, जांच करने और उन पर मुकदमा चलाने के लिए कोई विशेष तंत्र या एजेंसी गठित करने का प्रयास नहीं किया गया। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद, जब प्रशासन और व्यापार दोनों क्षेत्रों में भ्रष्टाचार की

गतिविधियों में तेजी आने से ब्रिटिश युद्ध प्रयासों में बाधा उत्पन्न हुई, तब 1941 में ब्रिटिश सरकार ने दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान (डीएसपीई) की स्थापना की। इस बल का एक प्रमुख उद्देश्य युद्ध विभाग से जुड़े भ्रष्टाचार के मामलों की जांच करना था। 1943 में, इस बल को औपचारिक कानूनी मान्यता प्राप्त हुई और इसे पूरे ब्रिटिश भारत में सरकार के विभागों से जुड़े अपराधों की जांच करने के लिए व्यापक शक्तियां प्राप्त हुईं।

आज डीएसपीई को केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) के नाम से बेहतर जाना जाता है - वह संस्था जिसमें मैंने 25 साल के एक युवा के रूप में वर्ष 1963 में ऊर्जा और उत्साह से भरपूर होकर कदम रखा था।

तैंतीस साल बाद, उस नौजवान ने कुछ ऐसा करके हलचल मचा दी जो पहले किसी ने नहीं किया था—उन्होंने खुले तौर पर द टाइम्स ऑफ इंडिया में एक संपादकीय लेख लिखा, जिसमें उन्होंने खुलासा किया कि कैसे साम्राज्यवादी 'स्टील फ्रेम' धीरे-धीरे 'स्टील कॉलर' में बदल रहा था।

तो चलिए, मेरी कहानियों की ओर बढ़ते हैं। पढ़ते रहिए।

2

सीबीआई की स्थापना

9 मई 2013 को कोयला ब्लॉक आवंटन घोटाले के मामले की सुनवाई करते हुए सुप्रीम कोर्ट के जस्टिस आरएम लोढ़ा ने गरजते हुए कहा, 'सीबीआई एक पिंजरे में बंद तोता है, जो अपने मालिक की आवाज में बोलता है।' इसके बाद कोर्ट रूम में सन्नाटा छा गया। कोर्ट ने नाराजगी जताते हुए कहा कि सीबीआई की जांच में सरकार ने बुरी तरह दखल दिया है। सरकार से जांच एजेंसी को निष्पक्ष बनाने को कहते हुए कोर्ट ने कहा कि यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि सीबीआई बाहरी दबाव से मुक्त होकर काम करे। कोर्ट ने कहा, 'अगर सीबीआई को स्वतंत्र नहीं बनाया गया, तो हम हस्तक्षेप करेंगे।' कोर्ट ने आगे कहा कि 'सीबीआई का काम सरकारी अधिकारियों से बातचीत करना नहीं है, बल्कि...'

सच्चाई का पता लगाने के लिए पूछताछ करें।11

एक साल बाद, मई 2014 में, अदालत कक्ष में छाई सन्नाटा तत्कालीन सत्ताधारी संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए) के खिलाफ जनता के उग्र विरोध में तब्दील हो गया। यूपीए भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (आईएनसी) के नेतृत्व वाली गठबंधन सरकार थी, जिसे कई कारणों से चुनावी हार का सामना करना पड़ा, जिनमें से संभवतः सबसे महत्वपूर्ण कारण भ्रष्टाचार था।

'पिंजरे में बंद तोता।' ये शब्द आने वाले वर्षों तक सीबीआई का पीछा करते रहे। सुप्रीम कोर्ट ने प्रक्रियात्मक देरी और अक्षमता के लिए सीबीआई को लगातार फटकार लगाई है। भारत की प्रमुख जांच एजेंसियों में से एक के बारे में जनता की धारणा लगातार गिरती जा रही है।

संस्था में असल में क्या खराबी है? इस सवाल का जवाब देना मुश्किल नहीं है। लेकिन सवाल यह है कि खोई हुई प्रतिष्ठा को कैसे वापस पाया जा सकता है? सीबीआई लंबे समय से खो चुके भरोसे और विश्वसनीयता को कैसे दोबारा हासिल कर सकती है? एक पूर्व सीबीआई अधिकारी के तौर पर मैं आपको यकीन दिला सकता हूं कि इसका एक रास्ता है।

आइए, मेरे जीवन की कहानियों के माध्यम से, मेरी यात्रा और साथ ही उस ब्यूरो की यात्रा का पता लगाने की कोशिश करें, जिसकी शुरुआत लगभग उसी समय हुई थी।

* * * * *

लगभग पचास वर्ष पहले, जून 1962 में, संसद सदस्यों ने एक बहस के दौरान प्रशासन में बढ़ते भ्रष्टाचार पर चिंता व्यक्त की। इसके जवाब में, गृह मंत्री लाल बहादुर शास्त्री ने भ्रष्टाचार की समस्या की समीक्षा करने और इससे निपटने के लिए सुझाव देने हेतु के. संथानम की अध्यक्षता में एक संसदीय समिति का गठन किया। इस समिति में आठ सदस्य थे, जिनमें सांसद संतोष कुमार बसु, टीका राम पालीवाल, आर.के. खाडिलकर, नाथ पाई और शंभू नाथ चतुर्वेदी, प्रशासनिक सतर्कता प्रभाग के निदेशक एल.पी. सिंह और डीएसपीई के महानिरीक्षक डी.पी. कोहली शामिल थे।

समिति का उद्देश्य केंद्र सरकार और उसके कर्मचारियों से जुड़े भ्रष्टाचार से निपटने के मुद्दे का अध्ययन करना था। इसने विश्व भर में भ्रष्टाचार से निपटने के तरीकों को समझने के लिए विभिन्न

पृष्ठभूमि दस्तावेज़ तैयार किए और उन पर विचार-विमर्श किया। इनमें स्कैंडिनेवियाई देशों में लोकपाल प्रणाली का संक्षिप्त अध्ययन; साम्यवादी देशों में अभियोजक कार्यालय; और ब्रिटेन, अमेरिका, पाकिस्तान, कनाडा, घाना और फ्रांस से संबंधित कानूनों पर रिपोर्ट शामिल थीं।

समिति ने 87 बैठकें कीं और भारत सरकार के मंत्रियों और सचिवों, राजस्व बोर्डों के सदस्यों, आयकर आयुक्तों, पत्रकारों और नागरिक समाज के सदस्यों सहित अन्य गवाहों से पूछताछ की। समिति द्वारा भ्रष्टाचार से संबंधित जिन कानूनों की जांच की गई, उनमें भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) की धारा 161; भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम (पीसीए), 1947 की धारा 5 (1); और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 123 (चुनावों में भ्रष्ट आचरण का पता लगाने के लिए) शामिल हैं।

समिति द्वारा अपनी औपचारिक रिपोर्ट प्रस्तुत करने से पहले ही चीन के साथ युद्ध छिड़ गया। एक अंतरिम रिपोर्ट प्रस्तुत की गई जिसके परिणामस्वरूप देश में दो प्रतिष्ठित संस्थानों का गठन हुआ —1 अप्रैल 1963 को सीबीआई की स्थापना और 11 फरवरी 1964 को केंद्रीय सतर्कता आयोग (सीवीसी) की स्थापना।

पूर्व में, सरकार के एक प्रस्ताव के तहत ऐसी एजेंसी की स्थापना की गई थी, जिसमें डीएसपीई द्वारा निपटाए गए मामलों और रक्षा अधिनियम, 1915 जैसे अन्य हाई-प्रोफाइल मामलों की जांच करने का प्रावधान था। इस प्रकार, ब्रिटिश सरकार के एक कार्यकारी आदेश द्वारा 1941 में स्थापित डीएसपीई ही आज की सीबीआई बन गई। कागजों पर, न तो सीबीआई और न ही सीवीसी कानूनी संस्थाएं थीं—सीवीसी को कानूनी मान्यता 2003 में मिली और सीबीआई का अपना कोई अधिनियम अभी तक नहीं है। राजनीतिक संबद्धता की परवाह किए बिना, लगातार सरकारों ने सीबीआई को मजबूत करने और उसे राजनीतिक हस्तक्षेप से बचाने के लिए यह पहला महत्वपूर्ण कदम उठाने में विफल रही हैं।

आजादी के 72 साल बाद, दिल्ली स्पेशल पुलिस जैसे नाम अजीब लगते हैं। सिर्फ दिल्ली के लिए ही 'स्पेशल पुलिस' क्यों बनाई जाए? यह 'स्पेशल पुलिस' क्या करेगी?

जैसा कि मैंने पहले लिखा था, ब्रिटिश सरकार न तो ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारियों और न ही ब्रिटिश राज के अधिकारियों द्वारा किए जा रहे भ्रष्टाचार से निपटने में रुचि रखती थी—यह भ्रष्टाचार भारत की संपत्ति को ग्रेट ब्रिटेन की ओर ले जा रहा था। द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान ही प्रशासन और व्यापार दोनों क्षेत्रों में भ्रष्टाचार चरम पर पहुँच गया, जिससे ब्रिटिश युद्ध प्रयासों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। तब औपनिवेशिक सरकार ने दिल्ली के सत्ता केंद्र में एक 'विशेष पुलिस' स्थापित करने का निर्णय लिया, जिसका काम केवल युद्ध विभाग से संबंधित मामलों से निपटना था। युद्ध से पहले, राजस्व, पुलिस, उत्पाद शुल्क और लोक निर्माण विभागों में भ्रष्टाचार था। लेकिन राज्य स्तर पर छोटे-मोटे भ्रष्टाचार, संसाधनों की कमी और महामंदी ने भ्रष्टाचार को कुछ हद तक नियंत्रण में रखा था। जब द्वितीय विश्व युद्ध शुरू हुआ, तो युद्ध सामग्री और अनुबंधों पर सैकड़ों करोड़ रुपये का सरकारी व्यय हुआ, जिससे भ्रष्टाचार के अभूतपूर्व अवसर पैदा हुए। इन्हीं पर अंकुश लगाने के लिए डीएसपीई (विशेष पुलिस बल) की स्थापना की गई थी।

भारत को स्वतंत्रता प्राप्त होने के बाद, हमने एक लंबी और कठिन यात्रा शुरू की, जबकि अन्य

राष्ट्र पहले ही इस राह पर आगे बढ़ चुके थे। दो शताब्दियों तक गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा भारत एक कृषि प्रधान राष्ट्र के रूप में अपनी यात्रा शुरू किया, जिसका औद्योगिक आधार कमजोर था और जो गरीबी, अकाल और बेरोजगारी से त्रस्त था। ब्रिटिश राज के दौरान स्थापित प्रशासनिक व्यवस्था भारतीय प्रशासन में परिवर्तित हो गई, लेकिन युद्धकालीन उपेक्षा और बड़ी संख्या में अनुभवी अधिकारियों के चले जाने से यह कमजोर हो गई, जिसके परिणामस्वरूप बेईमान लोगों को प्रभावशाली पदों पर नियुक्त या पदोन्नत किया गया। नई सरकार को खोए हुए समय की भरपाई करने और अत्यधिक औद्योगीकृत विकसित देशों के साथ प्रतिस्पर्धा करने के लिए अपनी आर्थिक गतिविधियों का विस्तार करना था, साथ ही ईमानदारी और सत्यनिष्ठा का वातावरण स्थापित करके समाज का मनोबल बढ़ाना था ताकि व्यवस्था में विश्वास कायम हो सके।

भ्रष्टाचार की समस्या से निपटने में सक्रियता दिखाना अत्यावश्यक था। एक महत्वपूर्ण कानून पारित किया गया। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम 1947 में लागू किया गया। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के कामकाज की समीक्षा करने और डीएसपीई के प्रदर्शन का आकलन करने तथा इसके निरंतरता या सुदृढ़ीकरण की आवश्यकता का निर्धारण करने के लिए बख्शी टेक चंद समिति का गठन 1949 में किया गया।

चूंकि हमें अभी-अभी स्वतंत्रता मिली थी, इसलिए उस समय कई सरकारी अधिकारियों में राष्ट्र की ईमानदारी से सेवा करने का एक विशेष उत्साह और उमंग थी। कई सरकारी अधिकारी, विशेषकर पुलिस और न्यायपालिका में कार्यरत लोग, शायद—शायद—ईमानदार थे। पहले दशक में डीएसपीई द्वारा निपटाए गए मामलों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई। 1950 और 1960 के बीच, कई मंत्रियों और प्रमुख उद्योगपतियों की डीएसपीई द्वारा जांच की गई और उन पर मुकदमा चलाया गया। डीएसपीई द्वारा उच्च पदस्थ मंत्रियों या अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों के खिलाफ जांच शुरू करना आम बात थी।

लेकिन यह स्वर्ग ज्यादा देर तक कायम नहीं रह सका।

* * * * *

भ्रष्टाचार बेरोकटोक जारी था, और 1962 में इस समस्या के समाधान के लिए संथानम समिति का गठन किया गया। इसके बाद डीएसपीई (DSPE) के कार्यक्षेत्र का विस्तार करने और इसे गंभीर अपराधों और भ्रष्टाचार की जांच करने की शक्ति से युक्त एक विशिष्ट संस्था बनाने की आवश्यकता महसूस हुई। इस प्रकार, अपराध और भ्रष्टाचार के विरुद्ध लड़ाई में देश की सर्वोच्च शक्ति बनने की दृष्टि से सीबीआई की स्थापना की गई। सीबीआई संघ लोक सेवा आयोग (UPSC) के माध्यम से सीधे भर्ती किए गए उच्च स्तरीय जांचकर्ताओं का एक विशेष निकाय था। इसका मुख्य उद्देश्य सरकारी कार्यालयों में भ्रष्टाचार के मामलों की जांच करना था, जिसे आम बोलचाल में हम 'बाबू भ्रष्टाचार', 'लालफीताशाही' या 'भाई-भतीजावाद' कहते हैं।

मैंने पहले ब्रिटिश टेलीविजन सीरियल 'यस मिनिस्टर' का जिक्र किया था। इसी का हिंदी संस्करण भारत में 'जी मंत्रीजी' (2001) शीर्षक से बना था, जिसमें फारूक शेख और जयंत कृपलानी ने अभिनय किया था और यह दर्शकों के बीच काफी लोकप्रिय हुआ था। इसी पीढ़ी के लोग पंकज

कपूर अभिनीत मशहूर सीरियल 'ऑफिस ऑफिस' (2001) को भी याद करते होंगे। इन सभी सीरियलों में क्या समानता थी? इनमें सरकारी अधिकारियों और नौकरशाहों द्वारा फैलाए गए व्यापक भ्रष्टाचार को दिखाया गया था।

युद्ध के बाद के शुरुआती कुछ दशकों से लेकर साठ के दशक के उत्तरार्ध तक, भ्रष्टाचार उन सरकारी अधिकारियों द्वारा किया जाता था जिनके पास राशन कार्ड, ड्राइविंग लाइसेंस, जन्म और मृत्यु प्रमाण पत्र, अन्य अनुमतियाँ और लाइसेंस आदि जैसी विभिन्न सेवाएं देने या अस्वीकार करने का अधिकार और शक्ति होती थी। एक भ्रष्ट अधिकारी अक्सर सेवाओं को तब तक रोक कर रखता था जब तक कि नोटों को चुपके से न दिया जाए या मिठाई के डिब्बे में भरकर मेज पर न रख दिया जाए। नौकरशाही के उच्च स्तर के अधिकारी भी इसी तरह का भ्रष्टाचार करते थे, लेकिन अधिक परिष्कृत तरीके से।

मौजूदा प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कांग्रेस की पिछली कई दशकों की सरकारों द्वारा अपनाए गए लाइसेंस राज के खिलाफ आवाज उठाकर 'लाइसेंस राज' शब्द को काफी लोकप्रिय बना दिया है। इसका अर्थ है 'लाइसेंस का शासन'। हालांकि, यह कोई वास्तविक नियम नहीं है। अस्सी के दशक तक भारतीय अर्थव्यवस्था एक बंद अर्थव्यवस्था थी और हर वाणिज्यिक और व्यावसायिक गतिविधि के लिए सरकारी लाइसेंस की आवश्यकता होती थी। लाइसेंस जारी करने का अधिकार रखने वाला अधिकारी अनुचित लाभ की मांग करता था। धनी कॉरपोरेट कंपनियां अक्सर नियमों, प्रक्रियाओं या यहां तक कि सुरक्षा मानकों को दरकिनार करते हुए लाइसेंस हासिल करने के लिए रिश्वत देती थीं।

शुरुआत में सीबीआई के सामने भ्रष्टाचार के इन रूपों पर अंकुश लगाने का कठिन कार्य था। गौरतलब है कि भारत की स्वतंत्रता के पहले दशक में राजनीतिक भ्रष्टाचार एक समस्या नहीं थी, क्योंकि राजनीतिक पदों पर ईमानदार और बुद्धिमान स्वतंत्रता सेनानी आसीन थे, जिन्होंने बहुत बलिदान दिए थे। जवाहरलाल नेहरू, लाल बहादुर शास्त्री, रफी अहमद किदवई, जॉन मथाई, गोविंद बल्लभ पंत, राजकुमारी अमृत कौर कुछ ऐसे नाम हैं जिनका उल्लेख करना आवश्यक है। इस प्रकार, भ्रष्टाचार का दायरा अभी भी कुछ हद तक सीमित था, और सीबीआई ऐसे मामलों को संभालने के लिए पूरी तरह से सक्षम थी। लेकिन आज, राजनीतिक नेता नौकरशाही की मिलीभगत से भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे रहे हैं। भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिए आवश्यक ईमानदारी और सत्यनिष्ठा का वातावरण दूषित हो गया है। जिन नेताओं को हम लोकतांत्रिक प्रक्रिया के माध्यम से चुनते हैं, वे स्वयं भ्रष्टाचार में लिप्त हैं, क्योंकि चुनाव प्रचार के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला धन दागी होता है। इसलिए, आज सीबीआई के कार्यक्षेत्र में न केवल नौकरशाही भ्रष्टाचार, बल्कि राजनीतिक नेताओं से जुड़े घोटालों और अन्य गंभीर अपराधों से निपटने के लिए बहुत अधिक वृद्धि हुई है।

आज के दौर में नौकरशाह और राजनेता रोटी और जैम की तरह हैं, भ्रष्टाचार के अपराध में एक-दूसरे से अविभाज्य और पूरक हैं—एक की जांच करो तो दूसरे की भी जांच करनी पड़ती है। मैं 'आज' कह रहा हूं, लेकिन यह भ्रष्टाचार अस्सी के दशक के मध्य में ही शुरू हो गया था, और मैं स्वयं उस मिलीभगत का प्रत्यक्ष गवाह हूं। वास्तव में, नौकरशाहों और राजनेताओं द्वारा एक-दूसरे

पर आरोप-प्रत्यारोप के खेल में भ्रष्टाचार को एक पिंग पोंग गेंद की तरह फेंके जाते देखकर मुझे इतना दुख हुआ कि मैंने अपनी सेवानिवृत्ति से एक साल पहले ही पूरी नौकरशाही के खिलाफ एक तीखा लेख लिख डाला।

यह कुछ-कुछ सुप्रीम कोर्ट के चार जजों के अभूतपूर्व कदम जैसा था, जिन्होंने संस्था की खामियों को उजागर करने के लिए सार्वजनिक रूप से सामने आकर अपनी कमियों को बताया था। मेरे समय में, और मेरे बाद भी, यह अभूतपूर्व था कि कोई अधिकारी सेवा में रहते हुए नौकरशाहों के खिलाफ इस तरह से खुलकर बोले। हालांकि मैंने लेख छपने से पहले कुछ एहतियाती कदम उठाए थे, फिर भी इसकी आलोचना हुई। हालांकि, मैंने मुस्कुराते हुए इसे टाल दिया। लेकिन इसके बारे में इस किताब में आगे विस्तार से चर्चा करेंगे।

* * * * *

भ्रष्टाचार की अत्यधिक चर्चा से हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि एक राष्ट्र के रूप में हमें सीबीआई पर अत्यंत गर्व होना चाहिए, क्योंकि इसने दूरदृष्टि अपनाई और पाँच दशकों में जो उपलब्धियाँ हासिल की हैं, वे सराहनीय हैं। इसका श्रेय संस्थापक निदेशक डीपी कोहली और प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री की दूरदृष्टि को जाता है, जिन्होंने मिश्रित कैडर प्रणाली की रूपरेखा तैयार की - सीबीआई का अपना कैडर, जिसमें यूपीएससी के माध्यम से वरिष्ठ स्तरों पर सीधे भर्ती किए गए अधिकारी और प्रतिनियुक्ति पर राज्य पुलिस अधिकारी शामिल हैं। सीधे भर्ती किए गए अधिकारियों को कुशल जासूस माना जाता था, जो राजनीतिक प्रभाव से मुक्त थे, क्योंकि उन्हें कभी किसी राज्य में सेवा करने या स्थानीय राजनेताओं से निपटने की आवश्यकता नहीं थी। स्थानीय स्तर पर सांसदों, विधानसभा सदस्यों (विधायकों), पंचायत पदाधिकारियों और अन्य लोगों से बातचीत करने पर प्रभाव उत्पन्न हो जाता है। लेकिन सीबीआई के विशेष कैडर को इन लोगों से दूर रखा गया था और उन्हें केवल जांच पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता थी। दूसरी ओर, भारतीय पुलिस सेवा (आईपीएस) में शामिल होने वाले अधिकारी पहले राज्यों में तैनात होते थे और उन्हें अपने राजनीतिक आकाओं, उनके नखरों और दबाव और सिफारिश से संबंधित विभिन्न उचित और अनुचित अनुरोधों से निपटना पड़ता था। सीबीआई और आईपीएस दोनों ही बहुत अलग-अलग संस्थाएं हैं, जिनकी अपनी-अपनी अनूठी क्षमताएं हैं। दोनों विभागों की भूमिकाएं और जिम्मेदारियां भिन्न-भिन्न हैं, लेकिन वे विशेष मामलों में एक साथ काम भी करते हैं, जिससे अक्सर महत्वपूर्ण सफलताएं मिलती हैं।

सिक्किम में एक संक्षिप्त प्रवास: 1979

मैं सीबीआई अधिकारियों के पहले बैच का सदस्य था, जिनकी भर्ती सीधे तौर पर हुई थी, और मैं कभी किसी राजनेता के करीब नहीं रहा। मैं यहाँ कोई उच्च नैतिक दावा नहीं कर रहा हूँ, न ही मैं यह कहना चाहता हूँ कि सीबीआई अधिकारी को इतना अलग-थलग कर दिया जाना चाहिए कि वे राजनेताओं से कभी भी घनिष्ठ संबंध न बना सकें, चाहे वे ऐसा चाहें ही क्यों न हों। बस ऐसा हुआ कि मैं हमेशा राजनीति से दूर रहा और 1979 तक मेरे मन में राजनीतिक गतिविधियों का ख्याल भी नहीं आया, जब मैं सिक्किम सतर्कता पुलिस प्रकोष्ठ की स्थापना के लिए सिक्किम में प्रतिनियुक्ति पर गया। मैं उस राज्य में तीन साल तक गृह सचिव को रिपोर्टिंग करने वाले

डीआईजी के पद पर रहा। सिक्किम के लिए मेरी वही भूमिका थी जो भारत के लिए सीबीआई निदेशक की होती है—नौकरशाही और राजनीतिक भ्रष्टाचार की जांच और उसके खिलाफ कार्रवाई करने वाला सर्वोच्च अधिकारी।

कार्यभार ग्रहण करते समय, मुख्यमंत्री नर बहादुर भंडारी ने मुझे अनौपचारिक रूप से यह आदेश दिया: 'मेरे पिता को भी मत बख्शना।' उस दृढ़ आश्वासन के साथ मैंने पूरे जोश और उत्साह के साथ अपना काम शुरू किया, लेकिन मुझे एक ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ा जिसका मैंने पहले कभी सामना नहीं किया था। पहली बार मुझे पता चला कि भ्रष्टाचार विरोधी जांच में एक ईमानदार अधिकारी को राजनीतिक हस्तक्षेप का सामना करना कैसा होता है।

जैसे ही मैंने कार्यभार संभाला, मैंने एक-एक करके मामले अपने हाथ में लेने शुरू किए। हर मामले के लिए मुझे वित्त मंत्री शराब पाल्डेन का पत्र मिलता, जिसमें वे जांच के विवरण जानने की कोशिश करते या मुझसे कुछ मामलों को आगे न बढ़ाने या उन्हें किसी विशेष दृष्टिकोण से देखने का अनुरोध करते। इनमें से कोई भी पत्र बहुत गंभीर नहीं था, लेकिन कुछ महीनों बाद यह बात परेशान करने लगी। मैंने इसके बारे में कुछ करने का फैसला किया और इसलिए एक दिन मैं पाल्डेन से व्यक्तिगत रूप से मिलने गया। मैं अपने साथ उन मामलों की फाइलें ले गया जिन पर मैं उनकी रुचि या हस्तक्षेप के कारण आगे नहीं बढ़ पाया था। उन्होंने मेरा गर्मजोशी से स्वागत किया और जैसे ही चाय परोसी गई, मैंने फाइलों का बड़ा ढेर उनके सामने मेज पर धड़ाम से रख दिया।

फाइलों का मकसद माहौल को थोड़ा नाटकीय बनाना था, हालांकि मैं अंदर से शांत था। न तो मुझे गुस्सा था और न ही डर। मैं अपना काम करने के लिए प्रतिनियुक्ति पर सिक्किम गया था, और अगर वे मुझे वहां नहीं चाहते तो मैं अपना कार्यकाल पूरा करके वापस आ जाता। हमारी बातचीत शुरू हुई और मैंने उन्हें समझाया कि सिक्किम सतर्कता पुलिस प्रकोष्ठ भ्रष्टाचार की जांच के लिए है। अब, मैं समझ सकता हूं कि सिक्किम एक छोटा शहर है, यहां ज्यादातर लोग एक-दूसरे को जानते हैं और रिश्तेदार हैं; इसलिए, जिसकी भी जांच होगी, वह अपने राजनीतिक संपर्कों के पास जाकर स्थिति को संभालने की कोशिश करेगा, लेकिन मुझे अपना काम करना था। 'आपके लगातार दखलंदाजी के कारण मैं अपना काम नहीं कर पा रहा हूं,' मैंने उनसे कहा।

संयोगवश, वे भी बहुत शांत थे और मुस्कुराते हुए मुझसे बोले, 'श्रीमान सेन, मैं एक राजनेता हूँ, मुझे इन लोगों ने वोट देकर चुना है। वे मेरे पास दौड़कर आएंगे, और मुझे उनकी कहानियाँ सुननी होंगी और उनकी तरफ की कहानी लिखकर आपको भेजनी होगी। लेकिन आप मुझे अनदेखा करने और अपना काम जारी रखने के लिए स्वतंत्र हैं।'

'मेरी बात अनसुनी करो और अपना काम करते रहो,' यह एक स्पष्ट और सीधा-सादा बयान था, जिससे मुझे हंसी आ गई। उन्होंने आगे बताया कि वे विभिन्न मामलों पर मुझे पत्र लिखना बंद नहीं कर सकते और न ही करेंगे, लेकिन मैं कानून के अनुसार आगे बढ़ने के लिए स्वतंत्र हूं। उन्हें ऐसा करना ही था, भले ही यह सिर्फ दिखावे के लिए हो, ताकि वे अपने निर्वाचन क्षेत्र को दिखा सकें कि उन्होंने कोशिश की लेकिन मुझे रोक नहीं सके।

यह किसी जांच अधिकारी और राजनेता के बीच की कोई आदर्शवादी बातचीत तो नहीं थी,

लेकिन आदर्शवादी दुनिया में तो भ्रष्टाचार की जांच करने की कोई गुंजाइश ही नहीं होती। इसलिए, इस दुनिया में रहते हुए मैं उनकी बात समझ सकता था। इस घटना से मुझे सबसे महत्वपूर्ण सीख यह मिली कि सीबीआई के सीधे भर्ती किए गए कैडर का कितना महत्व है, जिसका मैं भी एक सदस्य था, और इसी वजह से मैं मंत्री से बराबरी के स्तर पर बात कर सका। मैं बाहरी था और मुझे राजनेता को खुश करने की कोई ज़रूरत नहीं थी। अगर मेरी जगह सिक्किम का कोई पुलिस अधिकारी होता, तो हालात कुछ और होते।

एक राजनेता का सामना करना: 1993

पुलिस या किसी भी अन्य जांच एजेंसी में ईमानदार अधिकारी होना व्यक्ति विशेष के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। भ्रष्टाचार अकेले नहीं होता—यह परिस्थितियों और प्रत्येक व्यक्ति की व्यक्तिगत वास्तविकता का परिणाम होता है। सभी अधिकारी (अवैध) धन अर्जित करने के उद्देश्य से बल में शामिल नहीं होते। वास्तव में, अवैध रूप से अर्जित धन हमेशा भ्रष्टाचार का उद्देश्य नहीं होता। कभी-कभी एक ईमानदार अधिकारी इस गलत धारणा का शिकार हो सकता है कि भ्रष्ट होना या कम से कम भ्रष्टाचार में सहभागी होना सामान्य बात है। किसी परिस्थिति का सामना करते समय, क्या कोई अधिकारी भ्रष्टाचार को 'ना' कह पाएगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि जिन लोगों का वह सामना कर रहा है उनके बीच सत्ता संबंध कैसे हैं, या भ्रष्टाचार के स्थल से उसका स्थानिक और मनोवैज्ञानिक अलगाव कैसा है।

मार्च 1993 के भयानक मुंबई बम धमाकों के बाद, यह मामला मेरे नेतृत्व में सीबीआई के पास आया। उस समय मैं संयुक्त निदेशक था। जांच के तहत, कुछ लोगों को, जिनमें ज्यादातर छोटे व्यापारी और कपड़ा उद्योग के मजदूर शामिल थे, बम बनाने में संलिप्त होने के संदेह में गिरफ्तार किया गया। बाद की जांच में संदेह को निर्णायक रूप से साबित नहीं किया जा सका और निश्चित रूप से उन पर आपराधिक आरोप नहीं लगाए जा सके। गिरफ्तार किए गए लोग महाराष्ट्र के उस समय के सबसे शक्तिशाली राजनेताओं में से एक, अब्दुल रहमान अंतुले के निर्वाचन क्षेत्र से थे, जो प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के शासनकाल में मुख्यमंत्री रहे थे और बाद में प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिम्हा राव की सरकार में स्वास्थ्य मंत्री बने थे।

अंतुले ने गिरफ्तारियों को हल्के में नहीं लिया। वे क्रोधित थे और उन्होंने निदेशक को कड़े शब्दों में पत्र लिखकर दोषी अधिकारियों के खिलाफ कार्रवाई की मांग की, जिनमें मेरे पुलिस अधीक्षक (एसपी) और उप पुलिस अधीक्षक (डीएसपी) भी शामिल थे। पत्र मेरे पास पहुंचा और मुझे कार्रवाई करनी पड़ी। मेरी राय में, गिरफ्तारियां जल्दबाजी में और गलती से की गई थीं, लेकिन इसमें कोई दुर्भावना नहीं थी। मेरे अधिकारी निलंबन या बर्खास्तगी के लायक नहीं थे। लेकिन अंतुले ने मामले को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करने की जिद में कोई कसर नहीं छोड़ी और अधिकारियों पर जबरन वसूली, रिश्वतखोरी, दुर्भावना और भेदभाव के आरोप लगाए।

मैं ऐसी स्थिति में आ गया था जहाँ मुझे यह स्वीकार करना पड़ा कि अनजाने में एक गलती हो गई थी, और फिर भी एक शक्तिशाली राजनेता की अनुचित मांगों के आगे झुकना भी उचित नहीं था। मैंने अंतुले से आमने-सामने मिलने का फैसला किया और उनसे मिलने का समय मांगा। चूंकि मैं सीधे भर्ती हुआ था, इसलिए मैं अंतुले से पहले कभी नहीं मिला था, लेकिन वह मुझे

देखकर खुश हुए और इस बात से भी प्रसन्न हुए कि सीबीआई के संयुक्त निदेशक उनसे मिलना चाहते हैं। उन्हें मुलाकात का उद्देश्य नहीं पता था, और मैंने मामला उठाने से पहले कुछ देर तक उनसे बातचीत की। जैसे ही मैंने मामले का जिक्र किया, उनका सौम्य स्वभाव अचानक शत्रुतापूर्ण हो गया और उनके चेहरे पर शिकन आ गई।

उन्होंने फिर दोहराया कि उनके दावे गिरफ्तार किए गए लोगों से मिली प्रत्यक्ष जानकारी पर आधारित थे, और अधिकारियों ने या तो रिश्वत ली थी या उन्हें धमकाया और डराया था। मैंने उनकी बात सुनी और कहा कि मैं जांच करूंगा। जांच करने लायक कुछ नहीं था; मुझे अपने अवलोकन पर पूरा भरोसा था और मैं अपना विचार बदलने वाला नहीं था, लेकिन उन्हें विश्वास में लेने और शांत करने के लिए, मुझे केवल अंतुले को जांच का आश्वासन देना था। कुछ दिनों बाद मैं उनसे फिर मिला और उन्हें बताया कि उनके दावों में कोई दम नहीं है और उनसे अपने आरोप वापस लेने पर जोर दिया, जिसे उन्होंने जल्द ही मान लिया।

ऐसा हर दिन नहीं होता कि किसी के पास इतना नैतिक अधिकार हो कि वह ऊंचे और शक्तिशाली लोगों के सामने डटकर खड़ा हो सके। मैं ऐसा केवल इसलिए कर सका क्योंकि मैं राजनेताओं की दुनिया से अलग-थलग था। मैं सीधे भर्ती हुआ था और बिना किसी से कोई एहसान मांगे ही पदोन्नति पाकर ऊपर उठा था। मुझे कभी भी उनके अधीन होने का कोई डर नहीं था।

अंतुले बाद में मेरे दोस्त बन गए और आने वाले कई सालों तक हमारा गहरा रिश्ता बना रहा। उनसे मेरी पहली मुलाकात शायद सीबीआई के इतिहास में एक छोटी सी घटना है, लेकिन इसमें एक सबक छिपा है—अगर आप गहराई से देखें और समझें कि वहां वास्तव में क्या हुआ था और क्यों। एक ताकतवर राजनेता अपनी मनमानी नहीं कर सका क्योंकि शीर्ष पुलिस अधिकारी झुकने को तैयार नहीं था। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि भविष्य के राजनेता धीरे-धीरे सीबीआई के शीर्ष पदों पर सीधे भर्ती किए गए विशेषाधिकार प्राप्त अधिकारियों को नियुक्त करने की इस प्रक्रिया को समाप्त क्यों करेंगे।

क्योंकि आखिरकार, राजनेताओं को अपनी बात मनवानी ही होती है।

कामकाज सीखना: 1963

जब मेरी भर्ती हुई थी, तब सीबीआई के संस्थापक निदेशक डीपी कोहली पद पर थे। हालांकि मुझे एक मामले को छोड़कर उनके साथ काम करने का ज्यादा मौका नहीं मिला, लेकिन मुझे उनकी एक दिलचस्प बात याद है—वे अपनी पूरी केस फाइल खुद लिखते थे, न कि किसी से लिखवाते थे। वे एक दूरदर्शी व्यक्ति थे जिन्होंने सीबीआई की कैडर प्रणाली को एक अनोखे तरीके से तैयार किया था, जिसमें सीधे भर्ती किए गए अधिकारियों और प्रतिनियुक्ति पर आए राज्य पुलिस अधिकारियों का मिश्रण था। वे दोनों प्रणालियों की खूबियों और कमियों को समझते थे और जानते थे कि प्रभावी जांच के लिए दोनों का साथ मिलकर काम करना जरूरी है।

जब आप जेम्स बॉन्ड की फिल्मों और शर्लक होम्स के उपन्यासों को देखते हुए बड़े होते हैं, तो आप इन किरदारों को अलौकिक मानते हैं, जो जन्मजात ही असाधारण कौशल से संपन्न होते हैं और हमारे नायक बन जाते हैं। लेकिन सीबीआई अधिकारी के रूप में अपने करियर में मैंने

महसूस किया कि कोई भी जन्म से बॉन्ड या होम्स नहीं होता, बल्कि काम करते-करते ही इस पेशे की बारीकियां सीखता है। अगर आपको किसी ऐसे अपराधी को पकड़ना है जो जालसाजी में माहिर है, तो उसे ऐसा लालच दें जिसे वह आपके लिए कोई जाली दस्तावेज़ बनाए बिना न पकड़ सके (प्रधानमंत्री के हस्ताक्षर की जालसाजी); अगर आपको किसी अपराध का पता लगाना है, तो अपराध से प्रभावित सभी क्षेत्रों का पता लगाएं (ट्रेन विस्फोट के मामले), इत्यादि। और फिर, कौशल और प्रशिक्षण के अलावा, भाग्य या संयोग या अप्रत्याशित घटना का भी एक कारक होता है जो जांच अधिकारी के लिए एक फरिश्ते की तरह आता है और न्याय की प्रक्रिया को गति प्रदान करता है।

प्रधानमंत्री के हस्ताक्षर की जालसाजी: 1967

भारतीय रेलवे के पूर्व अधिकारी राम सूरत राय एक आत्मविश्वासी व्यक्ति थे, जिनका सत्ता के गलियारों में अक्सर आना-जाना रहता था। वे एक आदर्श सम्मानित पारिवारिक व्यक्ति थे, जिनका एक पत्नी और एक बच्चा था; ऐसे व्यक्ति जिनका हर कोई सम्मान करता था और जिन पर किसी को भी अपराधी होने का संदेह नहीं होता था। वास्तव में, 'अपराधी' शब्द का प्रयोग करना थोड़ा अजीब लगता है—उन्हें 'कलात्मक चोर' कहना शायद अधिक उपयुक्त होगा। बोकारो इस्पात संयंत्र (बीएसपी) के अधिकारियों द्वारा संचालित एक विद्यालय में शिक्षक का पद रिक्त था। बीएसपी को प्रधानमंत्री कार्यालय (पीएमओ) से एक पत्र प्राप्त हुआ, जिस पर स्वयं प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के हस्ताक्षर थे, जिसमें राय की पत्नी को यह पद देने की सिफारिश की गई थी। जाहिर है, इस पत्र को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता था और इस्पात संयंत्र के भर्ती विभाग द्वारा इस आदेश का जल्द से जल्द पालन किया जाना था। इस्पात संयंत्र के सचिव ने इस मामले में और भी गंभीरता दिखाई। वे किसी अन्य कार्य से नई दिल्ली आए हुए थे और उन्होंने पीएमओ से मिलकर वहां के अधिकारियों को यह सूचित करना उचित समझा कि प्रधानमंत्री के निर्देशों का पूरी लगन से पालन किया जा रहा है।

'क्या निर्देश?' पलटवार हुआ और भेद खुल गया। प्रधानमंत्री कार्यालय से बसपा को ऐसा कोई पत्र नहीं भेजा गया था। राय को पहले जालसाजी के आरोप में रेलवे से बर्खास्त किया जा चुका था। अब वह अपनी इस कला का इस्तेमाल प्रधानमंत्री के हस्ताक्षर के साथ-साथ मंत्रियों और सांसदों के हस्ताक्षर भी जाली बनाने में कर रहा था। बसपा सचिव का प्रधानमंत्री कार्यालय को फोन करना वाकई बुद्धिमानी भरा कदम था, लेकिन उन्होंने पत्र की सामग्री की पुष्टि करने के लिए नहीं, बल्कि संबंधित अधिकारियों से अनुमति लेने के लिए फोन किया था। नौकरशाही का यही तरीका है, सावधानी और बचाव को प्राथमिकता नहीं दी जाती, जो मायने रखता है वह है नेता को खुश करना।

प्रधानमंत्री के हस्ताक्षर की जालसाजी करना एक अत्यंत गंभीर अपराध था क्योंकि इससे आंतरिक और बाहरी सुरक्षा को खतरा था। भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) की धारा 468 के तहत यह एक गैर-जमानती अपराध है, जिसके लिए सात वर्ष या उससे अधिक कारावास और जुर्माना हो सकता है। इस्पात संयंत्र और प्रधानमंत्री कार्यालय में व्याप्त चिंता और तनाव के बीच, यह मामला मेरे पास आया और मैं बोकारो गया। मैंने इस्पात संयंत्र के अधिकारियों से उम्मीदवार

श्रीमती राय को एक टेलीग्राम भेजने को कहा, जिसमें लिखा था, 'चयनित। कृपया अंतिम साक्षात्कार के लिए आएं।'

जांच की योजना एक सुनियोजित प्रक्रिया है। हम कुछ कदम तय करते हैं, जिनमें से कुछ अगले कदमों के बारे में आश्वस्त और कुछ अनुमान पर आधारित होते हैं। साक्षात्कार का फोन एक तरह का प्रलोभन था, इस विश्वास के साथ कि वह अपने दोषी पति के साथ आएगी। राय एक विजयी भाव से भरे व्यक्ति थे। वे यह जाने बिना ही जीत हासिल करने आए थे कि यह एक दिखावटी साक्षात्कार और एक सोची-समझी चाल थी। भवन में उपस्थित सभी अधिकारियों ने उनका सम्मानपूर्वक स्वागत किया, हाथ जोड़कर अभिवादन किया और मुस्कुराते हुए अभिवादन किया। आखिर वे प्रधानमंत्री का पत्र लेकर आए थे। और अधिक शिष्टाचार दिखाने के लिए, उन्हें आधिकारिक साक्षात्कार में शामिल होने के लिए आमंत्रित किया गया। साक्षात्कार समिति के सदस्यों से बातचीत करते हुए, उन्होंने विनम्रतापूर्वक उल्लेख किया कि प्रधानमंत्री ने उनकी पत्नी को इस पद के लिए सिफारिश करके कितनी कृपा की थी।

बोर्ड के सामने यह स्वीकारोक्ति पुख्ता सबूत के लिए आवश्यक थी। हालांकि, ठोस सबूत अभी तक मेरे पास नहीं थे, और मेरा पहला अनुमान था कि वे वाराणसी स्थित उनके आवास पर होंगे। मैंने उन्हें पुलिस हिरासत में धनबाद भेज दिया, जबकि उनकी पत्नी, जो शायद सह-अपराधी थीं या नहीं, को ट्रेन से गाजीपुर भेज दिया गया। इस बीच, मेरी टीम और मुझे वाराणसी स्थित उनके आवास पर किसी को भी इसकी भनक लगने से पहले ही पहुंचना पड़ा। मैंने महिला को हिरासत में नहीं लिया क्योंकि यदि वह सह-अपराधी होती, तो उसकी वापसी में देरी से कई क्षेत्रों में संदेह पैदा हो सकता था।

ऐसा लग रहा था मानो प्रकृति माँ इस पूरे घटनाक्रम को किसी एक्शन ड्रामा की तरह देख रही हो और उसे इतना पसंद आया कि उसने क्लाइमेक्स में कुछ और नाटकीय दृश्य जोड़ने का फैसला किया। रात के अँधेरे में लगातार बारिश होने लगी, जबकि हम बसपा ड्राइवर पंडितजी की स्टेशन वैगन में बैठे रहे। ग्रैंड ट्रंक रोड पर, वह अक्सर धान के खेतों से बचते हुए गाड़ी मोड़ते थे, ताकि जल्द से जल्द वाराणसी पहुँच सकें। एक जगह सड़क संकरी होकर जाम लग गया, जहाँ दो ट्रक आमने-सामने आ गए और कोई भी आगे नहीं बढ़ पा रहा था, जिससे यातायात रुक गया। बारिश रुक गई थी, लेकिन समय पर पहुँचने की मेरी बेचैनी कम नहीं हुई थी। अचानक, पंडितजी मन ही मन बड़बड़ाते हुए और ऐसे सनकी इंसानों को पैदा करने वाले पूर्वजों को कोसते हुए, बाईं ओर मुड़े और जीप को पास के खेतों में उतार दिया। क्या ही हुनर था! स्टेशन वैगन एक झाड़ी पर चढ़ गई, एक पेड़ से टकराई, एक नाले में जा गिरी और आधा मील तक इस भयानक झटकेदार सफर के बाद, वह दाईं ओर मुड़ा, एक खाई में उतरा, बाहर निकला और एक सर्वविजयी टैंक की तरह सड़क पर फिर से प्रकट हो गया। पंडितजी इस कहानी के असली जेम्स बॉन्ड थे।

हमें राय के आवास से ढेरों सबूत मिले—सरकारी मुहरें, प्रधानमंत्री समेत मंत्रियों के लेटरहेड, जाली रेलवे पास, मंत्रियों और सांसदों के जाली पत्र। वैसे, उनकी पत्नी इस अपराध में भागीदार नहीं थीं, क्योंकि जब हम गाजीपुर स्थित उनके आवास पर पहुँचे तो हमें और भी सबूत मिले जिन्हें छुआ तक नहीं गया था, क्योंकि उन्हें अपने पति की करतूतों के बारे में कोई जानकारी नहीं

थी।
इतिहास का एक छोटा सा टुकड़ा सामने आया जिसे सीधे सीबीआई संग्रहालय में रखा गया और सीबीआई से संबंधित खबरों में अक्सर टेलीविजन पर दिखाया जाता है— प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के हस्ताक्षर, जिन्हें मैंने सबूत के तौर पर हासिल किया था। मुझे आज भी वह दिन याद है जब मैं उनके कार्यालय में गया था— एक कनिष्ठ अधिकारी के लिए यह कोई छोटी उपलब्धि नहीं थी; उन्होंने मेरी बात मान ली। फोरेंसिक विशेषज्ञों को जाली हस्ताक्षर से मिलान करने के लिए इस हस्ताक्षर की आवश्यकता थी।
मॉक इंटरव्यू एक ऐसी चतुराई थी जो आपको प्रशिक्षण स्कूलों में नहीं, बल्कि कार्यस्थल पर ही सीखने को मिलती है।
एक अंदरूनी साजिश: 1968
बलात्कार, हत्या और डकैती जैसे अपराधों की गहन और त्वरित जांच आवश्यक है। हालांकि, सीबीआई जांच अधिकारी के काम में एक और गुण जुड़ जाता है। प्रस्तुत और गहनता से सोचे-समझे तथ्य पूजा मंत्रों की तरह जपते हैं, उनका पाठ गहन चिंतन में की गई प्रार्थनाओं के समान होता है। अपराध के सबसे सूक्ष्म कणों को भी पकड़ने के लिए सूक्ष्म ब्रश से छानबीन करने का यही तरीका कारगर होता है। अपराध की तिथि, समय और स्थान से लेकर पूरी प्रक्रिया में इस बात का ध्यान रखना पड़ता है। प्रधानमंत्री के हस्ताक्षर की जालसाजी से लेकर बाबरी मस्जिद विध्वंस की बरसी पर 1993 में हुए पांच सिलसिलेवार ट्रेन विस्फोटों तक, इसी प्रक्रिया ने मुझे महत्वपूर्ण सफलताएं दिलाईं।
1968 में, मैं सीबीआई का एक कनिष्ठ अधिकारी था और मुझे केवल पाँच साल का अनुभव था। उस साल दिसंबर की एक ठंडी सुबह दिल्ली में, मैं भैरों स्ट्रीट के 4311 नंबर पर स्थित लक्ष्मी कॉर्नर के सामने खड़ा था—पुरानी दिल्ली की भीड़भाड़ वाली संकरी गली, जिसके दोनों ओर घर बने हुए थे, जिनमें से अधिकतर जर्जर और गंदे थे। मैं वहाँ कैसे पहुँचा? सरकारी इकाई स्टेट ट्रेडिंग कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया (एसटीसी) में दो चेक धोखाधड़ी के मामले थे। स्टेट बैंक ऑफ इंडिया (एसबीआई) ने निगम के एक विभाग द्वारा जारी किए गए 10 रुपये के चेक के बदले निगम से 10,989 रुपये डेबिट कर दिए थे। कुछ महीनों बाद, एसबीआई ने उसी विभाग द्वारा जारी किए गए 38 रुपये के एक अन्य चेक के बदले 38,300 रुपये डेबिट कर दिए। इन दोनों चेकों के बदले एसटीसी के खाते से लगभग 50,000 रुपये गायब हो गए थे।
एसटीसी को इस बात का कोई अंदाजा नहीं था कि उसने चेक किसे जारी किए थे। प्रतिदिन होने वाले सैकड़ों लेन-देन और जनसंपर्क कार्यालय (पीआरओ) विभाग में आने-जाने वाले लोगों की भारी भीड़ के बीच यह पता लगाना मुश्किल था। जिन दो बैंकों में चेक जमा किए गए थे, वे भी चेक जमा करने या भुनाने वाले खाताधारक की पहचान के बारे में कोई जानकारी नहीं दे सके।
जब आप 2019 में यह कहानी पढ़ेंगे तो यह अजीब लग सकती है। आप सोचेंगे, 'यह कैसे संभव हो सकता है? बैंक दस्तावेजों को लेकर इतने सतर्क रहते हैं, उनके पास हमारी सारी जानकारी होती है, है ना?'
यह सच है कि आजकल बैंकों के पास हमारी बायोमेट्रिक जानकारी भी होती है। लेकिन उस

समय रिकॉर्ड रखने की कोई कंप्यूटरीकृत प्रणाली नहीं थी, न ही ग्राहक को जानने (केवाईसी) के अनिवार्य नियम थे, और न ही किसी इमारत में आने-जाने वालों का पता लगाने के लिए सीसीटीवी कैमरे थे। उस समय इस तरह की धोखाधड़ी होना कोई असामान्य बात नहीं थी।

एसटीसी चाहती थी कि सीबीआई इस पहेली को सुलझाए। सीबीआई निदेशक ने ब्यूरो की दिल्ली शाखा को जांच का जिम्मा सौंपा, लेकिन चार महीने बीत जाने के बाद भी जांच में कोई नतीजा नहीं निकला। नाराज निदेशक ने यूनिट को फटकार लगाई और मेरी यूनिट, फ्रॉड स्क्वाड वन को यह काम सौंपा। हमने चार दिनों में मामला सुलझा लिया।

भैरों गली में वापसी। यह जगह मेरे लिए सबसे सुरक्षित विकल्प थी क्योंकि दोनों चेक उन कंपनियों के नाम पर जारी किए गए थे जिनका पंजीकृत पता इसी गली में था। इनमें से एक पता गलत निकला—वह इमारत मिल ही नहीं पाई। दूसरा पता वही था जिसके सामने मैं खड़ा था, यह पता लगाने की कोशिश कर रहा था कि मैं किसे ढूंढ रहा हूँ। यह कोई दफ्तर नहीं था; यह एक रिहायशी इमारत थी जिसमें चालीस परिवार रहते थे! 'क्या इनमें से किसी का एसटीसी से कोई संबंध है?' मेरी पहली जांच यही थी।

मैंने अपने एक अधिकारी को निवासियों का सर्वेक्षण करने के लिए भेजा। पहले सर्वेक्षण से कोई नतीजा नहीं निकला, लेकिन एक डॉक्टर की तरह मुझे अपने निदान पर पूरा भरोसा था— यह अंदरूनी मामला था; इसलिए मैंने परीक्षण दोहराया। इस बार मैंने अपनी टीम के एक बहुत ही बुद्धिमान अधिकारी, हेड कांस्टेबल नरेंद्र सिंह चावला को भेजा।

रमेश चंद्र शर्मा दिसंबर 1968 तक एसटीसी के पीआरओ के कर्मचारी थे और जब मैं यह जांच कर रहा था, तब तक उनका तबादला आयातित कारों के विभाग में हो चुका था। भैरों स्ट्रीट की जिस इमारत के सामने मैं खड़ा था, उसमें उनका निवास भी शामिल था। लेकिन उस समय वे इमारत में नहीं थे; वे अपनी पत्नी के साथ अपने ससुराल वालों से मिलने अलवर गए हुए थे।

मैं स्वयं एक परिवार वाला व्यक्ति था, दिल्ली में अपनी पत्नी और दो साल की बेटी के साथ अकेला रहता था। कर्तव्य की पुकार पर, मुझे दिसंबर की एक ठंडी रात को दिल्ली में अपने बीमार बच्चे और पत्नी को घर पर छोड़कर शर्मा को पकड़ने के लिए अलवर जाना पड़ा।

हमने शर्मा को अलवर में उसके ससुराल से गिरफ्तार किया। मैं यह तो नहीं कह सकता कि उसकी मानसिक स्थिति कैसी थी—वह शांत लग रहा था और उसने तुरंत अपना जुर्म कबूल कर लिया। लेकिन उसकी पत्नी और उसके परिवार के लिए यह एक बड़ा सदमा और शर्मिंदगी थी। जब मेरी टीम तलाशी और ज़ब्ती अभियान चला रही थी, तब पत्नी लाल चेहरे और आँखों में खामोश हताशा लिए खड़ी रही। शायद उसे उसके अपराध का कुछ अंदाज़ा था, क्योंकि हमें शर्मा को लिखे उसके पत्र मिले, जिनमें उसने उसे अपनी 'नई कमाई' बर्बाद न करने की चेतावनी दी थी। हमें जो चीज़ें मिलीं, उनमें एक डायरी भी थी, जिसमें 9 मई 1968 की एक प्रविष्टि थी: 'उपरोक्त तिथि को मेसर्स लक्ष्मी कॉर्नर, दिल्ली के पक्ष में चेक जारी किया गया।' यह उसके अपराध का पुख्ता सबूत था।

मेरा मामला तो सुलझ चुका था, लेकिन हमें और पुख्ता सबूत ढूंढने थे। एक छोटी सी टिन की डिब्बी ने मेरा ध्यान खींचा। मैंने उसे उठाया और खोला तो देखा कि उसमें नीले धागे से बंधी

चिट्ठियों का एक गुच्छा करीने से रखा हुआ था। अचानक, मुझे अपने हाथों का स्पर्श महसूस हुआ, पत्नी की आँखों से आंसू बह रहे थे। हालांकि उसने खुद को संभाले रखा, कांपती हुई आवाज में बोली, 'ये उनकी चिट्ठियां हैं, रहने दीजिए।'

भावनाओं ने मुझमें मौजूद सख्त मिजाज अधिकारी पर काबू पा लिया। मैंने चिट्ठियों को वापस डिब्बे में रखा और उसे उसे सौंप दिया।

अपराध: एसटीसी के पीआरओ विभाग में किसी व्यक्ति द्वारा प्रस्तुत फर्जी बिलों के भुगतान के लिए दो चेक जारी किए गए थे। चेक छोटी रकम के थे, लेकिन किसी ने ब्लेड का इस्तेमाल करके रकम में हेराफेरी की थी और मूल लिखावट की नकल करके कुछ अतिरिक्त अंक जोड़ दिए थे। लेकिन यह साबित करना आसान नहीं था कि शर्मा वही व्यक्ति था जिसने फर्जी दस्तावेज और बिल जमा किए थे, चेक में हेराफेरी की थी, उसे बैंकों में जमा कराया था और अतिरिक्त धन अर्जित किया था। बैंक अधिकारियों ने शर्मा को चेक जमा करने वाले व्यक्ति के रूप में पहचानने से इनकार कर दिया। मेरा अगला विकल्प चेक पर लिखी लिखावट का मिलान शर्मा की अपनी लिखावट से करवाना था, जो हमें आयातित कारों के सेल में उनके द्वारा भरे गए अनुरोध पत्रों पर मिली थी। पीआरओ सेल में, जहां उनकी पहले पोस्टिंग थी, उनके हस्तलिखित दस्तावेजों का कोई सुराग नहीं मिला क्योंकि वे वहां टाइपिस्ट के रूप में काम करते थे।

तो, अब हमारे पास वह व्यक्ति था, कार्यालय के दस्तावेजों से उसके हस्तलेख के नमूने थे और उसका तत्काल बॉस था जिसने पुष्टि की थी कि कार्यालय के दस्तावेज शर्मा द्वारा लिखे गए थे। पुलिस हिरासत में, शर्मा को गवाहों की उपस्थिति में कागज़ों पर एक निश्चित पाठ लिखने के लिए कहा गया। मैं उससे बार-बार लिखने के लिए कहता, दोनों हाथों से अलग-अलग लिखने के लिए कहता, बैठकर, खड़े होकर और लेटकर लिखने के लिए कहता। मैं उसके हस्तलेख के नमूने पूरी तरह से प्राप्त करना चाहता था। फिर मैंने एक विशेषज्ञ की राय ली जिसने उसकी हस्तलेख का मिलान किया और उसे सहायक साक्ष्य के रूप में इस्तेमाल किया। इन सभी सबूतों के साथ, यह मानते हुए कि हमारा मामला पुख्ता है, हम निचली अदालत में गए। हम मुकदमा हार गए।

एक अहम गवाह मुकर गया और उसने शर्मा की लिखावट पहचानने से इनकार कर दिया। किसी अपराध की कहानी में अपराधी, पुलिस और जांचकर्ता, पीड़ित और फिर भ्रष्ट अवसरवादी तटस्थ लोग होते हैं। बिना कुछ किए भी, वे कभी-कभी किसी मामले को बनाने या बिगाड़ने में अहम भूमिका निभा सकते हैं, और यही बात उन्हें भ्रष्ट होने के लिए प्रेरित करती है।

हमने उच्च न्यायालय में अपील की, जहाँ हमारे साक्ष्यों को बेहतर ढंग से समझा गया। लिखावट विशेषज्ञ ने दोनों चेकों पर जाली लिखावट को शर्मा की लिखावट के रूप में पहचाना और इसे वैध साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया गया। शर्मा की पत्नी द्वारा उन्हें लिखे गए पत्रों से भी इसकी पुष्टि हुई, जिनमें उन्होंने 'नई संपत्ति' का उल्लेख किया था। शर्मा को चेक धोखाधड़ी के दोनों मामलों में दोषी पाया गया।

उसने मेरे सामने जो बयान दिया, जो भारतीय कानूनों के तहत सबूत नहीं है, उसमें उसने कहा कि उसे अपराध करने का विचार पीआरओ विभाग में भुगतान को मंजूरी देने के लापरवाह तरीके से आया।

शर्मा ने मुझे फ्रैंक विलियम अबग्नेल जूनियर की याद दिला दी, जो दुनिया के सबसे कुख्यात ठगों और जालसाजों में से एक था। 15 से 21 वर्ष की आयु के बीच, अबग्नेल ने बारह देशों में लाखों डॉलर के चेक धोखाधड़ी को अंजाम दिया, जिसमें उसने आठ व्यक्तियों का रूप धारण किया, जिनमें पैन-अमेरिकन एयरलाइंस के पायलट, एक वकील और एक डॉक्टर शामिल थे। कानून के साथ वर्षों तक लुका-छिपी खेलने के बाद, उसे 1969 में 21 वर्ष की आयु में गिरफ्तार किया गया। उसने फ्रांस, स्वीडन और अमेरिका में जेल की सजा काटी। जेल में अपने बारहवें वर्ष के पांच साल पूरे होने पर, उसे इस शर्त पर रिहा करने का प्रस्ताव दिया गया कि वह फेडरल ब्यूरो ऑफ इन्वेस्टिगेशन (एफबीआई) को बैंक धोखाधड़ी का पता लगाने में मदद करेगा। अबग्नेल एक विलक्षण प्रतिभा था, एक ऐसा जीनियस जो बैंक धोखाधड़ी को किसी और से बेहतर समझता था। आज, वह अमेरिका का अग्रणी सुरक्षा सलाहकार, एफबीआई अकादमी में व्याख्याता और वित्तीय धोखाधड़ी परामर्श कंपनी अबग्नेल एंड एसोसिएट्स का मालिक है।

हमारे शर्मा ने भी चेक धोखाधड़ी के कारण एसटीसी को कुछ सबक सिखाए। 1968 के बाद, एसटीसी ने हस्तलिखित चेकों को पूरी तरह से बंद करके केवल मुद्रित चेक ही जारी किए।

ट्रेन विस्फोट: 1993

देश में औसतन प्रतिवर्ष तीन मिलियन से अधिक अपराध दर्ज किए जाते हैं। राष्ट्रीय अपराध अभिलेख ब्यूरो (एनसीआरबी) की 2016 की रिपोर्ट के अनुसार, वर्ष 2016 में कुल 48,31,515 संज्ञेय अपराध दर्ज किए गए, जिनमें 29,75,711 आईपीसी अपराध और 18,55,804 विशेष एवं स्थानीय कानून (एसएलएल) अपराध शामिल थे। यह पिछले वर्ष की तुलना में 2.6 प्रतिशत की वृद्धि दर्शाता है।

इनमें से कितने अपराध सुलझ पाते हैं? मामलों को प्राथमिकता कैसे दी जाती है? कौन तय करता है कि किन मामलों की जांच पहले की जानी चाहिए? भारत में अपराध सुलझाने और दोषियों को सजा दिलाने की दर बेहद कम है। अधिकतर मामले अनसुलझे रह जाते हैं क्योंकि कोई सबूत या सुराग नहीं मिल पाता। कुछ मामलों में, पुलिस आरोपी की पहचान करती है, सबूत इकट्ठा करती है और आरोपपत्र दाखिल करती है, जिसके बाद मामला अदालत में जाता है। लेकिन हमारी दोषसिद्धि दर कम है क्योंकि गवाह मुकर जाते हैं या इकट्ठा किए गए सबूत अदालत में मान्य नहीं होते। ये कुछ मुख्य कारण हैं, और जांच विफल होने के कई अन्य कारण भी हैं, और अगर मैं उन सभी को यहां सूचीबद्ध करूं तो यह उबाऊ होगा - आखिर यह कोई प्रशिक्षण पुस्तिका तो नहीं है।

कई कारणों में से एक उल्लेखनीय कारण यह है कि जब कोई मानवीय क्षति नहीं होती, और जाहिर तौर पर कोई पीड़ित न्याय मांगने के लिए पुलिस के पास नहीं जाता। ऐसे में पुलिस मामले को नजरअंदाज कर सकती है। वर्दीधारी कर्मियों के प्रति निष्पक्षता बरतते हुए, यह कहना उचित होगा कि वे सभी प्रकार के मामलों को संभालने में अत्यधिक व्यस्त रहते हैं, यही कारण है कि मैंने अक्सर यह तर्क दिया है कि पुलिस विभाग के भीतर कानून व्यवस्था बनाए रखने और अपराध की जांच करने का कार्य अलग-अलग इकाइयों द्वारा किया जाना चाहिए। अपराध की जांच करने वालों पर अन्य कर्तव्यों का बोझ नहीं डाला जाना चाहिए।

मैं इस पहलू पर किताब में आगे चर्चा करूँगा। लेकिन, उन मामलों के बारे में बात करें जो सुलझ नहीं पाते, तो इसका सीधा सा जवाब यह है कि उन मामलों के पीछे के अपराधी और भी बेखौफ हो जाते हैं।

5 दिसंबर 1993 को रात 10:50 बजे उत्तर प्रदेश के कानपुर रेलवे स्टेशन के पास नई दिल्ली से हावड़ा जा रही राजधानी एक्सप्रेस में बम विस्फोट हुआ। अगले दिन सुबह 5 बजे कानपुर के पास हावड़ा से नई दिल्ली जा रही राजधानी एक्सप्रेस में एक और विस्फोट हुआ। सुबह 5:15 बजे राजस्थान के कोटा रेलवे स्टेशन के पास मुंबई सेंट्रल से नई दिल्ली जा रही राजधानी एक्सप्रेस में एक और विस्फोट हुआ। सुबह 6 बजे गुजरात के वलसाड स्थित बेस्टन रेलवे स्टेशन पर सूरत से मुंबई जा रही फ्लाइंग क्वीन एक्सप्रेस में चौथा बम विस्फोट हुआ। पांचवां बम विस्फोट सुबह 7:05 बजे आंध्र प्रदेश के मलकाजगिरि के पास हैदराबाद से निजामुद्दीन जा रही आंध्र प्रदेश एक्सप्रेस में हुआ। छठा बम विस्फोट बैंगलोर-कुर्ला एक्सप्रेस में किया जाना था, लेकिन महाराष्ट्र के कर्जत के पास विस्फोटक उपकरण का पता चलने और उसे ट्रेन से बाहर फेंकने के कारण इसे नाकाम कर दिया गया।

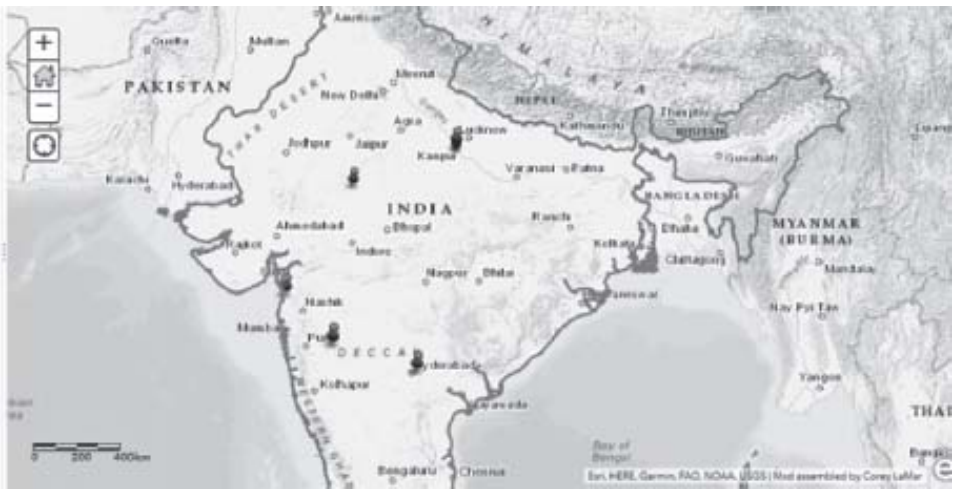

छह सिलसिलेवार बम धमाकों ने पूरे देश में सनसनी फैला दी। हर कोई यही समझ पा रहा था कि ये धमाके 6 दिसंबर 1992 को हुए भयानक बाबरी मस्जिद विध्वंस की पहली बरसी पर हुए थे और ऐसा लग रहा था मानो ये किसी त्रासदी का बदला लेने की साजिश हो, जिसने भारत के सामाजिक ताने-बाने को हमेशा के लिए बदल दिया था। योजनाबद्ध तबाही के मुकाबले हताहतों की संख्या कम थी। ज्यादातर धमाकों में तीन या चार लोग घायल हुए, और एपी एक्सप्रेस में हुए सिर्फ एक धमाके में दो लोगों की मौत हुई। इस बात का कोई सुराग नहीं था कि ये अपराध किसने किया; किसी भी आतंकवादी समूह ने इसकी जिम्मेदारी नहीं ली थी। धमाकों में कोई समानता नहीं थी; ये धमाके मध्य भारत के अलग-अलग मार्गों पर चलने वाली छह अलग-अलग ट्रेनों में हुए थे, लेकिन हर बार रेलवे स्टेशन के पास। धमाकों के समय के अलावा उनमें कोई समानता नहीं थी। कानपुर, कोटा, वलसाड, पुणे और मलकाजगिरि के अलग-अलग पुलिस स्टेशनों में हर मामले में प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफआईआर) दर्ज की गई।

कई हफ्तों तक स्थानीय पुलिस को कोई सफलता नहीं मिली। 28 दिसंबर 1993 को मेरे नेतृत्व में यह मामला सीबीआई को सौंप दिया गया। 13 जनवरी 1994 को मैंने मुंबई के मोमिनपुरा, अग्रिपाड़ा इलाके में स्पेशल ऑपरेशंस स्क्वाड, क्राइम ब्रांच, मुंबई की सहायता से एक अभियान का नेतृत्व किया और मुख्य आरोपी डॉ. मोहम्मद जलीस अंसारी को गिरफ्तार किया।

पुलिस अधिकारी और सीबीआई अधिकारी में अंतर यह है कि सीबीआई अधिकारी अक्सर किसी मामले, उसके तथ्यों और साक्ष्यों को पुलिस अधिकारी की तुलना में कहीं अधिक जटिल, खोजपूर्ण और आवर्तक तरीके से समझने में सक्षम होते हैं। इसलिए, एक ही तथ्य पर दोनों प्रकार के अधिकारियों के विश्लेषण भिन्न हो सकते हैं। मेरे मन में सबसे पहला विचार यही आया कि यह एक आतंकी कृत्य था जिसे उच्च स्तर के प्रशिक्षण और सटीकता के साथ अंजाम दिया गया था। हालांकि गुप्त आतंकी शिविरों में हथियार चलाने का प्रशिक्षण और सैद्धांतिक प्रशिक्षण प्राप्त किया जा सकता है, लेकिन इस तरह की भयावह योजना के लिए जमीनी स्तर पर व्यावहारिक परीक्षण की भी आवश्यकता होती है।

तो, अगर आप पूरे देश में छह सिलसिलेवार ट्रेन धमाके करना चाहते थे, तो आपको पहले छोटे-छोटे सिलसिलेवार धमाके करने पड़ते ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि योजना कारगर है। मैं यह पता लगाना चाहता था कि क्या पिछले कुछ महीनों या वर्षों में छोटे धमाकों के कोई मामले सामने आए हैं और क्या उनकी जांच की गई है। मैंने महाराष्ट्र के हर पुलिस स्टेशन को अपने रिकॉर्ड खंगालने और बम धमाकों के मामले खोजने का आदेश दिया। पता चला कि पुणे और मुंबई के आसपास लगभग एक साल से भी अधिक समय से कई छोटे धमाके हुए थे, वास्तव में लगभग चालीस धमाके, जिनमें कोई हताहत नहीं हुआ था। यह स्पष्ट था कि ये धमाके फील्ड टेस्टिंग अभ्यास का हिस्सा थे। मैंने स्थानीय पुलिस से पूछा कि क्या इन मामलों में किसी को गिरफ्तार किया गया है। नासिक पुलिस स्टेशन से पुख्ता जानकारी मिली कि डॉ. मोहम्मद जलीस अंसारी को गिरफ्तार किया गया था, लेकिन बाद में उन्हें जमानत पर रिहा कर दिया गया और कम तीव्रता वाले धमाकों के मामले अनसुलझे रहे।

मुझे तुरंत पता चल गया कि सिलसिलेवार बम धमाकों के मामले में यही मुख्य संदिग्ध है। अंसारी का जन्म 1960 के दशक में बॉम्बे (अब मुंबई) में हुआ था। उन्होंने पहले महाराष्ट्र कॉलेज में पढ़ाई की, उसके बाद लोकमान्य तिलक मेडिकल कॉलेज से एमबीबीएस की डिग्री प्राप्त की। बाद में अपने इकबालिया बयान में उन्होंने खुलासा किया कि मेडिकल कॉलेज में पढ़ाई के दौरान उन्हें हमेशा भेदभाव और उत्पीड़न का एहसास होता था, जो असम के नेल्ली हत्याकांड और 1984 में भिवंडी और बॉम्बे में हुए सांप्रदायिक दंगों के बारे में जानने के बाद और बढ़ गया। दिसंबर 1992 में बाबरी मस्जिद विध्वंस उनके लिए निर्णायक मोड़ साबित हुआ।

अंसारी मुंबई के अगदीपाड़ा में स्थित मुस्लिम बहुल इलाके मोमिनपुरा में रहते थे। मैंने अपने एक अधिकारी को सादे कपड़ों में उनके घर के आसपास के क्षेत्र का निरीक्षण करने और उनके बारे में अधिक जानकारी जुटाने के लिए भेजा। लेकिन वह उस इलाके में प्रवेश भी नहीं कर सके क्योंकि निवासी एक 'गैर-मुस्लिम' बाहरी व्यक्ति के प्रति शत्रुतापूर्ण थे। मैंने अपने बल में छानबीन करके एक मुस्लिम अधिकारी को ढूंढा और उसे वहां भेजा। जब हम बल में शामिल होते हैं, तो हम

अपना धर्म और जाति पीछे छोड़ देते हैं, हम आंतरिक और बाह्य सुरक्षा की रक्षा के लिए अपने जीवन को जोखिम में डालते हैं और देश में शांति और न्याय के लिए काम करते हैं। फिर भी, निहित स्वार्थों वाले धार्मिक और राजनीतिक कट्टरपंथियों द्वारा कभी-कभी हमारे धर्म और हमारी देशभक्ति पर सवाल उठाए जाते हैं।

मुस्लिम अधिकारी जल्द ही अंसारी की दिन-प्रतिदिन की गतिविधियों और अभियानों के बारे में विस्तृत जानकारी लेकर लौट आया। निवासियों ने मेरे मुस्लिम अधिकारी को सहजता से इलाके में प्रवेश करने दिया और अंसारी के ठिकाने के बारे में विस्तार से बताया। उन्होंने पुष्टि की कि वह एक डॉक्टर था जो अपने चरमपंथी विचारों के लिए जाना जाता था और संभवतः आतंकी गतिविधियों को प्रायोजित करने वाले 'विदेशी' गिरोहों से जुड़ा हुआ था। बिना समय बर्बाद किए, मैंने अंसारी के आवास पर छापा मारा। हमने उसे गिरफ्तार कर लिया और उसके द्वारा दी गई जानकारियों के आधार पर उसके पांच अन्य साथियों को भी गिरफ्तार किया गया। हमने भारी मात्रा में हथियार और गोला-बारूद, विस्फोटक, देसी रिवॉल्वर, विदेशी हथियार, वायरलेस सेट, डेटोनेटर, टाइमर, निर्देश पुस्तिकाएं और विदेशी मुद्रा भी बरामद की।

लेकिन यह तो बस हिमबर्ग का एक छोटा सा हिस्सा था। आगे की पूछताछ में जो खुलासा हुआ, वह न केवल भयावह था, बल्कि पूरे पुलिस विभाग के लिए शर्मनाक भी था। पूछताछ में एक देशव्यापी आतंकी नेटवर्क का पर्दाफाश हुआ, जिसने कई वर्षों तक पच्चीस से अधिक बम विस्फोट, ट्रेन दुर्घटनाएं और अन्य विध्वंसक गतिविधियां अंजाम दी थीं। इससे भी अधिक खतरनाक खुलासा यह था कि निकट भविष्य में दो आतंकी हमलों की योजना बनाई गई थी - एक 15 जनवरी 1994 को बॉम्बे में और दूसरा 26 जनवरी 1994 को नई दिल्ली में गणतंत्र दिवस परेड के साथ।

एक के बाद एक घटनाक्रम होते गए—न केवल पिछले छोटे-मोटे बम धमाकों के मामले सुलझ गए, बल्कि एक पूरा आतंकी नेटवर्क ध्वस्त हो गया और दो बड़ी आपदाओं को टाला जा सका। मुंबई और अन्य शहरों की पुलिस के लिए यह बेहद शर्मनाक बात थी कि इतने लंबे समय तक छोटे-मोटे बम धमाकों के मामले अनसुलझे रहे। अगर स्थानीय पुलिस ने अपना काम किया होता और अंसारी को पहले ही गिरफ्तार कर लिया होता, तो इन आतंकी घटनाओं को रोका जा सकता था। हालांकि ये धमाके कई राज्यों में अलग-अलग ट्रेनों में योजनाबद्ध तरीके से अंजाम दिए गए थे, लेकिन मैंने जांच में यह रुख अपनाया कि यह एक ही साजिश थी जिसमें अंसारी मुख्य साजिशकर्ता था और सभी 21 आरोपियों पर एक साथ मुकदमा चलाया जाना चाहिए। उप महानिरीक्षक नीरज कुमार और विशेष कार्य बल के पुलिस अधीक्षक (एसपी) ने मेरे निर्देशों का शानदार ढंग से पालन किया और हमने साजिश में शामिल सभी बातों का विस्तृत विवरण देते हुए एक आरोपपत्र तैयार किया। मैंने यह आरोपपत्र राजस्थान के अजमेर स्थित विशेष टीएडीए (आतंकवाद और विघटनकारी गतिविधियां [रोकथाम] अधिनियम) न्यायालय में दाखिल करने का फैसला किया, जिसके पास उसी राज्य के कोटा के पास दिल्ली-मुंबई राजधानी एक्सप्रेस ट्रेन में हुए धमाके के आरोपियों पर मुकदमा चलाने का मूल अधिकार क्षेत्र था। इस मुकदमे का संचालन और निगरानी उप कानूनी सलाहकार एस.के. सक्सेना द्वारा की गई।

मुकदमा शुरू होने के चार साल के भीतर ही निचली अदालत ने सभी 21 आरोपियों को आजीवन कारावास की सजा सुनाई, जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने भी बरकरार रखा। टीएडीए कानून अब समाप्त हो चुका है, लेकिन उस समय इसमें एसपी रैंक के अधिकारियों द्वारा दर्ज किए गए इकबालिया बयानों का प्रावधान था। एसपी हरीश चंद्र सिंह ने सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशों और दिशा-निर्देशों का सावधानीपूर्वक पालन करते हुए प्रत्येक आरोपी का इकबालिया बयान दर्ज किया। हालांकि सभी आरोपियों ने अपने बयानों से मुकर गए, लेकिन सिंह द्वारा प्रक्रियाओं का सावधानीपूर्वक पालन करना हमारे लिए कारगर साबित हुआ। संयोगवश, अंसारी जनवरी 2020 में मुंबई में पैरोल तोड़कर फरार होने के बाद फिर से सुर्खियों में आया था। उसे लापता होने के एक दिन बाद 15 जनवरी को कानपुर से गिरफ्तार किया गया था।

त्वरित जांच और मुकदमा आपराधिक न्याय प्रणाली के सुचारू संचालन के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह सिद्धांत सभी आपराधिक मामलों पर लागू होता है, लेकिन आतंकवाद के मामलों में यह विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। आतंकवादी स्वयं को अपराधी नहीं मानता। वह अपने आपराधिक कृत्यों को इस आधार पर उचित ठहराता है कि सरकार ने उसके और उसके समर्थकों के साथ अन्याय किया है। ऐसे व्यक्ति को जितनी जल्दी पकड़ा जाए, उतनी ही अधिक संभावना है कि अन्य लोग उसे किसी प्रकार का मार्गदर्शक न मानें। यदि अंसारी को समय रहते गिरफ्तार कर लिया जाता, तो शायद वह ट्रेनों में हुए 50 विस्फोटों में से कुछ को अंजाम न दे पाता। न्याय प्रणाली की धीमी कार्यप्रणाली के कई अन्य उदाहरण भी हैं। अगस्त 2018 में, महाराष्ट्र के भीमा कोरेगांव में उसी वर्ष जनवरी में हुई हिंसा के संबंध में पांच वामपंथी कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार किया गया था। इस लेख को लिखे जाने के समय तक मामले की जांच और मुकदमा चल रहा था, जिसमें शामिल व्यक्तियों द्वारा कुकर्म के आरोप लगाए जा रहे थे।

देश में त्वरित और कुशल न्याय प्रणाली की सख्त जरूरत है।

सिकंद हत्याकांड: 1982

सबसे पहले आप मामले की तह तक जाकर जांच करते हैं, आरोप पत्र दाखिल करते हैं और उसे अभियोजन के लिए जिम्मेदार अधिकारियों के पास ले जाते हैं। फिर आप अपने मामले का अध्ययन करते हैं, कानून का अध्ययन करते हैं, विज्ञान का अध्ययन करते हैं, फोरेंसिक का अध्ययन करते हैं, और वह सब कुछ पढ़ते, शोध करते और समझते हैं जो अदालत में आपके मामले को विफल होने से बचाने के लिए आवश्यक है। आप हार नहीं मानते। आप हर मुश्किल के बावजूद मामले को आगे बढ़ाते हैं, आप कानूनी चमत्कार करने का ठान लेते हैं, और जब तक आप उसे हासिल नहीं कर लेते, तब तक रुकते नहीं। चाहे इसमें दशकों लग जाएं। भले ही यह थोड़ा गर्व की बात लगे, लेकिन मैंने यही किया।

आइए, मैं आपको एक ऐसे ही दृश्य की सैर कराता हूँ, इस बार एक और धमाके की जगह और एक जटिल प्रेम कहानी के मलबे की। 2 अक्टूबर 1982 को, नई दिल्ली के सुंदर नगर स्थित 98 नंबर के अपार्टमेंट की दूसरी मंजिल का शयनकक्ष धमाके में पूरी तरह से नष्ट हो गया। धमाके के समय अपार्टमेंट में रहने वाला एकमात्र व्यक्ति, 39 वर्षीय इंजीनियर कृष्ण सिकंद, जो सिकंद इंजीनियरिंग प्राइवेट लिमिटेड के प्रोडक्शन डायरेक्टर थे और तलाकशुदा थे, भी उसी हालत में

मारे गए। एक हथगोला बैडमिंटन शटलकॉक के डिब्बे के अंदर रखा गया था, जिसके दोनों सिरों पर सफेद प्लास्टिक के ढक्कन लगे थे। डिब्बे को इस तरह से काटा गया था कि हथगोला उसमें इस तरह फिट हो जाए कि जैसे ही डिब्बे को खोलकर डोरियाँ ढीली की जाएँ, दबाव कम हो जाए और ग्रेनेड फट जाए। ठीक वैसे ही जैसे सिकंद के चेहरे पर हुआ, जब वह पार्सल खोल रहे थे, जिससे उनकी तुरंत मृत्यु हो गई और उनका पूरा चेहरा और शरीर बुरी तरह से विकृत हो गया। यह एक भयावह और क्रूर मौत थी।

सिकंद एक सहज स्वभाव का व्यक्ति था, जो भले ही मौज-मस्ती भरी जिंदगी जी रहा था और उसके कई प्रेम संबंध थे, लेकिन उसका कोई दुश्मन नहीं था। भला कोई उसे इतनी बेरहमी से क्यों मारना चाहेगा? दिल्ली पुलिस हैरान थी और मामला छह महीने तक अनसुलझा रहा। जब मामला मेरे नेतृत्व वाली एक यूनिट के पास पहुंचा, तब तक घटनास्थल को पूरी तरह से साफ कर दिया गया था, मलबा हटा दिया गया था, दरवाजे और खिड़कियां दोबारा बना दी गई थीं, प्लास्टर और सीमेंट लगा दिया गया था, दीवारों पर नया पेंट कर दिया गया था और नए फिटिंग और फिटिंग लगा दिए गए थे—यह एक बिलकुल नया फ्लैट बन गया था।

अपराध स्थल और सभी साक्ष्यों को दिल्ली पुलिस ने मलबे और राख में बदल दिया था और उन्हें बक्सों में पैक करके सील कर दिया था ताकि उन्हें दिल्ली की जनरल फॉरेंसिक साइंस लेबोरेटरी के बैलिस्टिक डिवीजन के प्रमुख डॉ. जीआर प्रसाद को भेजा जा सके। डॉ. प्रसाद ने मलबे की प्रारंभिक जांच कर ली थी और उन्हें विस्फोटक पार्सल के कुछ टुकड़े मिले थे। उन्होंने पार्सल के बाहरी आवरण को जोड़कर देखा, जिस पर टाइपराइटर से प्राप्तकर्ता और प्रेषक का पता लिखा हुआ था। पार्सल पर 'श्री कृष्ण सिकंद, 98, सुंदर नगर, दिल्ली' का पता लिखा था और यह दिल्ली मेटल्स, 290, हौज क्वाज़ी, दिल्ली से आया था। यह एक फर्जी पता था।

हालांकि, इससे कोई फायदा नहीं होने वाला था, और मुझे पूरा यकीन था कि मलबे में और भी कुछ है। इसलिए, मेरे सहयोगी और मैंने दो दिनों में फैले नौ घंटे और लगाकर मलबे के हर एक टुकड़े की बारीकी से जांच की ताकि अपराध स्थल और हथियार का पुनर्निर्माण किया जा सके। हमें निम्नलिखित परिणाम प्राप्त हुए:

• हैंड ग्रेनेड को आंशिक रूप से पुनर्निर्मित किया जा सकता था;

• इसकी पहचान पाकिस्तान के आयुध कारखाने में निर्मित ग्रेनेड के रूप में की गई।

इसमें पुणे के किरकी स्थित गोला बारूद कारखाने में निर्मित एक डेटोनेटर लगा हुआ है;

• शटलकॉक के लिए ट्यूबलर बॉक्स का भी आंशिक रूप से पुनर्निर्माण किया गया था;

• ग्रेनेड के लीवर को नियंत्रित करने वाला तांबे का तार बरामद कर लिया गया;

• पार्सल को बांधने के लिए इस्तेमाल किए गए धागे के टुकड़े निकाले गए।

यह सबूत शक की सुई को एक व्यक्ति की ओर मोड़ने के लिए काफी था। वह एक उच्च पदस्थ सेना अधिकारी थे, दिल्ली के पूर्व पुलिस प्रमुख लेफ्टिनेंट कर्नल एस.जे. चौधरी उर्फ जीती चौधरी के इकलौते बेटे। आखिर हमने इतने सारे लोगों में से एक वरिष्ठ सेना अधिकारी को ही क्यों निशाना बनाया? यहीं से प्रेम और ईर्ष्या की गहरी कहानी शुरू होती है, जिसकी जड़ें पुरुषवादी अहंकार में छिपी थीं।

अपनी हत्या के समय, सिकंद रानी के साथ लिव-इन रिलेशनशिप में था। रानी एक युद्ध विधवा थी जिसने पुनर्विवाह किया था, लेकिन उसका दूसरा विवाह भी असफल रहा था और उसे अंततः सिकंद में सच्चा प्यार मिल गया था, या कम से कम ऐसा ही लग रहा था। सिकंद भी एक विवाह को पीछे छोड़ चुका था। दोनों एक साथ एक नई जिंदगी शुरू करने की उम्मीद कर रहे थे। उनका रिश्ता आसान नहीं था। जब रानी पहली बार सिकंद से मिली, तब वह एक कड़वे तलाक के मुकदमे के बीच में थी। उसका जुनूनी पति उसे इस खराब शादी से बाहर नहीं निकलने देना चाहता था। उसने उसे रोकने के लिए अपनी ताकत, पैसा और प्रभाव—सब कुछ—इस्तेमाल किया। उसने रानी के दोस्तों के हस्तक्षेप से तलाक की याचिका वापस लेने की कोशिश की। जब यह काम नहीं आया, तो उसने रानी और उसके प्रेमी सिकंद को जान से मारने की बार-बार मौखिक और लिखित धमकियां दीं।

रानी के पूर्व पति—जो इस तथ्य को स्वीकार नहीं कर पा रहे थे कि एक महिला को अपनी इच्छा के अनुसार जीवन जीने का अधिकार है, कि वह कोई वस्तु नहीं है और उसे हमेशा के लिए कैद करके रखा जा सकता है—हमारे माननीय और सम्मानित लेफ्टिनेंट कर्नल एस.जे. चौधरी थे।

हथियार की बनावट से, जो एक पाकिस्तानी हथगोला था और माना जाता है कि भारतीय सेना ने 1971 के युद्ध में जीत के बाद प्राप्त किया था, और जिस कुशलता से इसे लगाया गया था, और उसकी शैतानी ईर्ष्या और जुनून के इतिहास से, हमारा मामला सुलझ गया - यह अपराध चौधरी के अलावा किसी और ने नहीं किया होगा।

लेकिन यह जानना कि हमने मामला सुलझा लिया है, तब तक बेकार है जब तक हमारे पास अपने सिद्धांत को साबित करने, कहानी के सभी पहलुओं को जोड़ने और अपराधी को पकड़ने के लिए सबूतों की एक पूरी कड़ी बनाने के लिए पर्याप्त ठोस सबूत न हों। सबूत इकट्ठा करने के लिए, सीबीआई अधिकारियों की एक टीम ने फ्रेंड्स कॉलोनी स्थित चौधरी के घर, प्रगति विहार हॉस्टल में उनके सुइट, वायु भवन में उनके कार्यालय और उनकी स्टैंडर्ड हेराल्ड कार की तलाशी ली।

मलबे से मिली सामग्री उसके घर, दफ्तर और अन्य जगहों से मिली सामग्री से मेल खाती थी। फोरेंसिक विशेषज्ञों ने उसके दफ्तर की दराज से बरामद धागे के टुकड़ों का मिलान पार्सल बांधने के लिए इस्तेमाल किए गए मलबे से मिले धागे से किया; उसकी कार से एक तार काटने की मशीन मिली जो तांबे के तार से मेल खाती थी। लेकिन फिर, तार काटने की मशीन और एक ही तरह का धागा किसी के पास भी हो सकता है। इसलिए, कोई भी संदिग्ध हो सकता है। नियम यह है कि विभिन्न सबूतों से केवल एक ही सिद्धांत साबित होना चाहिए कि आरोपी कौन हो सकता है, न कि कई सिद्धांत। इस मामले में, अगर हम यह पहचान लेते कि पार्सल पर पता किसने लिखा था, तो सबूतों का पूरा सेट तुरंत हमारे मुख्य संदिग्ध से जुड़ जाता। अब, समस्या यह थी। एक आम आदमी भी जानता है कि किसी भी लिखावट को पहचानने या समझने के लिए हम किसी बाहरी या तीसरे पक्ष के विशेषज्ञ की राय लेते हैं। लेकिन पार्सल पर लिखा पता हाथ से नहीं बल्कि टाइपराइटर से लिखा गया था।

भारतीय आपराधिक प्रणाली मुख्य रूप से तीन महत्वपूर्ण कानूनों पर आधारित है— भारतीय दंड

संहिता, 1860, जो अपराध को परिभाषित करती है और दंड निर्धारित करती है; आपराधिक प्रक्रिया संहिता (सीआरपीसी), 1973, जो अपराधों की जांच और अभियोजन के लिए विभिन्न प्रक्रियाओं को निर्धारित करती है; और भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872, जो यह निर्धारित करता है कि किसी भी मामले में किन सामग्रियों, तथ्यों और परिस्थितियों को वैध साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जा सकता है। अपने संदिग्ध को गिरफ्तार करने या कोई आरोप तय करने से पहले ही, मुझे पता था कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 45 मेरी जांच में एक बड़ी बाधा बनने वाली है। यह धारा विदेशी कानून, विज्ञान, कला या लिखावट या उंगलियों के निशान की पहचान से संबंधित किसी विशेषज्ञ की राय को स्वीकार करने के प्रश्न से संबंधित है।

जांच के समय लागू कानून के अनुसार, धारा 45 में टाइपराइटर मशीनों या टाइप किए गए दस्तावेजों का विशेष रूप से उल्लेख नहीं था। लेकिन 1952 में, हनुमंत नेरगुंडकर बनाम महाराष्ट्र राज्य के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने पहले ही यह फैसला सुना दिया था कि धारा 45 के तहत टाइप की गई सामग्री पर दी गई राय को विशेषज्ञ की राय नहीं माना जा सकता और इसलिए इसे साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह न केवल एक बड़ी चुनौती थी, बल्कि मनोबल गिराने वाला एक बड़ा कारक भी था। मुझे लगा कि मामला अदालत में ले जाने से पहले ही हम लड़ाई हार चुके हैं। पहली बात तो यह कि हमें यह नहीं पता था कि पता लिखने के लिए किस टाइपराइटर मशीन का इस्तेमाल किया गया था। दूसरी बात, भले ही हम मशीन ढूंढ लें और चौधरी से मशीन को जोड़ने के लिए पर्याप्त गवाह और विशेषज्ञ राय जुटा लें, लेकिन सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व निर्णय के चलते निचली अदालत विशेषज्ञ की राय को साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं करने वाली थी। उच्च न्यायालय भी सर्वोच्च न्यायालय की खंडपीठ के फैसले में हस्तक्षेप नहीं कर सकता। और सर्वोच्च न्यायालय स्वयं भी पांच सदस्यीय पीठ द्वारा ही इस निर्णय को रद्द कर सकता है।

मेरे सामने यही एक बेहद चुनौतीपूर्ण चुनौती थी; अगर यह मामला सीबीआई के पक्ष में जाता तो चमत्कार ही होता। लेकिन मैंने हार न मानने का पक्का इरादा कर लिया था। अदालत में क्या होगा, इसकी चिंता किए बिना, मैंने अपना काम करने पर ध्यान केंद्रित किया और बाकी सब अदालत पर छोड़ दिया। अपनी टीम के साथ, मैं चौधरी द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली टाइपराइटर मशीन की तलाश में निकल पड़ा। वह उनके दफ्तर की टाइपराइटर नहीं थी।

टाइपराइटर के बारे में पता लगाने का एक ही रास्ता था—सीधे चौधरी से पूछना। यह मुश्किल था, क्योंकि वह सेना में उच्च पदों पर आसीन थे, और ऐसे व्यक्ति पर कोई आरोप लगाने से पहले सावधानी बरतनी पड़ती है। याद कीजिए, टॉम क्रूज़, जैक निकोलसन और डेमी मूर अभिनीत फिल्म 'ए फ्यू गुड मेन' (1992) में लेफ्टिनेंट डैनियल कैफ़ी के लिए कर्नल जेसप को गवाह के कटघरे में खड़ा करना और बिना किसी सबूत के सीधे उन पर आरोप लगाना कितना जोखिम भरा था—सिर्फ इस उम्मीद पर कि जिरह के दौरान वह अपने अपराध कबूल कर लेंगे। मेरी टीम और मैं भी कुछ इसी तरह की स्थिति में थे।

चौधरी को 1 अगस्त 1983 को हमारे लोक नायक भवन कार्यालय में पूछताछ के लिए बुलाया गया था। कुछ घंटों की पूछताछ के बाद और उन्हें अड़ियल पाते हुए, डीएसपी एमपी सिंह, जिन्हें

मैंने यह मामला सौंपा था, ने चौधरी को गिरफ्तार कर लिया, जिन्हें मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट द्वारा 6 अगस्त तक पुलिस हिरासत में भेज दिया गया।

जिन तीन अधिकारियों की हिरासत में चौधरी से पूछताछ की जानी थी, उनमें सिंह थे, जो एक सख्त और निर्दयी पुलिस वाले की भूमिका निभा रहे थे; डीएसपी बीआर पुरी, जो अपने नरम स्वभाव के साथ चौधरी की ही तरह पंजाबी मातृभाषा बोलते थे, एक अच्छे पुलिस वाले की भूमिका निभा रहे थे; और फिर मैं था, जो चौधरी की ही उम्र और पृष्ठभूमि का था, लेकिन असभ्य और किसी भी तरह से उसे फंसाने पर तुला हुआ था।

बेशक, कानून और सत्यनिष्ठा की शपथ के तहत हमें किसी भी तरह से कार्रवाई करने की इजाज़त नहीं थी, लेकिन हमने आरोपी को मानसिक रूप से दबाव में लाने के लिए ऐसा ही दिखाया। हिरासत में पूछताछ एक कला है और इसके लिए सावधानीपूर्वक तैयारी की आवश्यकता होती है। हमारी तैयारी कारगर साबित हुई और दो दिन और तीन रातों तक चली अथक पूछताछ के बाद चौधरी का प्रतिरोध टूट गया और उसने दक्षिण दिल्ली के लाजपत नगर बाजार स्थित एक कमर्शियल टाइपिंग कॉलेज में टाइपराइटर की लोकेशन बताते हुए अपना बयान दे दिया।

एक टीम तुरंत कॉलेज पहुंची। कॉलेज में मौजूद सभी 13 टाइपराइटरों के नमूना टाइप किए गए। लेकिन अगस्त 1983 में, अपराध के दस महीने बाद प्राप्त नमूना मान्य नहीं था क्योंकि टाइपराइटर में टूट-फूट हो चुकी थी; इसलिए, दस महीने पहले लिखे गए किसी भी टेक्स्ट से उसका मिलान नहीं हो सका। हमें चौधरी द्वारा टाइपराइटर के उपयोग के समय का नमूना चाहिए था। सौभाग्य से, यह एक टाइपिंग कॉलेज होने के कारण, छात्रों के टाइपिंग टेस्ट पेपर थे जिन्हें जांच कर प्रशिक्षक के पास रखा गया था। कुल 704 टाइप किए गए टेक्स्ट एकत्र किए गए जिनकी अब बारीकी से जांच की जानी थी ताकि यह पता लगाया जा सके कि कौन सा टेक्स्ट पार्सल पर लिखे टेक्स्ट से मेल खाता है। इस कठिन कार्य को पूरा करने वाले विशेषज्ञ एस.के. गुप्ता थे, जो केंद्रीय फोरेंसिक विज्ञान प्रयोगशाला (सीएफएसएल) के दस्तावेज़ प्रभाग के प्रमुख और सहायक रासायनिक परीक्षक थे।

भारत में साक्ष्य कानून और 'विशेषज्ञ राय' के इतिहास में, 26 सितंबर 1983 को गुप्ता की राय का अमूल्य महत्व है। मेरे और मेरी टीम के लिए, यह उस दृढ़ संकल्प का इनाम था जिसके तहत हमने आगे की राह में आने वाली बाधाओं को जानते हुए भी, 'विशेषज्ञ' तरीके से हत्यारे तक पहुँचने का प्रयास किया। गुप्ता ने नमूना टाइपस्क्रिप्ट में से एक को उस पार्सल से जोड़ा जो बूबी-ट्रैप में मिला था, जिससे चौधरी को पकड़ लिया गया। मैंने अपनी अंतिम रिपोर्ट में, जिसमें जांच का सारांश दिया गया था, लिखा, 'संपूर्ण साक्ष्य परिस्थितिजन्य हैं। लेकिन ये साक्ष्य एक ऐसा जटिल जाल है जिसमें मकसद, धमकी, चालाकी, संलिप्तता, आचरण के साक्ष्य शामिल हैं और यह विशेषज्ञों के साक्ष्यों से गहराई से जुड़ा हुआ है...'

कई बार अदालतों में महीनों, सालों और दशकों तक कठिन और लंबी लड़ाईयां लड़ी जाती हैं, जब मामले के अंतिम परिणाम के बारे में अनिश्चितता बनी रहती है। यह कहानी उसी प्रयास की है, कि कैसे इसकी कल्पना की गई, इस पर मेहनत की गई, इसे अदालत में पेश किया गया,

जहां यह लगातार हारता रहा और अंत में जीता। या नहीं। शायद आप कभी जीत ही न पाएं।
अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश एससी जैन के सामने बहुत कम विकल्प बचे थे जब बचाव पक्ष के वकील ने हनुमंत नेरगुंडकर मामले में स्थापित कानून को प्रस्तुत किया। टाइपस्क्रिप्ट पर विशेषज्ञ की राय को रिकॉर्ड पर नहीं लाया जा सका और उसका मूल्यांकन नहीं किया जा सका। अपील पर, उच्च न्यायालय ने हस्तक्षेप करने से इनकार कर दिया। न्यायमूर्ति एमके चावला ने यह टिप्पणी करते हुए पुनरीक्षण याचिका खारिज कर दी कि, 'आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।'
दोनों आदेश अपेक्षित थे। चौधरी को दोषी ठहराने के लिए हमें किसी चमत्कार की आवश्यकता थी। अब हमने उस चमत्कार की तैयारी शुरू कर दी। आमतौर पर जब दो अदालतें लगातार किसी मामले को खारिज कर देती हैं, तो हम उस मामले को आगे नहीं बढ़ाते। लेकिन इस मामले में मेरी टीम और इसमें शामिल सभी लोगों को लगा कि स्थापित कानून को ही चुनौती देना आवश्यक है, क्योंकि साक्ष्य अधिनियम की धारा 45 के लिखे जाने के समय टाइपराइटर मशीनों का कोई अस्तित्व नहीं था और जब सर्वोच्च न्यायालय ने अपना पूर्व निर्णय दिया था, तब टाइपराइटर मशीनों में प्रयुक्त तकनीक के पीछे के विज्ञान को पूरी तरह से समझा नहीं गया था।
अधिवक्ता पी.के. चौबे ने वरिष्ठ लोक अभियोजक सी.एस. शर्मा और सिंह की सहायता से टाइपराइटरों और उनसे जुड़ी तकनीक पर गहन और विस्तृत शोध किया और सर्वोच्च न्यायालय की पांच सदस्यीय पीठ के समक्ष भारी मात्रा में डेटा प्रस्तुत किया। न्यायालय के समक्ष मामला विधि का था, तथ्य का नहीं, और मुख्य बिंदु यह था कि क्या टाइपराइटर विशेषज्ञ की राय भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 45 के तहत साक्ष्य के रूप में स्वीकार्य है। हम जानते थे कि एक बार विधि का प्रश्न हमारे पक्ष में तय हो जाने पर, साक्ष्य स्वतः ही चौधरी के विरुद्ध हत्या के आरोप को सिद्ध करने में हमारी सहायता करेगा।
सर्वोच्च न्यायालय का फैसला 1996 में आया—मेरे सेवानिवृत्ति के वर्ष में—मामले के निचली अदालत में जाने के तेरह साल बाद। हालांकि, लंबा इंतजार सार्थक रहा क्योंकि यह एक ऐतिहासिक फैसला साबित हुआ जिसने उस कानून को पलट दिया जो तीस वर्षों से (हत्या की तारीख तक) लागू था। सर्वोच्च न्यायालय ने सीबीआई के माध्यम से राज्य के पक्ष में फैसला सुनाते हुए निचली अदालत और उच्च न्यायालय दोनों के फैसलों को खारिज कर दिया। न्यायालय ने कहा कि 'टाइपराइटर की जांच और उस टाइपराइटर की पहचान, जिस पर संदिग्ध दस्तावेज टाइप किया गया था, टाइपराइटर की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं के वैज्ञानिक अध्ययन पर आधारित है, जो किसी विशेष टाइपराइटर की विशिष्टता होती हैं और जिनका अध्ययन विषय में पेशेवर कौशल रखने वाले विशेषज्ञ द्वारा किया जा सकता है, और इसलिए उस बिंदु पर उसकी राय विज्ञान के क्षेत्र के एक पहलू से संबंधित है जो भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 45 के दायरे में आता है।'
हमने न्याय के पथ पर अथक परिश्रम किया, अपने मुख्य संदिग्ध को सजा दिलाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। हमने विपरीत परिस्थितियों के बावजूद न्याय का मार्ग अपनाया, लेकिन क्या हम सफल हुए? क्या कृष्ण के पिता, सत्तर वर्षीय एचडी सिकंद को न्याय मिला? या उनकी शोक

संतप्त प्रेमिका रानी को?

नहीं। अगले दस साल तक नहीं। हत्या की तारीख से कुल छब्बीस साल बाद, अप्रैल 2008 में, सत्र न्यायालय ने इस मामले पर फैसला सुनाया।

जब चौधरी को कृष्ण सिकंद की हत्या का दोषी पाया गया, तो 98 वर्षीय पिता ने राहत की सांस ली। दुर्भाग्य से, एक साल बाद ही, मई 2009 में, आरोपी चौधरी को उच्च न्यायालय में अपनी अपील में राहत मिल गई।

जिसने उनकी दोषसिद्धि को रद्द कर दिया और उन्हें आरोपों से बरी कर दिया।13

जैसा कि गीता कहती है, हमें अपने कर्मों का फल भोगना ही है, परिणाम हमारे हाथ में नहीं होते। फिर भी, मैं हमारी न्याय व्यवस्था की उन तमाम खामियों पर जोर देना चाहता हूँ, जो पुलिस, सीबीआई और फिर अदालतों में व्याप्त हैं। आगे पढ़िए।

3

गौरवशाली दिन, अंधकारमय दिन

22 सितंबर 2018. 'पूर्व राष्ट्रपति ने भारत के प्रधानमंत्री को एक तरह से चोर कह दिया है,' भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष राहुल गांधी ने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी पर सीधा हमला किया। राफेल विवाद में तब और पेचीदगी आ गई जब फ्रांस के पूर्व राष्ट्रपति फ्रांस्वा होलांद ने एक साक्षात्कार में बयान दिया कि 2016 में फ्रांस और भारत के बीच 36 राफेल जेट खरीदने के लिए हुए 8.7 अरब डॉलर के सरकारी समझौते में 'ऑफसेट' अनुबंध अनिल अंबानी के नेतृत्व वाली उस कंपनी को दिया गया था जो मात्र बारह दिन पहले ही अस्तित्व में आई थी, क्योंकि भारतीय सरकार ने उसी साझेदार का सुझाव दिया था। फ्रांसीसी मीडिया समूह मेडियापार्ट द्वारा 21 सितंबर को प्रकाशित एक रिपोर्ट के अनुसार, होलांद ने कहा, 'भारतीय सरकार ने इस साझेदार का प्रस्ताव रखा और डसॉल्ट ने अंबानी के साथ बातचीत की।' उन्होंने आगे कहा, 'हमारे पास कोई विकल्प नहीं था, हमने नियुक्त साझेदार को ही स्वीकार कर लिया।'

विपक्षी दल महीनों से राफेल सौदे में वित्तीय अनियमितताओं, रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार के अन्य रूपों का आरोप लगा रहे थे। जब कांग्रेस अध्यक्ष भाजपा के लिए बोफोर्स कांड जैसा कोई अवसर तलाश रहे थे, तब हॉलैंड का बयान उनके लिए वरदान साबित हुआ। और केंद्र सरकार ने ऐसे गंभीर आरोपों पर कैसी प्रतिक्रिया दी—आरोपों को खारिज करके, विपक्षी दलों को भला-बुरा कहकर, और नाटकीय तिरस्कार के साथ यह कहकर कि फ्रांस में प्रधानमंत्री मोदी के कार्यों पर सवाल उठाना ही इस देश के कानून, प्रकृति के नियमों और स्वर्ग-नरक के नियमों के विरुद्ध होगा। राफेल मामले पर इस पुस्तक में आगे विस्तार से चर्चा की गई है।

* * * * *

भारतीय जीवन बीमा निगम घोटाला: 1957 की यादें, छह दशक पहले की बात। साल था 1957, आजादी के दस साल बाद। देश के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को भारत के पहले वित्तीय घोटाले का सामना करना पड़ा। नवयुगी राष्ट्र, जिसने अपने नेताओं पर बड़ी उम्मीदें लगाई थीं, बेसब्री से उनकी प्रतिक्रिया का इंतजार कर रहा था। कई लोग घटनाक्रम पर नजर रखे हुए थे, उम्मीद लगाए बैठे थे कि एक मिसाल कायम होगी।

1957 में संसद के मानसून सत्र में, कांग्रेस सांसद राम सुभाग सिंह (जो बाद में पार्टी से अलग हो गए और नेता बन गए)

1969 में विपक्ष ने संक्षेप में वित्त मंत्री टी.टी. कृष्णमाचारी से एक प्रश्न पूछा, जिसमें नव-राष्ट्रीयकृत लाइफ बैंक में वित्तीय अनियमितताओं का उल्लेख करने वाली एक समाचार पत्र रिपोर्ट पर स्पष्टीकरण मांगा गया था।

भारतीय बीमा निगम (LIC) 15 आपने बिल्कुल सही पढ़ा—एक कांग्रेसी सांसद ही सदन में इस मुद्दे को उठाने के लिए खड़े हुए थे। उस व्यक्ति का नाम सुनकर आप हैरान रह जाएंगे, जिन्होंने इस मुद्दे को उठाया, संसद में जोशीले भाषण देकर देशव्यापी आक्रोश पैदा किया और यहां तक कि मामले की जांच की मांग भी की—रायबरेली से कांग्रेसी सांसद और प्रधानमंत्री के

दामाद फिरोज गांधी।
उस समय हालात ऐसे ही थे।
फिरोज गांधी के लिए एलआईसी एक बच्चे के समान थी। उन्होंने भारत में जीवन बीमा व्यवसाय के राष्ट्रीयकरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी, जो भारतीय जीवन बीमा अधिनियम, 1956 के माध्यम से हुआ था, जिसके तहत 245 कंपनियों का राष्ट्रीयकरण और समेकन किया गया था, जिसे अब हम एलआईसी के नाम से जानते हैं। जून 1957 में, एलआईसी ने कलकत्ता के एक व्यवसायी हरिदास मुंद्रा के स्वामित्व वाली छह संदिग्ध कंपनियों के शेयर खरीदने में लगभग ₹1.24 करोड़ का निवेश किया। मुंद्रा एक व्यापारी परिवार में पैदा हुए थे और उन्होंने अपने व्यावसायिक जीवन की शुरुआत एक बल्ब विक्रेता के रूप में की थी। जल्द ही, उन्होंने करोड़ों का साम्राज्य खड़ा कर लिया। 'मैं सोचता था: वह इतनी जल्दी इतने अमीर कैसे हो गए?' जैसा कि न्यायमूर्ति मोहम्मदअली करीम छागला ने लिखा है, 'तेजी से सौदेबाजी और शेयरों की हेराफेरी' से।
उनकी आत्मकथा।16 वह छोटी कंपनियों के शेयर खरीदते थे, फिर अफवाहें फैलाकर शेयरों की कीमतों को बढ़ाते थे और उन्हें बेच देते थे।
मुंद्रा ने किसी तरह एलआईसी को अपनी डूबती कंपनियों में जोखिम भरे निवेश करने के लिए राजी कर लिया, और शेयरों की खरीद एलआईसी की निवेश समिति से परामर्श करने की उचित प्रक्रिया का पालन किए बिना ही हो गई। 1.24 करोड़ रुपये की यह राशि उस समय के हिसाब से कोई छोटी रकम नहीं थी, बल्कि उस तारीख तक एलआईसी द्वारा किया गया यह सबसे बड़ा निवेश था। एक अखबार को इस सौदे की भनक लग गई और उसने कंपनियों के नाम बताए बिना ही खबर छाप दी। इससे सिंह ने संसद में प्रश्न उठाया, लेकिन कृष्णमाचारी ने प्रश्न का उत्तर आंशिक रूप से ही दिया, शायद चतुराई से इसमें अपनी भूमिका छिपाते हुए।
फिरोज गांधी भ्रामक उत्तर से परेशान थे। उन्होंने अपनी अनौपचारिक जांच के आधार पर और अधिक जानकारी जुटाई और 16 दिसंबर 1957 को संसद में सबसे गतिशील बहसों में से एक की शुरुआत की। उन्होंने इन शब्दों से शुरुआत की, 'संसद को अपने द्वारा स्थापित सबसे बड़े और सबसे शक्तिशाली वित्तीय संस्थान, भारतीय जीवन बीमा निगम (LIBAR) पर सतर्कता और नियंत्रण रखना चाहिए, जिसके द्वारा सार्वजनिक धन का दुरुपयोग किया जा रहा है।'
आज इसकी गहन जांच की जाएगी।'17 गांधी ने सीधे प्रधान वित्त सचिव एच.एम. पटेल और कृष्णमाचारी पर निशाना साधते हुए दावा किया कि अनियमितताएं उनके इशारे पर हुईं। उन्होंने यह भी दावा किया कि निवेश के संबंध में पटेल और कृष्णमाचारी के बीच हुए गोपनीय पत्रों का आदान-प्रदान उनके पास है। पत्रकार इंदर मल्होत्रा ने द इंडियन एक्सप्रेस में इस बहस के बारे में लिखा, 'गलत कामों का उनका खुलासा इतना विनाशकारी था और अन्य सांसदों द्वारा उन्हें इतना व्यापक समर्थन मिला कि नेहरू ने कहा कि...
'संसद की गरिमा' का हवाला देते हुए न्यायिक जांच की घोषणा की।18
आज के विपरीत, उस समय मीडिया में कोई ब्रेकिंग न्यूज़ नहीं थी, सोशल मीडिया पर कोई हैशटैग नहीं था। मुंद्रा घोटाला खिड़की पर बैठी एक नन्ही चिड़िया की क्षणिक चहचहाहट की तरह

था जो पल भर में उड़ गई। यह अमेरिका के वाटरगेट या भारत के कोलगेट जैसे बड़े घोटाले नहीं थे। कृष्णमाचारी जैसे शक्तिशाली लोगों के लिए इस मामले को नज़रअंदाज़ करना या दबा देना बहुत आसान होना चाहिए था।

लेकिन उस समय सत्ता में ईमानदार और सत्यनिष्ठ लोग थे। फिरोज गांधी द्वारा अपनी ही पार्टी के एक मंत्री के खिलाफ चलाए गए अभियान और भारतीय क्रिकेट कंट्रोल बोर्ड (बीसीसीआई) के प्रमुख एन श्रीनिवासन से उनके दामाद की भूमिका को लेकर इस्तीफे की मांग के बीच समानता बताते हुए गोपाल कृष्ण गांधी ने लिखा, 'आज जब एक ससुर को दामाद द्वारा समझौता करते हुए देखा जाता है, तो 1950 के दशक की वह घटना याद आती है जब एक दामाद ने ससुर को 'नैतिक सबक' सिखाया था।'

कानून, इतिहास से कहीं अधिक है। यह एक आदर्श है।'19

नेहरू ने बॉम्बे उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश मोहम्मद अली करीम छागला को एक सदस्यीय जांच आयोग नियुक्त करके जांच का आदेश दिया। जांच मात्र 20-25 दिनों में ही असाधारण गति से पूरी हो गई। सुनवाई सार्वजनिक रूप से हुई और पारदर्शिता एवं सशक्त जांच का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। आयोग ने पटेल को मुख्य रूप से एलआईसी के अध्यक्ष के.आर. कामथ को मुंद्रा की कंपनी के शेयर गलत कीमतों पर खरीदने की सलाह देने (या आदेश देने) का दोषी पाया। रिकॉर्ड में हेराफेरी पाई गई। कृष्णमाचारी की प्रत्यक्ष संलिप्तता निर्णायक रूप से सिद्ध नहीं हो सकी, लेकिन न्यायमूर्ति छागला ने फैसला सुनाया कि मंत्री इस संदिग्ध सौदे के लिए नैतिक और संवैधानिक जिम्मेदारी से बच नहीं सकते, क्योंकि यह उनके कार्यकाल में हुआ था।

'नैतिक और संवैधानिक जिम्मेदारी' के कारण कृष्णमाचारी को फरवरी 1958 में अपने पद से इस्तीफा देना पड़ा। लगभग उसी समय, मुंद्रा को नई दिल्ली के क्लेरिज होटल के एक सुइट से गिरफ्तार किया गया और उन्हें 22 साल जेल की सजा काटनी पड़ी।

भारत के भाग्य को शायद राहत मिली होती। वित्तीय घोटाले में शामिल देश के पहले अपराधी को सजा मिली; धनी और प्रभावशाली लोगों को कानून के सामने झुकना पड़ा। पूर्वजों ने एक ऐसा उदाहरण स्थापित किया जिसका अनुसरण देश को अगले कई दशकों, सत्तर वर्षों और उससे भी अधिक समय तक करना चाहिए था।

लेकिन क्या हमने ऐसा किया? बिलकुल नहीं।

जयंती धर्म तेजा, असली विजय माल्या

गिरफ्तारी के समय हरिदास मुंद्रा देश के नंबर 1 कर चोर थे।

दूसरे स्थान पर एक ऐसे व्यक्ति का नाम था जिनके रोचक जीवन पर ब्लॉकबस्टर फिल्में बन सकती थीं। एक परमाणु भौतिक विज्ञानी, गणित के धुरंधर, संगीत के पारखी, छह फुट लंबे, आकर्षक व्यक्तित्व वाले, एक प्रतिष्ठित परिवार में जन्मे, विश्व यात्री, स्वयं को प्रतिभाशाली मानने वाले, कोस्टा रिका के राजकीय अतिथि के रूप में विशेषाधिकार और संरक्षण प्राप्त राजनयिक, भारतीय शिपिंग निगम (एससीआई) के जनक, एक वित्तीय विशेषज्ञ जिन्होंने एक समय दावा किया था कि वे प्रतिदिन 1,000 डॉलर कमाते थे—ये थे जयंती धर्म तेजा, जयंती

शिपिंग कंपनी के पूर्व अध्यक्ष।

1981 में, तेजा आयकर एवं धन कर विभाग को 7.17 करोड़ रुपये का कर बकाया होने के कारण दूसरे सबसे बड़े कर चोर थे। उस समय वे भगोड़े थे, जिन्हें नौ साल पहले 19 अक्टूबर 1972 को अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश मुनि लाल जैन ने भारतीय दंड संहिता की धारा 409 (आपराधिक विश्वासघात) के तहत पांच मामलों में तीन साल की कठोर कारावास, धारा 467 (खातों में जालसाजी और हेराफेरी) के तहत तीन साल की कठोर कारावास और धारा 429 (धोखाधड़ी) के तहत एक साल की कठोर कारावास की सजा सुनाई थी। सभी सजाएं साथ-साथ चलनी थीं, और उन पर 14,13,000 रुपये का जुर्माना भी लगाया गया था। इस फैसले के साथ ही सीबीआई द्वारा 1966 में तेजा के खिलाफ दर्ज किया गया मामला समाप्त हो गया था। लेकिन वे 1977 में भारत से भाग गए, और आयकर विभाग को 4 करोड़ रुपये का बकाया छोड़ गए। हैरानी की बात यह है कि तेजा 1982 में देश लौट आए।

इसके बाद जो कुछ हुआ, वह भी फिल्मों की कहानी जैसा है। तेजा की गिरफ्तारी से पहले के वर्षों की कहानी ही असली कहानी है, क्योंकि यही सीबीआई की कहानी है—सीबीआई द्वारा की गई अथक जांच, कानूनी कार्रवाई और प्रत्यर्पण की कार्यवाही, जिसके परिणामस्वरूप अंततः 1972 में तेजा को दोषी ठहराया गया, एजेंसी के उतार-चढ़ाव भरे इतिहास में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर है।

तेजा, जो 1960 और 1970 के दशक के ललित मोदी, विजय माल्या, नीरव मोदी और मेहुल चोकसी के नाम से मशहूर थे, ब्रह्म समाज के मूल्यों में पले-बढ़े। उनके पिता उड़ीसा (अब ओडिशा) और आंध्र प्रदेश में कांग्रेस इकाई के संस्थापक सदस्यों में से थे, और तेजा का दावा था कि नेहरू, गांधी और कई अन्य कांग्रेस नेता अक्सर उनके बचपन के घर आते थे। अपनी युवावस्था में उन्हें नेहरू का संरक्षण प्राप्त था, जिसके कारण उन्होंने अपना जहाजरानी व्यवसाय स्थापित किया। प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई ने कथित तौर पर एक बार कहा था, 'तेजा जब चाहे आ-जा सकते हैं। देश को उनसे जितना मिला है, उतना उनका कर्ज नहीं है।' और फिर भी, उन्हें जेल जाना पड़ा।

वो वाकई अद्भुत समय था।

1950 के दशक के आरंभ में, तेजा मैसूर और लंदन होते हुए अमेरिका पहुंचे, जहां उन्होंने एक छोटी कंपनी को अपने दम पर खड़ा किया, उसका कारोबार तीन गुना बढ़ाया और अनुसंधान प्रयोगशालाओं की एक श्रृंखला स्थापित की, जो लाखों डॉलर के पेटेंट किए गए उत्पादों को बेचकर उन्हें औसतन 1,000 डॉलर प्रतिदिन की आय दिलाती थी। फिर वे पैसा कमाने से ऊब गए और भारत लौटकर देश के लिए कुछ करना चाहते थे।

साठ के दशक के आरंभ में वे भारत आए और परोपकारी प्रधानमंत्री नेहरू के संरक्षण में उन्होंने जयंती शिपिंग कॉर्पोरेशन की स्थापना की। नेहरू प्रतिभा, परिश्रम और असाधारण प्रतिभा के प्रशंसक थे। यद्यपि नौकरशाही में कुछ ऐसे सदस्य थे जिन्हें एससीआई के निर्माण की तेजा की क्षमता पर संदेह था, फिर भी नेहरू ने सरकार द्वारा प्रारंभिक निवेश के लिए ऋण आवेदन को इस समर्थन के साथ आगे बढ़ाया कि 'उन्हें थोड़ा सा निवेश करने दें'।

कुछ, जो कि 20 करोड़ रुपये निकला।

इसके साथ ही, तेजा ने जापान की मित्सुबिशी हेवी इंडस्ट्रीज से कम कीमत पर 26 जहाज खरीद लिए—उन्होंने केवल पहली किस्त का भुगतान किया और जहाजों को गिरवी रखकर कुछ और जहाज खरीद लिए। कुछ ही महीनों में कारोबार तेजी से बढ़ा और जयंती शिपिंग कॉर्पोरेशन ने देश के जहाजरानी उद्योग में लगभग 40 प्रतिशत हिस्सेदारी हासिल कर ली। वे जल्द ही एक बहुमुखी प्रतिभा के धनी राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय हस्ती बन गए, जो विभिन्न देशों में कारोबार करते थे और फ्रांस और अमेरिका में विला के मालिक थे।

राजनीति में ऐसा ही होता है, जब आप किसी के चहेते बन जाते हैं, खासकर सबसे ताकतवर आदमी के, तो बाकी लोगों के लिए आप काँटे बन जाते हैं। 1964 में नेहरू की मृत्यु के बाद, तेजा के विरोधियों ने उन पर हमला करना शुरू कर दिया, जो वर्षों से उनसे दुश्मनी पाले हुए थे। उनका कारोबार ठप होने लगा और इसी बीच जिन शिपिंग यार्डों के साथ उनका व्यापार था, उन्होंने देखा कि ऋण की किश्तें आना बंद हो गई हैं। तेजा गहरे कर्ज में डूबे हुए थे।

ऐसा नहीं था कि उन्हें इसकी कोई खास परवाह थी। मीडिया में अब भी तेजा से मिलने वाले कई लोगों के बयानों की चर्चा ज़ोरों पर थी, पत्रकार इंदर मल्होत्रा और सुमित मित्रा ने तेजा को बेहद बेपरवाह बताया था। उनकी स्थिति चाहे कितनी भी गंभीर क्यों न दिखती हो, उनके माथे पर शिकन का कोई निशान नहीं था।

1966 में, इंदिरा गांधी के सत्ता में आने के तुरंत बाद, उन पर तेजा के वित्तीय मामलों की जांच करने का भारी दबाव पड़ा। जल्द ही, शिकायतों के आधार पर सरकार ने उनकी कंपनियों और तेजा (जो उस समय फ्रांस में थे) के खिलाफ जांच का निर्देश दिया। उन्होंने 6 मई 1966 को भारत का दौरा किया, लेकिन चार दिनों के भीतर ही वापस चले गए। अगस्त में, सीबीआई ने तेजा और उनकी पत्नी के खिलाफ मामला दर्ज किया और अक्टूबर में उनके पासपोर्ट रद्द कर दिए गए। फरवरी 1967 तक उनके ठिकाने का पता नहीं चल पाया था, जब सीबीआई को सूचना मिली कि वे अमेरिका में हैं, जहां उन्होंने स्थायी नागरिकता के लिए आवेदन किया था।

अमेरिका में कुछ खास हलकों में तेजा का बहुत सम्मान था और उनके लिए नागरिकता प्राप्त करना शायद बहुत आसान होता, लेकिन हमारी युवा और ऊर्जावान सीबीआई, जिसका गठन महज चार साल पहले दिल्ली विशेष पुलिस अधिनियम के तहत हुआ था, के पास अपनी क्षमता साबित करने का यही एक अवसर था।

भारत के वाणिज्य दूतावास को सूचना मिली कि तेजा और उनकी पत्नी के पासपोर्ट रद्द कर दिए गए हैं और भारतीय जांच एजेंसियों द्वारा उनके खिलाफ आपराधिक मुकदमा चलाने की मांग की जा रही है। अमेरिकी अधिकारियों ने उनके प्रत्यर्पण की कार्यवाही शुरू कर दी। इसी बीच, भारतीय राजधानी में, सीबीआई ने नई दिल्ली के उप-विभागीय मजिस्ट्रेट की अदालत में दंपति की गिरफ्तारी और अमेरिका से प्रत्यर्पण के लिए वारंट प्राप्त करने हेतु कार्यवाही शुरू की, जो मजिस्ट्रेट द्वारा 27 अप्रैल 1967 को जारी किए गए।

तेजा ने कभी खुद को कानून तोड़ने वाला नहीं माना और न ही अपने कारनामों को छुपाने की कोशिश की; उसके खिलाफ सबूत ढूंढना आसान था। टोक्यो से शुरू होकर, तेजा की वित्तीय

हेराफेरी का सुराग हमें न्यूयॉर्क, लंदन और ओस्लो तक ले गया। हर शहर में, तेजा के साथ लेन-देन करने वाली शिपिंग कंपनियों ने उसे और उसकी पत्नी को स्विस बैंक में उनके खाते में जमा की गई भारी रिश्वत के सबूत पेश किए। वारंट और सबूतों के आधार पर, अमेरिका में तेजा और उसकी पत्नी के खिलाफ प्रत्यर्पण की कार्यवाही शुरू की गई। सीबीआई के अनुरोध पर, दंपति को गिरफ्तार किया गया और उनके प्रत्यर्पण पर विचार करने के लिए एक जांच की गई। हमने तो अपने प्रतिनिधित्व के लिए एक अमेरिकी वकील, स्टाइनबर्ग को 10,000 डॉलर (75,000 रुपये) की भारी भरकम फीस पर नियुक्त भी किया था।

प्रत्यर्पण की कार्यवाही के दौरान दंपति को गिरफ्तार रखा गया, लेकिन जल्द ही अमेरिकी आयुक्त ने उन्हें 25,000 डॉलर की जमानत पर रिहा कर दिया। कार्यवाही पूरी होने से पहले ही वे जमानत तोड़कर अमेरिका से भाग गए और इस बात का कोई सुराग नहीं छोड़ा कि वे कहां गए होंगे। हालांकि सीबीआई को प्रत्यर्पण का आदेश मिल गया था, लेकिन यह एजेंसी के लिए एक बड़ा झटका था। सीबीआई ने कड़ी निगरानी रखी और दुनिया भर में भारतीय दूतावासों को भगोड़े दंपति के बारे में सूचित कर दिया गया। सितंबर 1967 में कोस्टा रिका से खबर आई कि तेजा वहां खुशी-खुशी बस गए हैं और राजकीय सम्मान का आनंद ले रहे हैं।

भारत का राष्ट्रीय रत्न अचानक कोस्टा रिका का राजकीय अतिथि बन गया। तेजा लोगों को प्रभावित करना जानता था। या शायद यह सब पैसों का खेल था। सीबीआई की जांच से पता चला कि गणतंत्र के पूर्व राष्ट्रपति होसे फिगुएरेस दिवालिया हो चुके थे और उन्हें चुनाव लड़ना था। तेजा ने उन्हें 200,000 डॉलर दिए। हम जानते थे कि कोस्टा रिका से तेजा का प्रत्यर्पण करना शेर की नाक के नीचे से उसके शिकार को छीनने जैसा होगा। न केवल सरकार उन्हें बचाने के लिए बेताब थी, बल्कि भारत का कोस्टा रिका के साथ कोई प्रत्यर्पण संधि भी नहीं थी। फिर भी हमने आगे बढ़कर कार्यवाही शुरू की और मामला कोस्टा रिका के सर्वोच्च न्यायालय तक ले गए। सीबीआई ने इस मामले को संभालने के लिए अमेरिकी वकीलों को नियुक्त किया। कार्यवाही के दौरान, तेजा ने कहा कि उन्होंने 26 अप्रैल 1970 से भारतीय नागरिकता त्याग दी थी और कोस्टा रिका की स्थायी नागरिकता और निवास के लिए आवेदन किया था।

तेजा शायद कैरेबियन में शरण पाने वाला पहला भारतीय आर्थिक अपराधी था। 2018 में एंटीगुआ की नागरिकता हासिल करने वाला मेहुल चोक्सी हाल के उदाहरणों में से एक है। इसके अलावा विंसम डायमंड्स भी है, जिसके प्रमोटर जतिन मेहता पर भारतीय बैंकों का 7,000 करोड़ रुपये का कर्ज है। वह सेंट किट्स और नेविस का नागरिक बन गया, और कई अन्य लोग भी - ये सभी नए 'समुद्री डाकू' कहलाते हैं।

कैरिबियन। कोस्टा रिका ने न केवल कानूनी सहायता प्रदान करके और न्यायपालिका को प्रभावित करके तेजा की हर संभव तरीके से रक्षा की, बल्कि उस देश की सरकार ने उन्हें राजनयिक पासपोर्ट भी प्रदान किया। इस पासपोर्ट पर उन्होंने फिर से पूरी दुनिया की यात्रा करने की गलती की। आज पेरिस, कल लंदन। ऐसी ही एक यात्रा के दौरान, 24 जुलाई 1970 को उन्हें स्कॉटलैंड यार्ड की मदद से लंदन के हीथ्रो हवाई अड्डे पर गिरफ्तार कर लिया गया।

लंदन की एक सक्षम अदालत में प्रत्यर्पण की नई कार्यवाही शुरू की गई और अक्टूबर 1971 में,

क्वीन बेंच डिवीजन ने भारत के पक्ष में प्रत्यर्पण आदेश पारित किया। अमेरिका की जेल में कुछ दिन बिताने और फिर ब्रिटेन की जेल में कुछ समय गुजारने के बाद, तेजा को श्रेणी ए के विचाराधीन कैदी के रूप में दिल्ली की तिहाड़ जेल भेजा गया। स्वास्थ्य, भागने की प्रतिबद्धता न करने और अन्य कई आधारों पर उनकी जमानत याचिका को दिल्ली उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया, जिसने पाया कि उपलब्ध साक्ष्यों और पिछले रिकॉर्ड के आधार पर इस बात की पूरी संभावना थी कि तेजा जमानत मिलने पर भाग जाएगा। अदालत ने यह भी ध्यान में रखा कि ब्रिटेन में प्रत्यर्पण कार्यवाही के दौरान भी जमानत के लिए दायर याचिका खारिज कर दी गई थी। अक्टूबर 1972 में, तेजा को जुर्माने के साथ तीन साल की कैद की सजा सुनाई गई।

तेजा का प्रत्यर्पण भारत द्वारा प्रत्यर्पण कार्यवाही के इतिहास में सबसे लंबी और बेहद सावधानीपूर्वक लड़ी गई लड़ाइयों में से एक थी, जो एक ऐतिहासिक सफलता बनी हुई है। सीबीआई ने युद्ध के मैदान से लौटे विजयी सैनिक की तरह शहर-शहर में धूम मचाई। उसकी खूब प्रशंसा हुई। इसकी तुलना उसी यूके कोर्ट में विजय माल्या के खिलाफ चल रही वर्तमान प्रत्यर्पण कार्यवाही से करें। वही सीबीआई और वही प्रत्यर्पण कार्यवाही, लेकिन अब तक कोई सफलता नहीं मिली। सीबीआई एक असफल नायक बनकर लौटी है। क्यों?

भ्रष्टाचार के आरोप में जेल जाने वाला पहला नौकरशाह: 1953

जब मैं पुरानी यादों में खो जाता हूँ, अपने और सीबीआई के सफर को याद करता हूँ, तो ऐसा लगता है कि मैं पुराने अच्छे दिनों की यादों में खो गया हूँ। कहते हैं ना, पुराना सोना होता है; तो चलिए, कुछ और सुनहरे पलों का आनंद लें।

फरवरी 1953: भारतीय सिविल सेवा (आईसीएस) अधिकारी एस.ए. वेंकटरमन, जो केंद्र सरकार में वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय के सचिव थे, पर साइकिल के पुर्जों के आयात घोटाले में अवैध रिश्वत (उस समय की प्रेस मीडिया रिपोर्टों के अनुसार व्हिस्की की कुछ बोतलें) प्राप्त करने का आरोप लगाया गया था।

केंद्र सरकार ने लोक सेवक (जांच) अधिनियम, 1850 के प्रावधानों के अनुसार एक औपचारिक और सार्वजनिक जांच का निर्देश दिया। कलकत्ता उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश सर आर्थर ट्रेवर हैरिस को आयुक्त नियुक्त किया गया। वेंकटरमन के विरुद्ध कुछ आरोप इस प्रकार थे:

• मिलर्स टिम्बर के प्रति अनुचित पक्षपात दिखाने के कारण दुर्व्यवहार किया गया।

और ट्रेडिंग कंपनी लिमिटेड को आयात और निर्यात लाइसेंस जारी करने में, लोक सेवक के रूप में अपने कर्तव्यों के निर्वहन में अपनी स्थिति का दुरुपयोग करते हुए; और

• उसने अपने और परिवार के अन्य सदस्यों के लिए मूल्यवान वस्तुएँ स्वीकार कीं या प्राप्त कीं।

उन्होंने अपने परिवार के लिए मिलर्स टिम्बर एंड ट्रेडिंग कंपनी से बिना भुगतान किए सामान खरीदा।

आयोग ने उन्हें आरोपों का दोषी पाया। केंद्र सरकार ने संघ लोक सेवा आयोग (यूपीएससी) से परामर्श करने के बाद उन पर बर्खास्तगी की कड़ी सजा सुनाई। वेंकटरमन को 17 सितंबर 1953 को सेवा से बर्खास्त कर दिया गया।

लेकिन भारतीय नौकरशाही में सबसे सम्मानित अधिकारियों में से एक इस अधिकारी के खिलाफ जांच और अनुशासनात्मक कार्रवाई भ्रष्टाचार से लड़ने और कानून के शासन को बनाए रखने के उत्साह का अंत नहीं थी।

फरवरी 1954 में, दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान ने सत्र न्यायालय में उनके खिलाफ आईपीसी की धारा 161 और 165 तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 5(2) के तहत आरोप पत्र दाखिल किया। वेंकटरामन ने इस आधार पर सर्वोच्च न्यायालय में आपराधिक कार्यवाही को चुनौती दी कि उक्त भ्रष्टाचार के मामले में उन पर पहले ही मुकदमा चलाया जा चुका है और उन्हें सजा भी मिल चुकी है; इसलिए उन पर दोबारा मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। सर्वोच्च न्यायालय ने याचिका खारिज कर दी और मामला वापस सत्र न्यायालय में चला गया, जहां 1955 में उन्हें छह महीने के साधारण कारावास की सजा सुनाई गई।

भारत में पहली बार किसी वरिष्ठ नौकरशाह को जेल भेजा गया है।

भ्रष्टाचार के आरोप में जेल जाने वाले पहले केंद्रीय मंत्री: 1951

सम्मानित नौकरशाह से लेकर शक्तिशाली जमींदार से राजनेता बने व्यक्ति और उद्योग मंत्री तक, कोई भी इससे अछूता नहीं रहा।

शिव बहादुर सिंह विंध्याचल क्षेत्र (वर्तमान मध्य प्रदेश) में जागीरदार थे। स्वतंत्रता संग्राम के दौरान, वे कांग्रेस में शामिल हुए और 1949 में तत्कालीन संयुक्त विंध्य प्रदेश राज्य के उद्योग मंत्री बने। विंध्य प्रदेश के एक घटक, पन्ना राज्य में, पन्ना दरबार और पन्ना हीरा खनन सिंडिकेट के बीच अगस्त 1936 से 15 वर्षों तक क्षेत्र में हीरा खनन कार्य जारी रखने का अनुबंध था। लेकिन अक्टूबर 1947 में, दरबार ने यह कहते हुए खनन गतिविधियों को बंद करने का आदेश दिया कि ये अनुचित तरीके से की जा रही थीं।

ये तथ्य स्वतंत्रता और राज्यों के पुनर्गठन से पहले के हैं; इसलिए, ये तथ्य कई लोगों के लिए अपरिचित होंगे। इन्हें समझना उतना महत्वपूर्ण नहीं है। कहानी का सार यह है कि सिंह ने उद्योग मंत्री के रूप में दरबार के आदेश को रद्द करने के लिए दस्तावेज़ों में हेराफेरी की ताकि सिंडिकेट अपने खनन कार्यों को जारी रख सके। इस कार्य के लिए उन्होंने सिंडिकेट के प्रतिनिधि नागिंदास मेहता से 25,000 रुपये की रिश्वत ली। उनके मंत्रालय के सचिव ने भी मिलीभगत की और दोनों पर आपराधिक साजिश का आरोप लगाया गया, जिसमें जाली दस्तावेज़ बनाने के लिए अवैध रिश्वत लेना शामिल था।

दोनों पर सत्र न्यायालय में मुकदमा चला, जिसने उन्हें बरी कर दिया, लेकिन सरकार ने न्यायिक आयुक्त के समक्ष अपील दायर की, जिन्होंने मार्च 1951 में दोनों को भ्रष्टाचार का दोषी पाया। सिंह को आईपीसी की धारा 120-बी के तहत तीन साल के कठोर कारावास और 2,000 रुपये के जुर्माने की सजा सुनाई गई, और आईपीसी की धारा 161 के तहत तीन साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई। दोनों सजाएं साथ-साथ चलेंगी।

सुप्रीम कोर्ट ने दोषसिद्धि को बरकरार रखा और मंत्री को जेल भेज दिया गया।

* * * * *

विकासशील देश के मध्यमवर्गीय नागरिक होने के नाते, हम अक्सर अपने आसपास की स्थिति

के प्रति उदासीन रहते हैं—हम भ्रष्टाचार और राजनीतिक नेताओं के कुकर्मों को स्वाभाविक मानकर स्वीकार कर लेते हैं। लेकिन यह सोचकर ही हमें बहुत प्रेरणा मिलती है कि अपार शक्ति, धन और प्रभाव वाले भ्रष्ट राजनेता, चाहे रिश्वत की राशि कितनी भी छोटी हो या भ्रष्टाचार का कृत्य कितना भी जघन्य क्यों न हो, भ्रष्टाचार के आरोपों में जेल जा सकते हैं या गए भी हैं। इससे व्यवस्था में हमारा विश्वास फिर से जागृत होता है; हमें विश्वास होता है कि हमारा हर अच्छा कार्य राष्ट्र निर्माण के लिए है और किसी भी व्यक्ति के हर बुरे कार्य का परिणाम दंड होगा। तब हमें एहसास होता है कि हमारे जीवन का अर्थ निजी जीवन—कार, घर, परिवार—से कहीं अधिक है। नागरिक होने के नाते, हम एक 'व्यापक उद्देश्य' की परवाह करते हैं।

यह बात सीबीआई अधिकारी और उन सभी अधिकारियों पर भी लागू होती है जो कर्तव्य की पंक्ति में हैं, जिनका काम दोषियों को पकड़ना और देश में कानून का शासन स्थापित करने के लिए ईमानदार मेहनती नागरिकों की रक्षा करना है।

दुर्भाग्य से, पुलिस की सफलता की प्रेरणादायक कहानियों के वे दिन अल्पकालिक रहे और अब बीत चुके हैं। आज, राजनेता और लोक सेवक अपने ऊपर पूर्ण शक्ति का प्रयोग करने में सबसे अधिक सहज हैं। सीबीआई में तैंतीस वर्ष सेवा करने के बाद, मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि हमारे समाज के ये दोनों वर्ग आज काफी हद तक एक साथ मिलकर अपराध के मूल स्रोत हैं। उनके दुराचार की कोई सीमा नहीं है, वे लगातार घिनौने और जघन्य अपराध करते हैं, जिससे समाज और कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए नियुक्त लोग समान रूप से पीड़ित होते हैं। भारतीय पुलिस पर भ्रष्टाचार का अड्डा होने का आरोप है और उपमहाद्वीप में लोक सेवकों के विभिन्न समूहों में से केवल उन्हें ही बिना वारंट के गिरफ्तारी करने का अधिकार प्राप्त है, जिसका उन्होंने भरपूर उपयोग सत्ता के कारोबार में खुद को सबसे आगे रखने के लिए किया है। वे गरीबों, आर्थिक और सामाजिक रूप से हाशिए पर पड़े वर्गों का शोषण करते हैं, छोटे व्यापारियों से जबरन वसूली करते हैं, सड़क विक्रेताओं से रिश्वत लेते हैं। अपने राजनीतिक आकाओं के आदेश पर, वे असहमति की आवाज उठाने वालों को गिरफ्तार करते हैं और अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हैं।

इसके बावजूद, एक 'एकल निर्देश' लंबे समय तक पुलिस और सीबीआई के सामने लटका रहा, जिससे भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने के लिए उनकी कार्रवाई बेअसर और अप्रभावी हो गई। यह एकल निर्देश आज भी मौजूद है, लेकिन एक अलग रूप में। कमजोर लोग अभियोजन का शिकार बनते हैं, जबकि शक्तिशाली लोगों को शायद ही कभी सजा मिलती है।

तो, इस परिदृश्य में एक सीबीआई अधिकारी की क्या भूमिका है, खासकर मेरे जैसे अधिकारी की, जो सीधे भर्ती किए गए शुरुआती बैच के उन उत्साही लोगों में से था जो कानून के शासन में विश्वास रखते थे और खुद को इस प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण हिस्सा मानते थे? सच कहें तो, सीबीआई ही एकमात्र ऐसा लोक सेवक समूह है जिसने कुछ हद तक विश्वसनीयता बरकरार रखी है और इस पर लगाई गई पाबंदियों और असफलताओं के बावजूद, यह समूह भ्रष्टाचार और अपराध के खिलाफ लड़ाई में देश की ताकत का स्रोत रहा है।

मैंने अपना फर्ज निभाया। विडंबना यह है कि मैंने जांच और अभियोजन की प्रक्रिया में चालाकी

से अपना रास्ता बनाया, मैंने रणनीतियां और कानूनी दांव-पेच अपनाए, धन कमाने के लिए नहीं, बल्कि न्याय के मार्ग पर डटे रहने के लिए। मैं यह नहीं कह रहा कि मैं हमेशा सफल रहा, लेकिन मैंने कोशिश जरूर की।

बिरला टेक्सटाइल्स घोटाला: 1975

1975 में, मैं खड़ा हुआ, पैर पटके और भारत के महानतम उद्योगपतियों में से एक जी.डी. बिरला के तीसरे पुत्र बी.के. बिरला की आँखों में देखते हुए, उनके इस अत्यंत अशोभनीय प्रस्ताव पर अपनी घोर असहमति व्यक्त की। मैंने गरजते हुए कहा, 'यह एक अपमान है। यह बिल्कुल अप्रत्याशित है।' बिरला और कमरे में उपस्थित अन्य प्रतिष्ठित व्यक्ति—सुरेश चंद्र रॉय, जो पूर्व शेरिफ और कलकत्ता (अब कोलकाता) के एक प्रतिष्ठित निवासी थे; आर.सी. माहेश्वरी, उद्योगपति—सभी स्तब्ध रह गए।

यह शायद उन शुरुआती मामलों में से एक था जहाँ मैंने सीबीआई के कामकाज में राजनीतिक हस्तक्षेप देखा। 1967 में, सीबीआई बिरला टेक्सटाइल्स के सभी कार्यों से जुड़े एक कथित षड्यंत्र की जांच कर रही थी, जिसमें आबकारी शुल्क की भारी चोरी के लिए कानूनों का उल्लंघन करने का आरोप था। कंपनी के विभिन्न कारखानों, कार्यालयों और संपर्क केंद्रों की तलाशी ली गई और जून 1967 में एफआईआर दर्ज की गई। कलकत्ता और लखनऊ में कुछ समय बिताने के बाद, मैं सितंबर में दिल्ली आया और जांच में शामिल हो गया।

जल्द ही मुझे यह स्पष्ट हो गया कि यह जांच कुछ राजनीतिक नेताओं के इशारे पर जानबूझकर शुरू की गई थी। बिड़ला साम्राज्य के वंशज दक्षिणपंथी स्वतंत्र पार्टी को समर्थन दे रहे थे और यह बात प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी को बर्दाश्त नहीं हुई। उन्होंने 'यंग टर्क' चंद्र शेखर (जो बाद में 1990-91 में थोड़े समय के लिए भारत के प्रधानमंत्री बने) द्वारा जुटाई गई जानकारी की मदद से पहले राजस्व खुफिया निदेशालय (डीआरआई) और फिर सीबीआई को जांच शुरू करने का निर्देश दिया।

हालांकि, बिड़ला परिवार ने जांच को चुनौती देने के लिए अदालतों का रुख किया और सर्वोच्च न्यायालय ने उनके पक्ष में फैसला सुनाया। पहले की गई तलाशी को अवैध घोषित कर दिया गया और जब्त की गई सभी सामग्री बिड़ला परिवार को वापस कर दी गई। आधिकारिक सूत्रों से उपलब्ध दस्तावेजों के आधार पर उत्पाद शुल्क चोरी के आरोप बरकरार रहेंगे।

जांच जारी रही, लेकिन फरवरी 1973 में मुझे कलकत्ता वापस भेज दिया गया, जहां मैंने आर्थिक अपराध शाखा (ईओडब्ल्यू) के पुलिस अधीक्षक के रूप में कार्यभार संभाला और मुझे लगा कि मामला अब खत्म हो चुका है। सीबीआई ने जांच के लिए आवश्यक दस्तावेजों की हिरासत के लिए विभिन्न अदालतों में कानूनी कार्यवाही जारी रखी। विशेष रूप से, न्यू स्वदेशी और मंजुश्री टेक्सटाइल मिल के खिलाफ मामला मजबूत प्रतीत हो रहा था और सीबीआई दस्तावेजों को अपने पास रखने पर अड़ी रही। यह खींचतान 1974 तक जारी रही, जब सर्वोच्च न्यायालय ने सीबीआई के पक्ष में फैसला सुनाया।

सीबीआई द्वारा चलाए गए मामलों का इतिहास आपको यह दिखाएगा कि साठ और सत्तर के दशक में सीबीआई की यह प्रवृत्ति थी कि वह मामलों को सर्वोच्च न्यायालय तक ले जाने के लिए

अथक प्रयास करती थी और अपराधों की तह तक पहुंचने के लिए सभी उपलब्ध कानूनी विकल्पों का सहारा लेती थी। बीच में ही हार मानना उसके लिए कोई विकल्प नहीं था। लेकिन हाल के दशकों में, सीबीआई ने रहस्यमय तरीके से महत्वपूर्ण मामलों की जांच रोक दी और फिर उतनी ही रहस्यमय तरीके से जांच फिर से शुरू कर दी। उदाहरण के लिए, 2005 में दिल्ली उच्च न्यायालय ने प्रधानमंत्री राजीव गांधी से कथित तौर पर जुड़े सनसनीखेज बोफोर्स घोटाले में सभी आरोपियों के खिलाफ आरोप खारिज कर दिए थे। बारह साल बाद, फरवरी 2018 में, सीबीआई ने उच्च न्यायालय के आदेश के खिलाफ अपील दायर की। बारह साल! यह मशीनरी के दुरुपयोग की सरासर राजनीति है। सर्वोच्च न्यायालय ने स्वयं अपील में देरी के लिए कई बार सीबीआई को फटकार लगाई है।

बिरला टेक्सटाइल्स मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के बाद, मुझे जांच फिर से शुरू करने और ईओडब्ल्यू में एसपी के रूप में अपनी भूमिका जारी रखने का आदेश दिया गया था। मामले से संबंधित कुछ दस्तावेज दिल्ली में थे, जबकि अन्य दस्तावेज अहमदाबाद में थे, जहां मुझे शारीरिक रूप से उपस्थित होना था। दोहरी जिम्मेदारी, दोहरा दबाव और उसके ऊपर कोलकाता के ईडन गार्डन्स में भारत और वेस्टइंडीज के बीच पांच दिवसीय टेस्ट मैच। मेरे लिए मैच छोड़ना नामुमकिन था।

आधिकारिक यात्राओं के लिए मुझे ट्रेन से यात्रा करने का अधिकार था, लेकिन इस बार मैंने जुगाड़ करके कलकत्ता-अहमदाबाद की फ्लाइट पकड़ ली और लंबी ट्रेन यात्रा से बच गया। मैंने टेस्ट मैच देखा और भारत को ताकतवर क्लाइव लॉयड की टीम को हराते हुए देखा, फिर तुरंत अहमदाबाद के लिए रवाना हो गया। मेरे साथ डीएसपी एमडी अगरकर और डीआईजी जॉन लोबो (जो बाद में सीबीआई निदेशक बने) भी थे, जो जांच की निगरानी कर रहे थे। हमने कपड़ा मिल में दस्तावेजों की गहन जांच में कई दिन और रातें बिताईं।

हमें पता चला कि शीर्ष स्तर से एक बड़ी साजिश रची गई थी, और यह 1964 से चल रही थी। उत्पाद शुल्क देश में उत्पादित वस्तुओं पर उद्योग द्वारा अदा किया जाने वाला कर है। शुल्क की राशि आपके द्वारा उत्पादित वस्तु पर आधारित होती है। यदि आप चाय का उत्पादन करते हैं, तो आपको एक निश्चित राशि का शुल्क देना होगा। यदि आप कॉफी का उत्पादन करते हैं, तो आपको एक अलग राशि का शुल्क देना होगा। उत्पादित वस्तुओं का वर्गीकरण, उनकी गुणवत्ता और उनकी प्रकृति—ये सभी निर्माता द्वारा अदा किए जाने वाले उत्पाद शुल्क की मात्रा निर्धारित करते हैं और यहीं कर चोरी की गुंजाइश निहित है। यदि आप यह नहीं बताते कि आप कौन सा उत्पाद बना रहे हैं, तो यह अनियमितता है। उदाहरण के लिए, यदि आप हरी चाय बना रहे हैं, और आप केवल चाय का उल्लेख करते हैं, तो यह हरी चाय पर लगने वाले उच्च शुल्क से बचने का प्रयास है।

बिरला समूह की इस खास कपड़ा मिल में यही हुआ था। यह मिल एक खास किस्म का धागा बना रही थी, लेकिन सरकारी दस्तावेजों में कुछ और ही दर्ज था। नतीजतन, कंपनी तय कर से कम कर चुका रही थी। 1964 से 1967 के बीच कंपनी ने लगभग 2 लाख रुपये से अधिक का कर नहीं चुकाया, जो 1960 के दशक के अंत में कोई छोटी रकम नहीं थी। मेरी जांच के

अनुसार, इन अनियमितताओं के लिए प्रबंध निदेशक एस.एन. हाडा सीधे तौर पर जिम्मेदार थे। मिल के अधिकारियों ने हमें वे सभी दस्तावेज़ देने से इनकार कर दिया जो हम चाहते थे; न ही उन्होंने हमें धागे और अन्य उत्पादों के नमूने उपलब्ध कराए। हमने उन्हें गुजरात उच्च न्यायालय में घसीटा, जहाँ हमने कानूनी विवाद जीत लिया। इसके बाद कंपनी सर्वोच्च न्यायालय गई, जहाँ हमने फिर से जीत हासिल की। सीबीआई ने सर्वोच्च न्यायालय में पहले खोई हुई स्थिति को पुनः प्राप्त कर लिया, जब पिछली तलाशी को अवैध घोषित कर दिया गया था। इस बार, हमने दृढ़ता से तर्क दिया कि दस्तावेजों के एक सेट (जिसे मिल देने के लिए सहमत हो गई थी) की जांच करते समय कर चोरी के संकेत मिले थे, और सीबीआई का यह वैधानिक कर्तव्य था कि वह इस नए पहलू की जांच करे। इसलिए, सीबीआई को अतिरिक्त साक्ष्य जब्त करने की आवश्यकता थी। सर्वोच्च न्यायालय ने हमारे तर्क को स्वीकार कर लिया।

नए साक्ष्यों के आधार पर, जिनकी पारदर्शिता और प्रामाणिकता की पूरी तरह से जांच की गई थी, और अदालत में हस्ताक्षरित हलफनामों के आधार पर, हमने मिल के खिलाफ एक पुख्ता मामला तैयार किया, जिसमें बिरला और हाडा को व्यक्तिगत रूप से फंसाया गया था। हम उन्हें अदालत में ले जाने से बस एक कदम दूर थे।

कानूनी कार्यवाही और गहन जांच-पड़ताल के लंबे सफर के बाद, हमने बड़े-बड़े सरगनाओं को पकड़ लिया। लेकिन कुछ ही दिनों में हमें बदले में घोर विश्वासघात का सामना करना पड़ा। सीबीआई निदेशक देवेंद्र सेन ने बिरला का नाम हटा दिया। उन्होंने अगरकर और मेरी राय को दरकिनार करते हुए बिरला का नाम हटाने का फैसला किया। हाडा और अन्य लोगों को अदालत में तलब किया गया, और उसके बाद जो कुछ भी हुआ, वह सीबीआई के गुप्त रहस्यों में दफ़न है। बिरला ने कलकत्ता के पूर्व शेरिफ रॉय से मुझसे मुलाकात कराने का अनुरोध किया। मैं बिल्कुल भी इच्छुक नहीं था। कपड़ा मामले में मुकदमा अभी शुरू नहीं हुआ था—बिरला का नाम आरोपियों की सूची से हटा दिया गया था, लेकिन हाडा का नाम अभी भी आरोपियों में शामिल था और मामला मेरे हाथ में था। इसलिए, उनसे मिलने में पेशेवर जोखिम भी थे। इसके अलावा, सेन का व्यवहार रहस्यमय था। सीबीआई प्रमुख ने ही जोर देकर मुझसे बिरला का नाम हटाने को कहा था, और फिर वे इस बात से भी बेहद नाराज थे कि बिरला मुझसे मिलना चाहते थे। वहां प्रभावशाली लोगों के बीच कुछ चल रहा था। मैं अभी भी एक युवा, बेदाग और ईमानदार अधिकारी था। लेकिन रॉय अड़े रहे; इसलिए, मैं उनसे कलकत्ता के पॉश अलीपुर इलाके में स्थित उनके न्यू रोड आवास पर मिला।

अब पीछे मुड़कर देखने पर लगता है कि वह मुलाकात अच्छी नहीं रही और मैं उसे टाल सकता था। बिरला ने न सिर्फ मुझसे सीधे तौर पर पूछा कि क्या मैं पहली बार नाकाम होने के बाद इस मामले में उन्हें फंसाने की दूसरी कोशिश कर रहा हूँ, बल्कि यह सवाल पूछना ही बेहद अनुचित था। अमीर और प्रभावशाली लोग इसी तरह मामलों को प्रभावित करने की कोशिश करते हैं, कभी मीठी-मीठी बातें करके, कभी दौलत का लालच देकर, कभी सीधे-सीधे धमकियों और डरा-धमकाने से। पुलिस, सीबीआई और अन्य एजेंसियों के अधिकारी अपनी और अपने परिवार की जान जोखिम में डालकर मामूली वेतन पर काम करते हैं। हम कानून की रक्षा पैसे के लिए नहीं,

बल्कि अपने अंदर बसे कर्तव्य और सम्मान के मूल्यों के लिए करते हैं। लेकिन अगर कोई प्रतिष्ठित व्यक्ति किसी के सामने आकर पूछे, 'क्या आप मेरी जांच करने की कोशिश कर रहे हैं,' तो भला कोई क्या कहेगा?

मैं अपनी बात पर अडिग रहा, टस से मस नहीं हुआ। मैंने कहा, 'मैं आपके खिलाफ मुकदमा चलाना चाहता था, लेकिन मेरे वरिष्ठों ने कुछ और ही फैसला किया है। अब मैं इस मामले से बाहर हूं।' तभी बिरला ने हद पार कर दी और मुझसे पूछा कि क्या मैं जांच से हाडा का नाम हटा सकता हूं।

'यह तो अपमान है। यह बिल्कुल अप्रत्याशित है,' मैं दहाड़ते हुए बोला और उस कमरे से बाहर निकल गया। लेकिन बिरला ने हाडा का नाम जांच कार्यवाही से हटाने के लिए जो 'अनुरोध' के बहाने प्रस्ताव रखा था, उसका शायद किसी और ने समर्थन किया, क्योंकि अंत में हाडा की ही जीत हुई। 1996 में मेरी सेवानिवृत्ति तक उन पर मुकदमा नहीं चलाया गया, और भारत सरकार ने अंततः मार्च 2009 में मामला वापस ले लिया।

Arrest of Minister Kalpnath Rai: 1996

अनुभव के साथ, मैंने सीखा कि कानून की किताबों में निर्धारित सीधे रास्ते - जांच करना, आरोप पत्र दाखिल करना, मुकदमा चलाना - के बजाय न्याय के लिए एक लंबा और अधिक घुमावदार रास्ता अपनाकर राजनीतिक हस्तक्षेप से कैसे बचा जा सकता है।

इंडिया टुडे पत्रिका ने 29 फरवरी 1996 को पूर्व केंद्रीय मंत्री कल्पनाथ राय की गिरफ्तारी पर एक विशेष रिपोर्ट प्रकाशित की थी, जिन पर शरण देने के आरोप थे।

कुख्यात अंडरवर्ल्ड डॉन दाऊद इब्राहिम के सहयोगी।22

रिपोर्ट में कहा गया है कि गिरफ्तारी के बाद भी राय का रवैया बेहद अहंकारी बना रहा और वे अपने ऊपर लगे आरोपों को नकारते रहे। रिपोर्ट में उनके पिछले रिकॉर्ड का विश्लेषण किया गया और उन पर लगे भ्रष्टाचार के कई आरोपों का जिक्र किया गया, जिनमें वे अब तक हमेशा बच निकलते आए थे। उदाहरण के लिए, 1994 में जब वे केंद्रीय खाद्य मंत्री थे, तब भारत में चीनी की भारी कमी थी और इसमें उनकी भूमिका की ठीक से जांच नहीं की गई थी। हवाला मामले में भी राय के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया गया था, जिसमें उन पर ₹71.5 लाख लेने का आरोप था। लेकिन इस मामले तक किसी भी मामले में गिरफ्तारी की जरूरत नहीं पड़ी थी, जिसमें न्यायमूर्ति एस.एन. ढिंगरा ने गुस्से में आकर उनके खिलाफ गैर-जमानती वारंट जारी किया। सीबीआई ने उन्हें तड़के ही गिरफ्तार कर लिया और सुबह 10 बजे तक उन्हें 14 दिन की न्यायिक हिरासत में भेज दिया गया।

इंडिया टुडे की खबर में मेरा जिक्र रिपोर्ट के मध्य भाग में था। पत्रिका ने रिपोर्ट किया, 'पिछले साल फरवरी में, न्यायमूर्ति ढिंगरा ने सीबीआई को आपराधिक-राजनेता गठजोड़ को जानबूझकर नजरअंदाज करने के लिए फटकार लगाई थी और उसे उन सभी लोगों के खिलाफ मामला दर्ज करने को कहा था जो 'अपराधियों को संरक्षण देते हैं'।' मैं अदालत में खड़ा था और न्यायमूर्ति ढिंगरा मुझे पहले आरोपपत्र दाखिल न करने के लिए फटकार लगा रहे थे।

राय एक मुखर और अनुभवी राजनीतिज्ञ थे, जिन्हें इंदिरा गांधी से लेकर उनके बाद राजीव गांधी

तक कई वरिष्ठ कांग्रेस नेताओं का संरक्षण प्राप्त था। हालांकि, पी.वी. नरसिम्हा राव उन्हें पसंद नहीं करते थे। इस मामले के समय, उन्होंने कांग्रेस पार्टी छोड़ दी थी और शपथ ली थी कि वे राव को बेनकाब किए बिना वह चैन से नहीं बैठता। 23 1991 में, राय केंद्रीय विद्युत मंत्री थे। दाऊद इब्राहिम के गिरोह से जुड़े पांच शातिर अपराधियों को जुलाई 1993 में तीन अलग-अलग समय पर किए गए अपराधों के सिलसिले में गिरफ्तार किया गया था: अप्रैल 1991 में, महाराष्ट्र के वदराई में ग्रामीणों पर हमला; मार्च 1993 में, मुंबई में एक इमारत में विस्फोट; और लगभग उसी समय मुंबई के जेजे अस्पताल में गोलीबारी हुई थी।

इन अपराधियों की जांच और उनके इकबालिया बयानों से पता चला कि उनका राजनेताओं से गहरा संबंध था। यह बात सामने आई कि राय ने दिल्ली स्थित राष्ट्रीय ताप विद्युत निगम (एनटीपीसी) के एक गेस्ट हाउस को दो अपराधियों के लिए महीनों तक आरक्षित करने का आदेश दिया था, जो हत्या और कई जघन्य अपराधों के लिए महाराष्ट्र पुलिस द्वारा वांछित थे। उनके रहने और खाने का पूरा खर्च सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम ने 'माननीय' मंत्री के कर्मचारियों के स्पष्ट मौखिक और लिखित निर्देशों पर वहन किया था।

मामले की गंभीरता का अंदाजा लगाइए। लोगों का पैसा उन आतंकवादियों और अपराधियों को पनाह देने में खर्च हो रहा था जिन्होंने मौत और तबाही मचाई थी। मामला बेहद गंभीर था और मैं इसे नजरअंदाज नहीं कर सकता था। लेकिन राय की भूमिका की जांच के शुरुआती प्रयास से ही मुझे एहसास हो गया कि उनके खिलाफ आरोपपत्र दाखिल करना आसान नहीं होगा। राय असहयोगी थे। उन्होंने सीबीआई द्वारा पूछताछ किए जाने से भी इनकार कर दिया और जब भी उनसे संपर्क किया गया, उन्होंने अपशब्दों का प्रयोग किया। उनके सभी अपशब्दों को सावधानीपूर्वक नोट किया गया और फाइल में दर्ज किया गया। सीबीआई ने उनके खिलाफ काफी सबूत जुटाए थे - हमारे मामले को पुष्ट करने के लिए गवाहों की एक लंबी सूची थी, विशेष रूप से एसपी राय, जो सरकारी गवाह बनने वाले थे।

मेरी रणनीति यह थी कि जांच जारी होने का बहाना बनाकर, उसके खिलाफ आरोपों का स्पष्ट उल्लेख किए बिना, सारे सबूत अदालत के सामने रख दिए जाएं। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश ढिंगरा ने सबूत पढ़े और सीबीआई को आरोपपत्र दाखिल न करने के लिए फटकार लगाई। मैं मन ही मन मुस्कुराया और कल्पनाथ राय और दो अन्य लोगों को गिरफ्तार करने निकल पड़ा। अपराधियों को यह विश्वास दिलाकर कि उन पर कोई नजर नहीं रख रहा है और उन पर मुकदमा नहीं चलाया जाएगा, राजनीतिक हस्तक्षेप से बचा गया। वे अचानक पकड़े गए और उन्हें अपने राजनीतिक प्रभाव का इस्तेमाल करने का भी समय नहीं मिला।

और इस रणनीति ने एक तरह से इतिहास रच दिया। एक साल बाद, मार्च 1997 में, न्यायमूर्ति ढिंगरा ने राय को आतंकवादी और विघटनकारी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम, 1985 (TADA) के तहत 10 साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई और दाऊद इब्राहिम के दो हत्यारों को पनाह देने के आरोप में उन पर 10 लाख रुपये का जुर्माना लगाया गया। यह एक ऐतिहासिक और अभूतपूर्व फैसला था, क्योंकि राय स्वतंत्र भारत के इतिहास में गिरफ्तार होने और फिर दोषी ठहराए जाने वाले पहले कैबिनेट मंत्री बने।

4

पतन की शुरुआत

19 जुलाई 2018 को, सीबीआई ने एयरसेल मैक्सिस मामले में पूर्व केंद्रीय गृह मंत्री और वित्त मंत्री पलानीअप्पन चिदंबरम, उनके बेटे कार्ति चिदंबरम और वित्त मंत्रालय में आर्थिक मामलों के एक पूर्व सचिव, एक संयुक्त सचिव, एक अवर सचिव और एक संयुक्त निदेशक सहित पांच अन्य सार्वजनिक अधिकारियों के खिलाफ पूरक आरोप पत्र दायर किया।

यह मामला, जिसमें सीबीआई ने पहली चार्जशीट दाखिल होने के चार साल बाद चिदंबरम के खिलाफ नए आरोप दायर किए, एक और ऐसा उदाहरण था जहां सत्ताधारी सरकार सीबीआई का इस्तेमाल राजनीतिक बदले की भावना से कर रही थी। किसी अतिरिक्त सबूत की जरूरत नहीं थी—इस मामले में सीबीआई की जांच में मौजूद खामियों से साफ पता चलता है कि एजेंसी सत्ता में बैठे लोगों के प्रभाव में थी, चाहे वह 2018 की भाजपा के नेतृत्व वाली राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन (एनडीए) सरकार हो या उससे पहले की कांग्रेस के नेतृत्व वाली यूपीए सरकार।

एयरसेल मैक्सिस मामला 2006 में शुरू हुआ जब राजनेता-वकील सुब्रमण्यम स्वामी ने सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर कर जांच की मांग की। 2014 में सीबीआई ने दो मारन बंधुओं - दयानिधि और कलानिधि (जिनमें से पहले केंद्रीय संचार मंत्री थे, जबकि दूसरे सन मीडिया ग्रुप के प्रमुख थे) - और कुछ अन्य अधिकारियों के खिलाफ आरोप पत्र दायर किया, लेकिन विशेष सीबीआई न्यायाधीश ओपी सैनी ने यह निष्कर्ष निकालते हुए मामला खारिज कर दिया कि कोई आपराधिक अपराध नहीं हुआ है। भाजपा सरकार के सत्ता में आने के बाद, सीबीआई ने मामले को फिर से खोला और अब इस पर पुनर्विचार चल रहा है। इस बीच, स्वामी शुरू से ही चिदंबरम पर आपराधिक आरोप लगाने पर जोर देते रहे हैं, उनका आरोप है कि वे पहले एयरसेल और मैक्सिस के बीच हुए सौदे के लिए मंजूरी देने वाले अधिकारी थे। वैसे भी, चिदंबरम पर हमेशा से यही आरोप लगता रहा है। तो सवाल यह उठता है कि सीबीआई चिदंबरम पर पहले मुकदमा चलाने में विफल क्यों रही? क्या हमें यह नहीं मान लेना चाहिए कि ऐसा इसलिए हुआ क्योंकि उस समय वे यूपीए सरकार के प्रभाव में थे? दूसरा अनुमान यह हो सकता है कि मामला था ही नहीं, और अब वे भाजपा सरकार के प्रभाव में हैं। दोनों ही स्थितियों में, इससे सीबीआई की छवि बेहद खराब होती है। ब्यूरो के अधिकारियों को अपनी जांच में आई इस कमी का स्पष्टीकरण देना होगा, जो सरकार बदलने के साथ ही अपनी दिशा बदलती हुई प्रतीत होती है।

पार्टी संबद्धता की परवाह किए बिना, लगातार आने वाली सरकारों ने सीबीआई का इस्तेमाल अपने राजनीतिक विरोधियों पर राजनीतिक बढ़त हासिल करने के लिए किया है। विडंबना यह है कि भ्रष्टाचार विरोधी एजेंडे पर सत्ता में आने वाली कई राजनीतिक सरकारों ने व्यवस्था को साफ करने के लिए वास्तविक प्रयास करने से जानबूझकर पल्ला झाड़ लिया। फिर भी, विपक्ष में रहते हुए वही नेता भ्रष्टाचार के खिलाफ सबसे ज़ोरदार आवाज़ उठाते हैं। इस तमाशे में भारत की जनता को बेवकूफ बनाया जा रहा है। वे उन राजनीतिक नेताओं पर भरोसा करते हैं जो भ्रष्टाचार

से निपटने के लिए गंभीर कदम उठाने का वादा करते हैं, लेकिन अब तक हर नेता उन्हें निराश कर चुका है।

समस्या का एक हिस्सा व्यवस्था में ही निहित है जिसे हमें ठीक करने की आवश्यकता है। सीबीआई को सरकारी अधिकारियों के खिलाफ भ्रष्टाचार के मामलों की जांच के लिए सरकार की अनुमति की आवश्यकता होती है। एकल निर्देश के सफर पर गौर करें। यह प्रचलित वाक्यांश, जो किसी भविष्यवादी विज्ञान कथा फिल्म की शब्दावली जैसा लगता है, 80 के दशक के मध्य में केंद्र सरकार द्वारा जारी किया गया एक आदेश था, जिसने सीबीआई के लिए संयुक्त सचिव और उससे ऊपर के रैंक/ग्रेड के सभी सिविल सेवाओं में भ्रष्ट अधिकारियों के खिलाफ प्रारंभिक जांच शुरू करने से पहले भी सरकार की पूर्व स्वीकृति लेना अनिवार्य कर दिया था। वास्तव में, यह प्रावधान राजनीतिक हस्तक्षेप का एक साधन था जिसने सीबीआई की स्वायत्तता को कमजोर कर दिया। यदि सीबीआई अधिकारी को यह मानने का कारण है कि कोई अपराध हुआ है, तब भी उसे मामले की जांच के लिए सरकार की अनुमति की आवश्यकता होगी। इसने निगरानी संस्था को सीमित कर दिया।

भारत में भ्रष्टाचार विरोधी सबसे मुखर कार्यकर्ताओं में से एक माने जाने वाले स्वामी ने एकल निर्देश को अदालत में चुनौती दी थी। लेकिन अगर हम इस प्रावधान के खिलाफ उनके अपने संघर्ष पर गौर करें, तो पाते हैं कि वे भी अपनी राजनीतिक निष्ठा से ऊपर उठने में असफल रहे, और मई 2014 में भाजपा सरकार के सत्ता में आने और राज्यसभा सदस्य बनने के बाद एकल निर्देश के खिलाफ उनका संघर्ष खामोशी से समाप्त हो गया।

दिसंबर 1997 में, सर्वोच्च न्यायालय की तीन सदस्यीय पीठ ने पत्रकार और भ्रष्टाचार-विरोधी कार्यकर्ता विनीत नारायण द्वारा संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत दायर जनहित याचिका (PIL) की सुनवाई करते हुए, जैन हवाला डायरी मामले की जांच में सीबीआई, केंद्रीय सतर्कता आयोग (CVC) और अन्य एजेंसियों की 'विफलताओं' के खिलाफ एकल निर्देश की वैधता पर भी फैसला सुनाया। न्यायालय ने इस प्रावधान को असंवैधानिक और अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने वाला घोषित किया, जो प्रत्येक भारतीय नागरिक को समानता का अधिकार प्रदान करता है। इसने सीबीआई और CVC को यह सुनिश्चित करने के लिए कई निर्देश भी दिए कि उनकी भविष्य की जांच राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त हो।

हालांकि, 2003 में प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व वाली एनडीए सरकार ने केंद्रीय सतर्कता आयोग (सीवीसी) को वैधानिक दर्जा देकर और डीएसपीई अधिनियम में संशोधन करके सर्वोच्च न्यायालय के फैसले को कमजोर करने का निर्णय लिया। पाठकों को याद होगा कि सीबीआई और सीवीसी क्रमशः 1963 और 1964 में कार्यकारी आदेशों द्वारा अस्तित्व में आए थे और उन्हें वैधानिक शक्तियां देकर मजबूत करने की आवश्यकता महसूस होने के बावजूद, पिछली सरकारें ऐसा करने में विफल रहीं। अचानक 2003 में, एनडीए सरकार ने केंद्रीय सतर्कता आयोग अधिनियम (सीवीसी अधिनियम) लागू किया और इस कानून के तहत, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पहले अमान्य घोषित किए गए एकल निर्देश को फिर से लागू किया। डीएसपीई अधिनियम (जो सीबीआई का विधायी आधार है) में भी तदनुसार संशोधन किया गया।

फरवरी 2005 में, स्वामी और अधिवक्ता प्रशांत भूषण के नेतृत्व वाले जनहित याचिका केंद्र (सीपीआईएल) ने कई जनहित याचिकाओं के माध्यम से इस कानून (सीवीसी अधिनियम की धारा 26सी और डीएसपीई अधिनियम की धारा 6ए, जिसे संशोधन द्वारा जोड़ा गया था) की संवैधानिक वैधता को चुनौती दी। इन याचिकाओं पर निर्णय लेने के लिए सर्वोच्च न्यायालय की एक बड़ी पीठ का गठन किया गया और मई 2014 में, यूपीए सरकार के कार्यकाल के अंतिम समय में, सर्वोच्च न्यायालय की पांच सदस्यीय पीठ ने एकल निर्देश को अनुच्छेद 14 का उल्लंघन करने वाला और असंवैधानिक घोषित किया - दूसरी बार।

इस फैसले के कुछ ही हफ्तों के भीतर, दशकों के अंतराल के बाद भाजपा के नेतृत्व वाली एनडीए सरकार ऐतिहासिक जनादेश के साथ सत्ता में आई और पार्टी को लोकसभा में बहुमत प्राप्त हुआ। भारत की जनता उस भ्रष्टाचार से छुटकारा पाना चाहती थी जो कांग्रेस पार्टी का पर्याय बन चुका था। और भाजपा सरकार ने क्या किया? उन्होंने नए संशोधन लाकर 30 साल पुराने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम (पीसीए), 1988 को कमजोर कर दिया और एक बार फिर एकल निर्देश लागू कर दिया। पीसीए में धारा 17ए को शामिल करने के साथ, जांच शुरू करने से पहले सरकार की अनुमति प्राप्त करने की अनिवार्यता अब सभी नौकरशाहों पर लागू हो गई, न केवल वरिष्ठ नौकरशाहों पर बल्कि सेवानिवृत्त नौकरशाहों पर भी। इसके अलावा, अब नौकरशाही को जांच से पूरी तरह से छूट मिल गई क्योंकि सीबीआई को अब दो चरणों - जांच और अभियोजन - में पूर्व स्वीकृति की आवश्यकता होगी।

अस्सी के दशक में, कांग्रेस सरकार ने निगरानी संस्था पर लगाम कस दी थी। तीस साल से अधिक समय बाद, कांग्रेस के भ्रष्टाचार के वर्षों के संघर्ष के बाद सत्ता में आई भाजपा सरकार ने लगाम और भी कस दी। स्वामी ने अभी तक एकल निर्देश को एक अलग रूप में पुनः लागू किए जाने के खिलाफ अदालत का रुख नहीं किया है।

सत्तर के दशक में आपातकाल की अवधि एक ऐसी असामान्य घटना थी जिसने शासन, कानून व्यवस्था, नागरिक स्वतंत्रता और संस्थागत अखंडता को बुरी तरह प्रभावित किया, लेकिन सीबीआई का पतन विशेष रूप से अस्सी के दशक के मध्य में शुरू हुआ। पंकज पचौरी ने इंडिया टुडे (15 सितंबर 1989) में 'सीबीआई सत्ताधारी पार्टी का राजनीतिक हथियार बन गई' शीर्षक से एक विशेष रिपोर्ट में लिखा, 'सीबीबी का कभी अनुकरणीय रहा 75 प्रतिशत दोषसिद्धि का रिकॉर्ड 1987 के बाद से 5 प्रतिशत गिर गया है। इसके कारण स्पष्ट हैं। सीबीआई के पास राजनीतिक रूप से संवेदनशील मामलों की भरमार है जिन्हें अन्य एजेंसियों को संभालना चाहिए। इसके कई शीर्ष जांचकर्ता इस काम में लगे हुए हैं और वे इसे मनोबलहीन पाते हैं।'

लेख में सरकार द्वारा सीबीआई को सौंपे गए कई ऐसे मामलों का उल्लेख किया गया था जिनका संबंध अपराध से अधिक राजनीति से था। इसमें कई राजनीतिक रूप से संवेदनशील मामलों की भी सूची दी गई थी जिनमें सीबीआई की भूमिका संदिग्ध थी और संस्था ने भ्रष्टाचार को छिपाने में भूमिका निभाई थी। दुख की बात है कि पत्रकार अरुण शौरी और कांग्रेस सांसद कमल नाथ से जुड़े ऐसे ही एक मामले में मैं जांचकर्ता के रूप में शामिल था, और मैं स्वीकार करता हूं कि सीबीआई ने वास्तव में

इस मामले में अपना कर्तव्य निभाने में विफल रहा। 24

अरुण शौरी, कमल नाथ और एक लीपापोती: 1989

द हिंदू अखबार के एन राम द्वारा राफेल रक्षा सौदे से संबंधित एक सरकारी फाइल के कुछ पन्ने प्रकाशित करके भ्रष्टाचार के एक संभावित मामले और इस सौदे में प्रधानमंत्री की प्रत्यक्ष संलिप्तता को उजागर करने से ठीक चार दशक पहले, द इंडियन एक्सप्रेस के तत्कालीन संपादक अरुण शौरी ने प्रवर्तन निदेशालय (ईडी), कोलकाता के उप निदेशक द्वारा ईडी के निदेशक भूरे लाल को लिखे एक पत्र को प्रकाशित किया था और मध्य प्रदेश के छिंदवाड़ा से कांग्रेस सांसद कमल नाथ द्वारा किए गए एक संभावित वित्तीय घोटाले का खुलासा किया था।

मीडिया में प्रकाशित भ्रष्टाचार के आरोपों वाले कुछ दस्तावेजों की प्रामाणिकता पर कांग्रेस सरकार ने संदेह जताया था (जैसा कि अब भाजपा सरकार कर रही है)। चीजें जितनी बदलती हैं, उतनी ही वैसी ही रहती हैं। फर्क सिर्फ इतना है कि उस समय सोशल मीडिया पर ऐसे ट्रोल नहीं थे जो सत्ताधारी सरकार द्वारा भ्रष्टाचार का आरोप लगाने मात्र से संपादक को राष्ट्रविरोधी कह देते।

प्रकाशित पत्र में यह विवरण था कि कोलकाता में एक फर्म के परिसर में तलाशी अभियान चलाया गया था, जिससे नाथ और उनके पिता जुड़े हुए थे। इसमें आरोप लगाया गया था कि कंपनी द्वारा विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम (FERA) का उल्लंघन किया गया था, जिसके समर्थन में कुछ सबूत भी बरामद किए गए थे। वित्त मंत्रालय के एक बड़े अधिकारी के आदेश पर अभियान बीच में ही रोक दिया गया था। शौरी ने तर्क दिया कि राजीव गांधी के मंत्रिमंडल में कोई नाथ को बचाने की कोशिश कर रहा था और उन्होंने तुरंत प्रकाशित पत्र की प्रामाणिकता पर संदेह जताया। यहीं से मेरी भूमिका शुरू हुई। निदेशक मोहन जी कात्रे ने मुझे यह जांच करने का काम सौंपा कि पत्र असली था या जाली।

मेरी जांच का दायरा सीमित था, और इसका नतीजा गांधी जी के लिए बेहद शर्मनाक साबित हुआ, शायद इसमें उनकी कोई गलती नहीं थी। मुझे नहीं लगता कि उन्हें इस बात का ज़रा भी अंदाज़ा था कि उनके मंत्रिमंडल में कोई क्या कर रहा है, क्योंकि अगर उन्हें पता होता तो वे सीबीआई को जांच का आदेश नहीं देते।

मेरी जांच से बस इतना ही साबित हुआ कि वह आपत्तिजनक पत्र वास्तव में असली था, और इससे कई नए सवाल उठे जो मेरी जांच के दायरे से बाहर थे, इसलिए मैंने उन पर गहराई से विचार नहीं किया। लेकिन यह सच था कि शौरी की कहानी ने कांग्रेस सांसद अरुण नेहरू के इशारे पर शुरू किए गए एक कवर-अप का पर्दाफाश किया, जिन्होंने ईडी में भूरे लाल के दूसरे सबसे बड़े अधिकारी को तलाशी अभियान बीच में ही रोकने का निर्देश भेजा था। इस मामले की सीबीआई द्वारा और जांच की जानी आवश्यक थी, लेकिन ऐसा कभी नहीं किया गया।

निदेशक कात्रे और उनके उत्तराधिकारियों को इसकी जिम्मेदारी लेनी होगी और उन्हें बहुत कुछ जवाब देना होगा। ठीक वैसे ही जैसे सरकार द्वारा आधी रात को अचानक तख्तापलट करके आलोक वर्मा की जगह नियुक्त किए गए सीबीआई निदेशकों को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पूछे गए इस सवाल का जवाब देना होगा कि राफेल सौदे में शिकायत दर्ज होने के बावजूद सीबीआई ने प्रधानमंत्री और अन्य लोगों के खिलाफ एफआईआर क्यों दर्ज नहीं की। इस मामले पर आगे

विस्तार से चर्चा की जाएगी।

हवाला घोटाले की सच्चाई: 1991

जैन हवाला डायरियाँ मई 1991 में अशफाक हुसैन लोन की गिरफ्तारी के बाद बरामद हुईं, जिस पर हिजबुल मुजाहिदीन नामक चरमपंथी संगठन का सदस्य होने का आरोप था। (हवाला को सरल शब्दों में काले धन के अवैध हस्तांतरण और शुद्धिकरण का तरीका कहा जा सकता है।) उससे पूछताछ के बाद, सीबीआई ने सुरेंद्र कुमार जैन, उसके भाइयों, रिश्तेदारों और व्यवसायों के परिसरों पर छापा मारा, जहाँ से भारी मात्रा में नकदी, दो डायरियाँ और दो नोटबुक जब्त की गईं। यह तलाशी अभियान डीआईजी ओपी शर्मा के नेतृत्व में चलाया गया था।

ये डायरियाँ, जिन्हें बाद में जैन हवाला डायरी के नाम से जाना गया, मीडिया में खूब हंगामा मचाया और हमारी राजनीतिक और नौकरशाही व्यवस्था की सारी खामियों का प्रतीक बन गईं। एक पतली सी नोटबुक के पन्नों में हस्तलिखित हिसाब-किताब था, जिसमें उन व्यक्तियों को किए गए भारी भुगतानों का विवरण था, जिनकी पहचान केवल उनके नाम के पहले अक्षरों से की गई थी। प्रत्येक पृष्ठ पर एक महीना लिखा था, जिसके बाद 'एलकेए', 'श्रीमती', 'जेसी' आदि जैसे कुछ नाम के पहले अक्षर लिखे थे, साथ ही प्रत्येक अक्षर के आगे दो या तीन अंकों में राशि लिखी थी। कुछ प्रविष्टियों के आगे 'नकद' शब्द लिखा था, लेकिन सभी के आगे नहीं, और अंत में राशियों का योग एक सूची में दिया गया था, जिसमें प्रत्येक पृष्ठ पर कई हस्ताक्षर और तारीखें थीं। ये स्पष्ट रूप से डेबिट और क्रेडिट प्रविष्टियाँ थीं, जिनका हिसाब प्रत्येक दिन के अंत में दिया गया था, और ये नाम के पहले अक्षर संभवतः उन व्यक्तियों के नाम थे जिन्हें भुगतान प्राप्त हुए थे। उदाहरण के लिए, एलकेए को भाजपा नेता लाल कृष्ण आडवाणी माना जा रहा था।

इन खुलासों से भारी हंगामा मच गया। राजनेताओं, नौकरशाहों, अपराधियों और यहां तक कि आतंकवादियों के बीच एक घिनौनी सांठगांठ का पर्दाफाश हुआ। डायरियों की बरामदगी के बाद आयकर विभाग से लेकर सीबीआई तक, देश की हर जांच एजेंसी को हरकत में आ जाना चाहिए था और डायरी के लेखक और उसके साथियों को तलाशी और बरामदगी वाले दिन ही गिरफ्तार कर लिया जाना चाहिए था। लेकिन सबसे रहस्यमय बात यह थी कि 3 मई 1991 से 14 जून 1991 तक, डेढ़ महीने की अवधि के लिए, डायरियां गायब हो गईं।

शर्मा, जिनकी देखरेख में तलाशी अभियान चलाया गया था, पर आरोप है कि उन्होंने डायरियों को छिपाने की कोशिश की। जांच करने के बजाय, उन्होंने कथित तौर पर जैन बंधुओं - सुरेंद्र कुमार और जनेंद्र जैन - को आतंकवादी और विघटनकारी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम के तहत आरोप लगाकर धमकाना शुरू कर दिया और मामले को दबाने के लिए रिश्वत की मांग की। सुरेंद्र ने एलके कौल से संपर्क किया, जो शर्मा को जानता था, और किश्तों में रिश्वत देने के लिए सहमत हो गया। एक जटिल धोखे के खेल में, कौल ने बाद में शर्मा के खिलाफ सीबीआई में शिकायत दर्ज कराई और तभी एजेंसी को मामले को दबाने की भनक लगी।

18 जून को शर्मा के लिए एक सुनियोजित जाल बिछाया गया, जिसमें कौल द्वारा रासायनिक पाउडर से सने 10 लाख रुपये नकद उन्हें उसी तरह सौंपे जाने थे जैसे उन्हें पहले ही दिए जा चुके थे। नकदी से भरा ब्रीफकेस सौंपते ही कौल ने शोर मचा दिया। बाहर इंतजार कर रहे सीबीआई

अधिकारी कमरे में घुस आए। शर्मा ने बैग फेंकने की कोशिश की, लेकिन उनके हाथों पर पहले से ही रासायनिक पाउडर लगा हुआ था और जब अधिकारियों ने उन्हें पानी में हाथ डुबोने को कहा, तो उनके हाथ लाल हो गए। राष्ट्रपति पुलिस पदक से सम्मानित शर्मा रिश्वत लेते हुए रंगे हाथों पकड़े गए। 24 जून को उन्हें निलंबन आदेश दिया गया, जिस पर हस्ताक्षर किए गए थे।
प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिम्हा राव।25 मार्च 2013 में, उन्हें दोषी ठहराया गया और
एक साल के कारावास की सजा सुनाई गई।26
शर्मा को डायरियों की जांच न करने के लिए जेल भेज दिया गया था। लेकिन उनमें उजागर हुए अपराधों का क्या हुआ?
23 अगस्त 1993 को जनसत्ता अखबार की हेडलाइन थी, 'करोड़ों के घोटाले पर सीबीआई बैठी है'। लेकिन उस दिन सीबीआई घोटाले पर निष्क्रिय नहीं बैठी थी। मेरे नेतृत्व में पहले ही सतर्क और सावधानीपूर्वक जांच शुरू हो चुकी थी—मैं मार्च 1993 से संयुक्त निदेशक (भ्रष्टाचार विरोधी) के पद पर था। लेकिन मीडिया की तीखी आलोचना सही थी। लगभग डेढ़ साल से कोई जांच न होने के कारण हमने कीमती समय गंवा दिया था।
क्यों? इसका जवाब कोई भी दे सकता है। चार साल बाद जब वरिष्ठ भाजपा नेता आडवाणी और कांग्रेस नेता वीसी शुक्ला इस मामले में बरी हो गए, तो प्रधानमंत्री राव पर जैन हवाला डायरी का इस्तेमाल विपक्ष के साथ-साथ अपनी ही पार्टी के प्रतिद्वंद्वियों के खिलाफ राजनीतिक बदले की भावना से प्रेरित कार्रवाई करने का आरोप लगाया गया।
आइए यहाँ रुकें। आडवाणी और शुक्ला का इस मामले में क्या रोल था? डायरी में कई नामों (संक्षिप्त नामों के रूप में) के बावजूद, केवल ये दो ही नाम सुर्खियों में क्यों थे? इसका जवाब हवाला घोटाले की उस पेचीदा भ्रष्टाचार की कहानी में छिपा है।
रिश्वतखोरी और लेन-देन भ्रष्टाचार के सर्वमान्य उदाहरण हैं; इनमें कुछ भी नया या असामान्य नहीं है। शर्मा की रिश्वतखोरी इस मामले में असली भ्रष्टाचार नहीं थी। असली कहानी यह थी कि कैसे दो 'कमजोर' लोगों के खिलाफ जानबूझकर कमजोर आरोपपत्र दायर किया गया ताकि जैन हवाला डायरीज़ में उल्लिखित रिश्वतखोरी और भ्रष्टाचार के गंभीर कृत्यों के लिए अन्य राजनीतिक नेताओं को जांच से बचाया जा सके।
आम आदमी की समझ के लिए, सीबीआई की कोई भी जांच निम्नलिखित क्रम में होती है: किसी कथित अपराध की जानकारी किसी स्रोत से या सरकारी जांच आदेश के माध्यम से एजेंसी को मिलती है; सीबीआई तब गुप्त रूप से प्रारंभिक जांच करती है; यदि प्रारंभिक जांच में मामला आगे बढ़ाने योग्य पाया जाता है, तो औपचारिक मामला दर्ज किया जाता है; इसके बाद आरोपियों को गिरफ्तार किया जाता है या उनसे पूछताछ की जाती है, सबूत जुटाए जाते हैं; एक बार जब सीबीआई को यकीन हो जाता है कि अपराध हुआ है और रिकॉर्ड पर मौजूद सबूतों से पता चलता है कि आरोपी दोषी साबित हो सकता है, तो अदालत में आरोप पत्र दाखिल किया जाता है। हालांकि इस प्रक्रिया में कई बाधाएं आती हैं, जो कभी-कभी हमारे हाथ बांध देती हैं और हमें सत्ताधारी शासन के मात्र एजेंट बना देती हैं, लेकिन आइए इस अप्रिय पहलू पर बाद में चर्चा करें। अभी के लिए, मान लेते हैं कि सीबीआई एक सर्वशक्तिशाली स्वतंत्र एजेंसी है जिसे अपनी जांच

करने में पूर्ण स्वायत्तता प्राप्त है।

आदर्श स्थिति में, अपराध की सूचना मिलने से लेकर एफआईआर दर्ज करने, गिरफ्तारी, पूछताछ, जांच और आरोपपत्र दाखिल करने तक की पूरी प्रक्रिया में अंतिम चरण सबसे महत्वपूर्ण होता है। अगर आरोपपत्र सही ढंग से तैयार नहीं किया गया तो बाकी सब कुछ धराशायी हो जाता है। इसलिए, सीबीआई और पुलिस को आरोपपत्र दाखिल करने से पहले अपनी जांच और सबूतों के बारे में पूरी तरह आश्वस्त होना चाहिए। जैन हवाला डायरी मामले का विफल होना, जिसमें सभी आरोपी बरी हो गए, जल्दबाजी में और बिना उचित जांच के दाखिल किए गए आरोपपत्र का परिणाम था।

भ्रष्टाचार और मिलीभगत के हथियार के रूप में 'आरपशीट' का ही इस्तेमाल करने की चतुराई ही भारत के राजनीतिक वर्ग की प्रतिभा है।

मुझे मार्च 1993 में यह मामला सौंपा गया था। सितंबर 1993 तक, अपनी जांच के पहले चरण को पूरा करने के बाद, मैं इस बात से आश्वस्त हो गया था कि डायरियों में उल्लिखित भुगतान महज रिश्वत से कहीं अधिक थे। मेरा मानना था कि लगभग 64 करोड़ रुपये की विदेशी मुद्रा भारत से बाहर जमा की गई थी और विभिन्न उच्च पदस्थ व्यक्तियों को उपलब्ध कराई गई थी। मेरा मत था कि सुरेंद्र जैन महज एक माध्यम थे।

ये नाम विभिन्न राजनीतिक दलों के महत्वपूर्ण नेताओं के बताए जा रहे थे, लेकिन इनकी पहचान जानने के लिए गहन जांच की आवश्यकता थी। यह जांच कभी नहीं हुई। मेरी सिफारिश पर, डीआईजी अमोद कंठ ने अमेरिका और ब्रिटेन में राजनेताओं और नौकरशाहों से संबंधित विदेशी धन की जांच करवाई। जांच के नतीजे अभी तक मेरे हाथ नहीं लगे थे, लेकिन मुझे विश्वसनीय सूत्रों से पता चला कि ये भुगतान वास्तव में अवैध स्रोतों से प्राप्त अगणित विदेशी धन के अवैध हस्तांतरण थे, जो महत्वपूर्ण राजनेताओं, नौकरशाहों और अपराधियों को दिए गए थे—अवैध उद्देश्यों के लिए। यह मुद्दा अत्यंत गंभीर था क्योंकि इससे राष्ट्र की एकता और अखंडता को गंभीर खतरा था।

मेरी जांच-पड़ताल और प्रयासों के बावजूद, सच्चाई यह है कि मई 1991 में जब डायरियाँ मिलीं, तब से लेकर जनवरी 1996 तक लगभग पाँच वर्षों तक सीबीआई निष्क्रिय रही और उसने इस मामले में कोई कार्रवाई नहीं की। सीबीआई की इस निष्क्रियता ने विनीत नारायण और अन्य जनहितैषी व्यक्तियों को इस मामले को सर्वोच्च न्यायालय में ले जाने के लिए प्रेरित किया। जनवरी 1996 में, सर्वोच्च न्यायालय के निर्देशानुसार, न्यायाधीश वीपी गुप्ता की अध्यक्षता में एक विशेष हवाला न्यायालय का गठन किया गया। सीबीआई निदेशक विजय रामा राव के नेतृत्व में सीबीआई ने विशेष न्यायालय में जैन बंधुओं और उनके सहयोगियों आडवाणी और शुक्ला के खिलाफ कई आरोपपत्र दायर किए।

तब तक मैं सेवानिवृत्त हो चुका था, लेकिन सेवानिवृत्ति के सुकून का अनुभव नहीं कर पाया क्योंकि जल्द ही मैं यूरिया घोटाले से जुड़े एक और राजनीतिक उथल-पुथल में फंस गया। दशकों से चली आ रही मेरी ईमानदारी और निष्ठा पर भ्रष्ट और अनैतिक पत्रकारों द्वारा हमला किया जा रहा था, या तो मीडिया का ध्यान आकर्षित करने के लिए या राजनीतिक लाभ के लिए, या दोनों

के लिए। इसी दौरान, मैंने भाजपा नेता और वरिष्ठ वकील अरुण जेटली से कानूनी सलाह लेने के लिए मुलाकात की, विशेष रूप से फाइनेंशियल एक्सप्रेस के तत्कालीन संपादक प्रभु चावला के खिलाफ कानूनी कार्रवाई करने के मुद्दे पर। जेटली ने कृपा करके मुझे अपना पूरा दोपहर का समय विशेषज्ञ मार्गदर्शन देने में बिताया, जिसके बाद मैंने चावला को प्रेस काउंसिल ऑफ इंडिया में घसीटा। उन्हें फटकार लगाई गई और फाइनेंशियल एक्सप्रेस को मेरे खिलाफ मानहानिकारक खबर वापस लेनी पड़ी और माफी मांगनी पड़ी।

जेटली के साथ संक्षिप्त लेकिन सार्थक मुलाकात के दौरान उन्होंने मुझे भाजपा के तत्कालीन संकट के बारे में बताया और आडवाणी के खिलाफ सीबीआई द्वारा दायर आरोपपत्र पर मेरी सलाह मांगी। आरोपपत्र में सबूतों की कमी देखकर मैं स्तब्ध रह गया और यह समझ नहीं पाया कि सीबीआई ने इसे दायर करना उचित क्यों समझा। यह भी समझ से परे था कि डायरियों में बीस से अधिक नाम होने के बावजूद आडवाणी का मामला ही अदालत में सबसे पहले क्यों भेजा गया। यह जानते हुए भी कि मामला विफल हो जाएगा, आडवाणी के खिलाफ खाली हाथ कार्रवाई करने का क्या मतलब था?

न्यायशास्त्र में, वैध साक्ष्य वह होता है जो अकाट्य हो। यदि साक्ष्य में जरा सा भी संदेह हो, तो दोष सिद्ध होने तक निर्दोष माने जाने वाले आरोपी को ही लाभ मिलेगा। वर्तमान मामले में, केवल एक ही अकाट्य साक्ष्य था—जैन बंधुओं द्वारा लिखी गई हस्तलिखित डायरियाँ और उनके द्वारा रखे गए पन्ने। डायरियों की सामग्री से कुछ भी सिद्ध नहीं हुआ, बल्कि केवल भ्रष्टाचार के कृत्यों की ओर इशारा हुआ। इनकी जाँच की जानी थी और अन्य तथ्यों, गवाहों के बयानों और स्वीकार्य अकाट्य साक्ष्यों के आधार पर इनकी पुष्टि की जानी थी। हवाला लेन-देन के अलावा, डायरियों के आधार पर आयकर अधिनियम और एफईआरए के तहत जैन बंधुओं के विरुद्ध जाँच होनी चाहिए थी। इन स्पष्ट और वर्तमान कानूनी रूप से मजबूत रास्तों का अनुसरण करने के बजाय, सीबीआई ने डायरियों के आधार पर आडवाणी के विरुद्ध आरोपपत्र दायर किया, जिनकी सामग्री सिद्ध नहीं हुई थी। यह जाँच के विरुद्ध आत्मघाती कदम था। यह निर्णय किसने लिया? इसके पीछे क्या सिद्धांत था?

1993 में एस.के. दत्ता के बाद वी. रामा राव ने सीबीआई निदेशक का पदभार संभाला। सबसे पहले उन्होंने मुझे जांच से हटा दिया। फिर उन्होंने मेरे सहयोगी कंठ को भी हटा दिया, जो मेरे आदेश पर विदेशों में जांच कर रहा था। उनसे पहले, डायरियों की सत्यता की जांच को सीबीआई निदेशक विजय करण ने संभवतः प्रधानमंत्री चंद्र शेखर के निर्देशों पर रोक दिया था और दबा दिया था। कुछ ऐसे भुगतान प्रविष्टियां दर्ज की गई थीं जिनसे संदेह पैदा हुआ कि वी. कृष्णमूर्ति (जिनके बारे में मुझे एक और विवरण देना है) ने हवाला का पैसा लिया था। सीबीआई निदेशक दत्ता ने मामले को फिर से शुरू किया और मार्च 1993 में जांच मुझे वापस सौंप दी, लेकिन वी. रामा राव के पदभार संभालने के बाद उन्होंने मामले को पूरी तरह से खत्म कर दिया। जैन हवाला डायरी मामले को उनके कार्यकाल में लगभग पूरी तरह से नष्ट कर दिया गया।

अप्रैल 1997 में आडवाणी और अन्य को बरी करने वाले दिल्ली उच्च न्यायालय के न्यायाधीश ने भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 34 के तहत डायरी को साक्ष्य के रूप में स्वीकार्यता के प्रश्नों

पर विचार किया। फैसले में कहा गया कि:
याचिकाकर्ताओं के खिलाफ डायरियों के अलावा कोई सबूत नहीं है।
नोटबुक और कथित भुगतानों से संबंधित अलग से लिखा गया पत्र...
इस मामले में पैसों के संबंध में कोई सबूत नहीं है।
जिन्हें जैनियों द्वारा कथित तौर पर प्राप्त किया गया था
भुगतान। भुगतान के संबंध में कोई सबूत नहीं है।
राशि। फिर इस तथ्य को साबित करने के लिए कोई सबूत नहीं है।
प्रथम दृष्टया याचिकाकर्ताओं, अर्थात् श्री एल.के. आडवाणी और श्री वी.सी.
शुक्ला ने कथित रकम को मकसद या इनाम के तौर पर स्वीकार किया।
किसी व्यक्ति के प्रति पक्षपात या असावधानी दिखाना और उक्त पक्षपात
और सार्वजनिक कर्तव्यों के निर्वहन में उन्होंने अनुचित व्यवहार किया।
अधिनियम की धारा 7 के अनुसार परिकल्पित सेवक।
अदालत का फैसला सही था। कोई सबूत मौजूद नहीं था क्योंकि डायरियों की कभी जांच ही नहीं हुई। डायरियों और नोटबुकों को सबूत के तौर पर अमान्य घोषित किए जाने के बाद, जैन हवाला डायरी मामला पूरी तरह से दब गया, और विभिन्न दलों के कई भ्रष्ट राजनेता और नौकरशाह बेदाग बच निकले।

Krishnamurthy Saga: 1992

आप चाहे कितने भी ऊंचे मुकाम पर हों, कानून आपसे ऊपर है।
17वीं शताब्दी में थॉमस फुलर द्वारा कहे गए इस प्रसिद्ध कथन का प्रयोग प्रसिद्ध ब्रिटिश वकील और न्यायाधीश लॉर्ड डेनिंग ने जुलाई 1977 में किया था। कई भारतीय न्यायाधीशों ने भी अपने निर्णयों में इस वाक्य का प्रयोग किया है, जिसमें विनीत नारायण मामले का निर्णय भी शामिल है, ताकि भारत के संविधान में निहित समानता के सिद्धांतों के महत्व पर जोर दिया जा सके।
नब्बे के दशक के आरंभ में, देश के राजनीतिक परिदृश्य में वी. कृष्णमूर्ति जितने प्रभावशाली व्यक्ति शायद ही कोई रहे हों। उन्होंने तमिलनाडु के तंजावुर में एक युवा लड़के के रूप में अपने जीवन की यात्रा शुरू की, उनके पास इंजीनियरिंग का डिप्लोमा मात्र था, और फिर 1955 में केंद्रीय इंजीनियरिंग सेवाओं में शामिल होने के लिए प्रतियोगी परीक्षाओं को उत्तीर्ण किया। 1985 तक, प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने उन्हें स्टील अथॉरिटी ऑफ इंडिया लिमिटेड (एसएआईएल) का प्रमुख नियुक्त किया, जिसे सभी ने सार्वजनिक क्षेत्र की इकाई का सम्राट माना और 1986 में उन्हें पद्म भूषण से सम्मानित किया गया। इससे पहले, वे भारत हेवी इलेक्ट्रिकल लिमिटेड (बीएचईएल) के महाप्रबंधक थे, जहां 1977 में सीबीआई के साथ उनका विवाद हुआ, लेकिन वे किसी तरह बच निकले और पदोन्नति पाते हुए लगातार आगे बढ़ते रहे। उन्होंने कार निर्माता मारुति उद्योग लिमिटेड का भी नेतृत्व किया और केंद्र सरकार में महत्वपूर्ण पदों पर रहे। धन हर दाग को छुपा देता है और भ्रष्ट व्यक्ति को हर पाप से मुक्त कर देता है, और कृष्णमूर्ति इस कहावत का एक जीता-जागता उदाहरण हैं।
1992 में, वे योजना आयोग के सदस्य और राज्य मंत्री थे। यही वह वर्ष था जब भारत के सबसे

बड़े वित्तीय घोटालों में से एक - प्रतिभूति घोटाला - सुर्खियों में आया। अनियमितताओं के कारण ₹4,000 करोड़ की संपत्ति का नुकसान हुआ और भारतीय बैंकिंग प्रणाली, बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज (बीएसई) के कामकाज और देश के वित्तीय बाजारों के नियामक, भारतीय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड (एसईबीआई) की खामियों का पर्दाफाश हुआ। इस घोटाले के पीछे हर्षद मेहता का हाथ था। इस घोटाले ने उद्योगपतियों से लेकर राजनेताओं और बैंक अधिकारियों तक, जिनमें भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) के गवर्नर एस वेंकिटारमनन भी शामिल थे, कई बड़े नामों की प्रतिष्ठा को कलंकित कर दिया और उन्हें भ्रष्टाचार के दलदल में धकेल दिया।

ऐसा ही एक नाम कृष्णमूर्ति का था, जिन पर बिग बुल मेहता से बड़ी रकम मांगने और प्राप्त करने का आरोप था। मेहता की कंपनी, ग्रोमोर रिसर्च एंड एसेट मैनेजमेंट के खातों से पता चला कि केजे इन्वेस्टमेंट्स नामक कंपनी के पक्ष में ₹32.74 लाख का चेक जारी किया गया था, जिसमें कृष्णमूर्ति का बेटा प्रमोटर और निदेशक था।

उस समय मैं सीबीआई का संयुक्त निदेशक था और भ्रष्टाचार-विरोधी विभाग का नेतृत्व कर रहा था। निदेशक दत्ता ने मुझे प्रतिभूति घोटाले में प्रमुख व्यक्ति के रूप में उभरे कृष्णमूर्ति के खिलाफ जांच का नेतृत्व करने के लिए कहा था। प्रधानमंत्री कार्यालय ने सीबीआई को आरोपों की जांच करने की अनुमति दे दी थी, जो काफी आश्चर्यजनक था क्योंकि कृष्णमूर्ति की शक्ति के बारे में सभी जानते थे। शायद प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव सचमुच एक छोटे दिल के व्यक्ति थे, जैसा कि एक प्रसिद्ध पत्रकार ने उन्हें एक बार कहा था, 'एक प्रथम श्रेणी का प्रधानमंत्री और एक तृतीय श्रेणी का व्यक्ति', या हो सकता है कि प्रधानमंत्री कार्यालय ईमानदार और निष्पक्ष दिखने के लिए उत्सुक था। असली कारण जल्द ही पता चल जाएगा।

मुझे पता था कि कृष्णमूर्ति कितने शक्तिशाली और प्रभावशाली व्यक्ति थे। इसलिए, मैंने जांच शुरू करने के लिए कड़ा कदम उठाया और चार दिनों की गुप्त पूछताछ के बाद मुझे यकीन हो गया कि आरोपों की गहन जांच की आवश्यकता है और मैंने उन्हें पुलिस हिरासत में लेने का आदेश दिया। 7 अगस्त 1992 को, एक अभूतपूर्व कदम उठाते हुए, सीबीआई ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया।

कृष्णमूर्ति और उनके बेटे। 27 आम तौर पर सीबीआई सरकारी अधिकारियों को गिरफ्तार नहीं करती, लेकिन यह एक असामान्य स्थिति थी। मैंने उनके आवास और देश के विभिन्न हिस्सों में स्थित उनके कार्यालयों पर तलाशी अभियान चलाने का आदेश दिया। उनके बड़े बेटे और उनसे पहले ही पूछताछ की जा चुकी थी, और अमेरिका में रहने वाले उनके छोटे बेटे के लिए गिरफ्तारी वारंट जारी करने की व्यवस्था की जा रही थी। कृष्णमूर्ति का सामना मेहता से हो रहा था, जो मेरे नेतृत्व में चल रही एक अन्य जांच के सिलसिले में पुलिस हिरासत में थे। अब तक जांच दल को कोई बाधा नहीं आई थी क्योंकि हमारी हर कार्रवाई को उस निचली अदालत की मंजूरी मिली हुई थी जिसके अधिकार क्षेत्र में जांच की जा रही थी।

हालांकि, जल्द ही हमारे सामने मुश्किलें खड़ी होने लगीं, क्योंकि जांच विदेश में करानी पड़ी, खासकर स्विस बैंक में उनकी संपत्ति के संबंध में। मैंने कहीं और सिंगल डायरेक्टिव की तकनीकी बारीकियों के बारे में लिखा है, जो एक प्रक्रियात्मक आवश्यकता है और अक्सर भ्रष्टाचार और

प्रभाव का हथियार बन जाती है। यहां एक और प्रक्रियात्मक हथियार था जो कभी-कभी भ्रष्ट लोगों की मदद करता था - 'लेटर रोगेटरी'। लेटर रोगेटरी एक औपचारिक अनुरोध है जो भारतीय अदालत से किसी विदेशी अदालत को उस देश में न्यायिक सहायता मांगने के लिए प्राप्त किया जाता है, खासकर सबूत इकट्ठा करने की प्रक्रिया में।

कृष्णमूर्ति के स्विस बैंक में जमा बेहिसाब धन की जांच के लिए सीबीआई ने भारत की सक्षम अदालत से संपर्क कर स्विट्जरलैंड की सक्षम अदालत में जाकर कृष्णमूर्ति के बैंक विवरण प्राप्त करने की अनुमति मांगी थी। लेकिन अदालत द्वारा अनुमति पत्र जारी करने से पहले, उसे केंद्र सरकार से यह आश्वासन चाहिए था कि एजेंसी द्वारा प्राप्त और एकत्रित की गई जानकारी का उपयोग उस जांच के अलावा किसी अन्य उद्देश्य के लिए नहीं किया जाएगा जिसके लिए यह पत्र जारी किया जा रहा है। सीबीआई और सक्षम अदालत को अनुमति पत्र जारी होने से पहले केंद्र सरकार की अनुमति का इंतजार करना होगा। अनुमति पत्र के बिना, स्विस अदालत में संपर्क नहीं किया जा सकता था और जांच रुक जाएगी।

हमने आश्वासन के लिए प्रधानमंत्री कार्यालय से संपर्क किया। मुझे पूरा भरोसा था कि आश्वासन प्राप्त करना कोई समस्या नहीं होगी। प्रधानमंत्री कार्यालय ने हमें कृष्णमूर्ति की जांच करने की अनुमति पहले ही दे दी थी; वे हमें पूरी प्रक्रिया करने से क्यों रोकेंगे? अनुरोध मिलते ही प्रधानमंत्री कार्यालय के संयुक्त सचिव निशिकांत सिन्हा ने मुझे फोन किया। उनका व्यवहार सौहार्दपूर्ण और विनम्र था और उन्होंने मुझे आश्वासन दिया कि अदालत द्वारा लेटर रोगेटरी जारी करने से पहले आवश्यक प्रधानमंत्री कार्यालय का आश्वासन जल्द ही सीबीआई को उपलब्ध करा दिया जाएगा।

आश्वासन मिले बिना एक सप्ताह बीत गया। लेकिन मुझे सिन्हा का फिर फोन आया और इस बार उनकी आवाज़ में चिंता झलक रही थी। पता चला कि प्रधानमंत्री के सचिव ए.एन. वर्मा आश्वासन देने को लेकर पूरी तरह आश्वस्त नहीं थे और उन्होंने मुझसे स्पष्टीकरण मांगा था। मैंने सिन्हा द्वारा मांगे गए सभी स्पष्टीकरण दे दिए, लेकिन उसके बाद भी कई हफ्तों तक आश्वासन नहीं दिया गया। इस बीच, अदालत हमें प्रधानमंत्री कार्यालय का आश्वासन प्रस्तुत करने के लिए तारीखें देती रही, और हर बार सीबीआई को माफ़ी मांगते हुए अदालत के सामने वही जानकारी देनी पड़ती थी कि सरकार के आश्वासन का इंतज़ार है।

कानून के छात्र और वकील जो नियमित रूप से अदालतों में जाते हैं, उन्हें कई ऐसे मामले देखने को मिलते हैं जहाँ न्यायाधीश सीबीआई प्रतिनिधियों को प्रक्रियात्मक देरी, अपने कर्तव्यों का पालन न करने, समय पर दस्तावेज़ और सबूत जमा न करने आदि के लिए फटकार लगाते हैं। ऐसे मौकों पर, सीबीआई अधिकारी और कानूनी प्रतिनिधि अदालत में सिर झुकाए खड़े होकर सारी फटकार सुनते हैं। बहुत कम लोग जानते होंगे कि इनमें से कई स्थितियों में, हमारे मुंह बंद कर दिए जाते हैं और हमारे हाथ बांध दिए जाते हैं, किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा जिसका नाम हम नहीं ले सकते, जो जांच में बाधा डालने और सीबीआई को अदालत के सामने बदनाम करने की कोशिश कर रहा होता है।

प्रधानमंत्री कार्यालय का आश्वासन, जो बोफोर्स मामले की जांच में मात्र डेढ़ दिन में पूरा हो गया था, एक साधारण प्रक्रियात्मक औपचारिकता मात्र थी, लेकिन कृष्णमूर्ति के खिलाफ जांच में

सीबीआई को यह आश्वासन कभी नहीं दिया गया। मुझे सिन्हा का एक और फोन आया जिसमें वह गुस्से में और परेशान लग रहे थे। बहुत चिल्लाहट हो रही थी। उन्होंने मुझे डराने और मुझे बैकफुट पर धकेलने की कोशिश की, यह आरोप लगाते हुए कि मैंने अनुरोध पत्र प्राप्त करने के लिए उचित प्रक्रियाओं का पालन नहीं किया था। यह उनके पहले फोन कॉल से बिलकुल उलट था, जब वह गर्मजोशी और सौहार्दपूर्ण थे और उन्होंने मुझे आश्वासन दिया था कि प्रधानमंत्री कार्यालय सीबीआई के साथ सहयोग करेगा और उसकी मदद करेगा। अब वह सीबीआई पर उंगली उठा रहे थे और सवाल कर रहे थे कि हमने केंद्र सरकार की अनुमति लिए बिना अनुरोध पत्र के लिए अदालत का रुख क्यों किया। स्पष्ट रूप से, ऊपर से दबाव था। मैंने उनसे तर्क करने और अपने कुछ तर्क रखने की कोशिश की, लेकिन जितना अधिक मैंने समझाने की कोशिश की, उतना ही वह गुस्से में और परेशान होते चले गए।

मैंने कहा, 'ऐसा कोई कानून नहीं है जो हमें पहले केंद्र सरकार से संपर्क करने के लिए बाध्य करे। हमने अदालत के आदेश पर सरकार से संपर्क किया था।'

'हम कानून बदलेंगे,' वह गुस्से में चिल्लाया। मानो भ्रष्टाचार की जांच से पहले सीबीआई को सरकार की अनुमति लेने का कोई अधिकार न होने के 'बेतुके विचार' ने उसे बुरी तरह झकझोर दिया हो। 'हे भगवान, क्या ऐसा कोई अधिकार ही नहीं है? अगर सीबीआई सरकार के पीछे पड़ जाए तो क्या होगा? अगर वे प्रधानमंत्री कार्यालय के पीछे पड़ जाएं तो क्या होगा?' उस समय यही बात उसे सबसे ज्यादा परेशान कर रही थी।

मैंने उन्हें यह भी बताया कि हमने बोफोर्स मामले और निज़ाम के खजाने से गायब हुए सोने के मोहरों के मामले में भी ठीक यही प्रक्रिया अपनाई थी। यह सुनिश्चित करने के लिए कि सरकार इस जांच की विफलता का दोष सीबीआई पर न मढ़े, मैंने सुझाव दिया कि सरकार हमें लिखित में दे कि वे आश्वासन देने से इनकार कर रहे हैं, ताकि हम अदालत को सूचित कर सकें कि केंद्र सरकार सहयोग करने को तैयार नहीं है। जाहिर है, मेरी उम्मीदें कुछ ज़्यादा ही थीं। हमें अनुरोध पत्र देने से इनकार कर दिया गया, लेकिन कोई स्पष्टीकरण दर्ज नहीं किया गया। इससे पहले, सरकार ने हमें जापान के सुमितोमो समूह के साथ कृष्णमूर्ति के संबंधों की जांच करने की अनुमति भी नहीं दी थी। इससे हमारे सामने सबसे बड़ा सवाल खड़ा हो गया - आखिर केंद्र सरकार ने कृष्णमूर्ति के खिलाफ सीबीआई की जांच में सहयोग करने से इनकार क्यों किया, जबकि सरकार ने खुद ही जांच की शुरुआती अनुमति दी थी?

जाहिर तौर पर, उनका (यानी सत्ता में बैठे लोगों का) इरादा सिर्फ कृष्णमूर्ति को बेनकाब करना था, न कि उन तमाम लोगों को जिनका उनके अपराधों में निहित स्वार्थ हो सकता था। मेरी कठोर रणनीति ने उन लोगों को डरा दिया था जिन्हें कृष्णमूर्ति को बचाने के लिए चालें चलनी पड़ीं, ताकि दूसरों को भी बचाया जा सके। हर्षद मेहता से रिश्वत लेने और स्विस बैंक में अवैध रूप से जमा किए गए धन के आरोप में उनके खिलाफ दोनों जांचें अंततः बंद कर दी गईं।

हर कहानी के दो पहलू होते हैं; कृष्णमूर्ति के मुंह से यही कहानी सुनना दिलचस्प होगा। सौभाग्य से, उन्होंने अपनी आत्मकथा प्रकाशित कर दी है जिसमें उन्होंने इस घटना को राजनीतिक प्रतिशोध और अपने बेदाग करियर पर एक दुखद धब्बा बताया है। उन्होंने अपने बेटे के बैंक खातों

में ट्रांसफर की गई रकम को 'ऋण' और 'सामान्य व्यापारिक लेन-देन' बताया और सीबीआई जांच के बारे में कहा, 'मुझे पूरा यकीन है कि मेरे खिलाफ जांच या तो किसी स्वार्थ के लिए की गई थी।'

प्रतिभूति घोटाले से ध्यान भटकाने के लिए या रिपोर्ट को दबाने के लिए, इस डर से कि मेरे विचार विनिवेश के दौरान अपनाई गई प्रक्रिया की निंदा करते।

उन्होंने अपनी पुस्तक में कई पृष्ठ इस बात को विस्तार से बताने के लिए समर्पित किए हैं कि प्रधानमंत्री राव और उनके सहयोगी विभिन्न कारणों से, विशेष रूप से बिजली उत्पादन में निजीकरण के संबंध में सरकार की आलोचनाओं और सुझावों के कारण, उनसे कभी नाराज़ नहीं रहे। कृष्णमूर्ति ने लिखा, 'जब भी मैंने सुझाव दिए, वित्त मंत्रालय में मनमोहन सिंह ने उनका स्वागत किया, लेकिन प्रधानमंत्री कार्यालय में वे अटक गए।' उन्होंने प्रधानमंत्री कार्यालय में नीतिगत मामलों पर उनसे विश्वास न करने की सामान्य प्रवृत्ति का वर्णन किया। 'नरसिम्हा राव और उनके सहयोगियों के लिए आखिरी झटका सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के शेयरों के समूहीकरण और विनिवेश के तरीके और मारुति को जापान की सुजुकी मोटर कंपनी को अपारदर्शी तरीके से हस्तांतरित करने की मेरी आलोचना थी (एट द हेल्म: ए मेमोइर, पृष्ठ 252)।' इस जिज्ञासु प्रश्न का उत्तर कि प्रधानमंत्री कार्यालय ने कृष्णमूर्ति के खिलाफ जांच शुरू करने की अनुमति क्यों दी, लेकिन सीबीआई को कभी भी कानूनी नोटिस क्यों नहीं दिया, शायद इन्हीं पंक्तियों में छिपा है।

प्रधानमंत्री कार्यालय के अधिकारी सिन्हा के मन में यह 'भयानक' विचार घर कर गया कि सीबीआई सरकार की अनुमति के बिना भ्रष्टाचार की जांच कर सकती है। इसके तुरंत बाद ही उन्होंने घबराकर कानून बदलने और यह सुनिश्चित करने का फैसला किया कि सीबीआई को उच्च अधिकारियों की अनुमति के बिना कोई भी कदम उठाने की इजाजत न हो। कार्मिक मंत्रालय ने इस संबंध में एक विस्तृत दिशानिर्देश जारी किया, जिसमें कहा गया कि भारत सरकार की पूर्व स्वीकृति के बिना किसी भी अदालत में लेटर रोगेटरी जारी करने की अर्जी नहीं दी जा सकती। आज भी कानून वही है; भारत के बाहर आपराधिक जांच करने के मामले में सीबीआई के हाथ बंधे हुए हैं।

कृष्णमूर्ति एक तरह से महापुरुष थे। प्रतिभूति घोटाला बहुत बड़ा था और जैन हवाला डायरीज़ में उजागर हुए अपराध भी उतने ही भयावह थे। मुझे इस बात का गहरा दुख है कि इन सभी मामलों में, और सीबीआई के पास अभी भी कई और मामले दफ़न हैं, कानून ऊंचे और शक्तिशाली लोगों तक नहीं पहुंच सका। शक्तिशाली नौकरशाह और राजनीतिक नेता बिना किसी सजा के बच निकले, जिससे हमारे देश की अर्थव्यवस्था, अखंडता, भूमि और शांति को गहरा आघात पहुंचा है। राजनेताओं, नौकरशाहों और अपराधियों के बीच एक घिनौना गठजोड़ है और देश भ्रष्टाचार के उस काले गड्ढे में धंसता जा रहा है जो इस गठजोड़ की जड़ में है।

आपातकाल और शाह आयोग की रिपोर्ट: 1977

क्या सीबीआई देश को भ्रष्टाचार के इस दुष्चक्र से बचा सकती है? जी हां, यह संभव है। कैसे?

सीबीआई अपने क्षेत्र की सर्वश्रेष्ठ संस्थाओं में से एक के रूप में शुरू हुई थी और वर्षों से अपने

काम के लिए अपार सम्मान अर्जित कर चुकी है। हालांकि, सीबीआई को अधिक स्वायत्तता, संरचनात्मक सुदृढ़ीकरण और नियंत्रण एवं संतुलन की आवश्यकता है ताकि सत्ताधारी सरकारें इसके काम में हस्तक्षेप न कर सकें। नागरिकों के रूप में, हमें सीबीआई के लिए स्वायत्तता की मांग जारी रखनी होगी ताकि सीबीआई के सबसे बुरे दिन—प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी द्वारा लागू किए गए उन्नीस महीने के आपातकाल—फिर कभी न दोहराए जाएं।

आपातकाल हमारी लोकतंत्र पर एक कलंक था। शाह आयोग की रिपोर्ट, जो तीन भागों में विभाजित है और 530 पृष्ठों में फैले 26 अध्यायों से युक्त है, ने जून 1975 से जनवरी 1977 के बीच केंद्र सरकार द्वारा किए गए प्रत्येक अत्याचार का विस्तृत दस्तावेजीकरण किया है। इसकी विशालता इस बात का प्रमाण है कि तत्कालीन सरकार सत्ता की अपनी अमानवीय लालसा में कितनी नीचता तक गिर चुकी थी।

विशेष रूप से, आयोग ने खुलासा किया कि इंदिरा गांधी ने विपक्षी सदस्यों के खिलाफ सीबीआई, खुफिया ब्यूरो (आईबी) और अनुसंधान एवं विश्लेषण विंग (आरएडब्ल्यू) का किस प्रकार खुलेआम दुरुपयोग किया। सीबीआई निदेशक देवेंद्र सेन ने शाह आयोग के समक्ष स्वीकार किया कि एजेंसी वस्तुतः इंदिरा गांधी के अतिरिक्त निजी सचिव आर.के. धवन के मौखिक आदेशों पर ही कार्य करती थी। रिपोर्ट में सीबीआई द्वारा सात कपड़ा निरीक्षकों और चार सीमा शुल्क अधिकारियों की गिरफ्तारी और पूछताछ का उल्लेख किया गया, जिसे सत्ता के दुरुपयोग का मामला पाया गया। आयोग ने माना कि रिकॉर्ड में मौजूद सामग्री से यह साबित नहीं होता कि वे अधिकारी भ्रष्ट थे या उन्होंने ऐसा कुछ किया था जिसे दूर से भी अनुचित या गलत माना जा सके। बल्कि, उन्होंने अपने कर्तव्यों का निर्वाह साहसपूर्वक किया और ऐसा करके उन्होंने इंदिरा इंटरनेशनल नामक कंपनी के मालिकों को नाराज कर दिया, जिसमें उनके बेटे संजय गांधी की सास अंतेश्वर आनंद का वित्तीय हित था। इसी कारण संजय गांधी ने ऐसी स्थिति उत्पन्न की जिसमें इन ईमानदार अधिकारियों को निशाना बनाया गया।

रिपोर्ट में उल्लिखित एक अन्य मामला भारी उद्योग मंत्रालय के चार वरिष्ठ अधिकारियों के खिलाफ सीबीआई द्वारा इंदिरा गांधी के इशारे पर दर्ज की गई झूठी आपराधिक शिकायतों का था। ये अधिकारी थे: आर कृष्णस्वामी, उप सचिव, भारी उद्योग; ए एस राजन, विकास अधिकारी, तकनीकी विकास महानिदेशालय (डीजीटीडी); एलआर कैवले, मुख्य विपणन प्रबंधक, पूर्व में परियोजना एवं उपकरण निगम (पीईसी); और पीएस भटनागर, उप विपणन प्रबंधक, पीईसी। ये अधिकारी मारुति उद्योग लिमिटेड से कुछ जानकारी प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे, जिससे कथित तौर पर इंदिरा गांधी नाराज हो गईं। गहन जांच के बाद, शाह आयोग ने पाया कि धवन के माध्यम से कुछ सांसदों द्वारा सीबीआई निदेशक को भेजी गई एक अस्पष्ट शिकायत के अलावा, चारों अधिकारियों में से किसी के भी खिलाफ कोई भी आपत्तिजनक सबूत नहीं था। सीबीआई के दुरुपयोग पर गंभीर चिंता व्यक्त करते हुए आयोग ने कहा:

सीबीआई ने अपने शस्त्रागार में मौजूद कार्रवाइयों की पूरी श्रृंखला को अंजाम दिया, अंत में
जिसमें कुछ भी आपत्तिजनक नहीं मिला, लेकिन सीबीआई की जांच प्रक्रिया में
इन अधिकारियों को सामाजिक, शारीरिक और नैतिक रूप से नष्ट कर दिया। अब जबकि हम

मैंने देखा है कि सीबीआई के शीर्ष पर बैठे व्यक्ति के पास भी इतनी वरिष्ठता होने के बावजूद, वह व्यक्ति भी ऐसा ही करता है।

और वह अपनी स्थिति के बल पर स्वयं को और अपने संगठन को उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उपयोग में ला सकता है।

कानूनी, संवैधानिक और नैतिक पहलुओं के अलावा, यह सुनिश्चित किया जाना चाहिए

कि भविष्य में ऐसा कोई भी व्यक्ति या संगठन सक्षम न हो सके

सत्ता के हाथों में एक असहाय और बिना सवाल किए काम करने वाला उपकरण बना दिया जाना

यानी। आयोग का मानना है कि कुछ सुरक्षा उपायों की आवश्यकता है।

सीबीआई निदेशक को एक स्वतंत्र निकाय के प्रति जवाबदेह बनाकर यह प्रावधान किया गया है।

निकाय...या निदेशक को विधिवत रूप से स्वतंत्र घोषित किया जा सकता है।

शाह आयोग की रिपोर्ट सीबीआई के लिए बेहद आलोचनात्मक थी और इस नुकसान को कम करने के लिए, अस्सी के दशक की शुरुआत में सीबीआई को नया रूप देने और उसे उन्नत तकनीक और ज्ञान प्रदान करने के लिए कई कदम उठाए गए। आपातकाल के तुरंत बाद, सरकार ने सीबीआई के वित्तीय आवंटन में वृद्धि की, दिल्ली के केंद्रीय सरकारी कार्यालय परिसर में एक नया भवन बनाया गया ताकि ब्यूरो की सभी आठ शाखाओं को एक ही छत के नीचे लाया जा सके, सीबीआई के कर्मियों की संख्या में काफी वृद्धि हुई और विशेष जांच प्रकोष्ठ नामक एक नई शाखा की स्थापना की गई। अपनी स्थापना के बाद से, सीबीआई ने आधुनिक, वैज्ञानिक अपराध जांच तकनीकों को तेजी से अपनाया है जो अमेरिका के संघीय जांच ब्यूरो या ब्रिटेन के स्कॉटलैंड यार्ड के समकक्ष थीं।

फिर भी, आपातकाल के बाद के ये सभी घटनाक्रम सीबीआई की वास्तविक समस्या से ध्यान भटकाने के चतुर हथकंडे मात्र थे—वह समस्या जिसका समाधान शाह आयोग की रिपोर्ट में दिए गए दो सरल सुझावों से संभव है। चालीस वर्ष बीत जाने के बाद भी, उन सुरक्षा उपायों को अभी तक लागू नहीं किया गया है, क्योंकि कोई भी सरकार सीबीआई पर अपनी पकड़ ढीली नहीं करना चाहती।

सैयद मोदी हत्याकांड: 1988

आपातकाल, शाह आयोग की रिपोर्ट, क्षतिपूर्ति, पुनर्निर्माण— इन सब के बावजूद, सीबीआई की जांच में निर्भीक राजनीतिक हस्तक्षेप जारी रहा। सच्चाई यही है कि जिनके हाथों में अपार शक्ति है, वे अपने स्वार्थी भ्रष्ट हितों की रक्षा के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं।

अगर कानून पसंद नहीं है, तो हम उसे बदल देंगे। अगर जज पसंद नहीं हैं, तो हम उनका तबादला कर देंगे। अगर सरकारी वकील पसंद नहीं हैं, तो हम उन्हें बर्खास्त कर देंगे। अगर एक को बर्खास्त करना संभव नहीं है, तो सबको बर्खास्त कर देंगे। हम किसी भी हद तक जा सकते हैं।

अपने करियर के अधिकांश समय में, मैंने सीबीआई अधिकारी के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वाह किया, इस बात से पूरी तरह अवगत रहते हुए कि मेरी मेहनत राजनीतिक हस्तक्षेप से व्यर्थ हो सकती है, और कई बार ऐसा ही हुआ। असफलताओं से व्यक्तिगत रूप से प्रभावित नहीं होना चाहिए, लेकिन सैयद मोदी हत्याकांड में हुआ हस्तक्षेप मुझे विशेष रूप से परेशान करता है। यह

एक सीधा-सादा मामला था, और जांच उच्चतम स्तर की थी; फिर भी सत्ता में बैठे लोगों ने इसे दबाने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ी और तीनों मुख्य आरोपी बरी हो गए।

भारत अपने एक महान बैडमिंटन खिलाड़ी सैयद मोदी को भूल चुका है, जो आठ बार के राष्ट्रीय बैडमिंटन चैंपियन (1980-87), 1982 के राष्ट्रमंडल खेलों में पुरुष वर्ग के विजेता और तीन अंतरराष्ट्रीय खिताबों - ऑस्ट्रियन इंटरनेशनल (1983 और 1984) और यूएसएसआर इंटरनेशनल (1985) के विजेता रहे। हम उन्हें इसलिए याद नहीं करते क्योंकि एक धूर्त राजनेता ने उनकी जिंदगी को अचानक छीन लिया, जो नहीं चाहता था कि आने वाली पीढ़ियां उनके बारे में जानें। क्योंकि अगर आप किसी राष्ट्रीय नायक के बारे में जानते हैं, तो आप पूछेंगे कि उनकी हत्या किसने की? रिकॉर्ड के अनुसार, उनकी हत्या के लिए चार लोगों को दोषी ठहराया गया था। लेकिन वे सुपारी लेकर हत्या करने वाले थे। उन्हें किसने काम पर रखा और क्यों? अपराध घटित होने के 40 साल बाद भी देश को आज तक इसका जवाब नहीं पता।

18 जुलाई 1988 को, शाम लगभग 7.45 बजे मोदी अपने नियमित बैडमिंटन अभ्यास के बाद केडी बाबू स्टेडियम से बाहर निकले और जैसे ही वे स्कूटर पर सवार होकर निकले, दो हमलावरों ने उन पर .38 बोर की रिवॉल्वर से पांच गोलियां दागीं। दो अन्य लोग पास ही एक मारुति वैन के साथ उनका इंतजार कर रहे थे ताकि उन्हें भागने में मदद कर सकें। सौभाग्य से, किसी ने वैन का नंबर HYG 1959 नोट कर लिया, जिसकी आसानी से खोज कर ली गई और उसके मालिक का पता लगाया गया। वैन की जांच से अखिलेश सिंह तक बात पहुंची, जो एक बड़े जमींदार का बेटा, राजनेता और एक गैंगस्टर था, जिस पर अपने गिरोह के सदस्यों के साथ मिलकर कई आपराधिक मामले दर्ज थे, जिनमें से चार इस मामले में आरोपी थे।

अखिलेश सिंह, संजय सिंह के मित्र थे, जो उत्तर प्रदेश सरकार में प्रभावशाली विभागों के प्रभारी एक अनुभवी राजनीतिज्ञ थे—वे परिवहन, वन, पशुपालन और खेल विभागों में मंत्री रह चुके थे। सिंह कांग्रेस नेता और नेहरू-गांधी परिवार के मित्र के रूप में राजनीतिक रूप से प्रसिद्ध हुए थे, लेकिन हत्या के समय उन्होंने पार्टी से नाता तोड़ लिया था और जन मोर्चा में शामिल हो गए थे। शायद अखिलेश सिंह के इतने अच्छे मित्र नहीं थे, क्योंकि उन्होंने सीबीआई को दिए अपने बयान में सैयद मोदी की हत्या के पीछे का मुख्य साजिशकर्ता होने का आरोप अखिलेश सिंह पर तुरंत लगा दिया था। उन्होंने मृतक मोदी की पत्नी अमीता मोदी (नी कुलकर्णी) और संजय सिंह के साथ उनके प्रेम संबंध को भी अपराध का मकसद बताया था।

सैयद और अमीता, दोनों बैडमिंटन खिलाड़ी थे, जिनकी मुलाकात 1978 में बीजिंग में तीसरे अंतर्राष्ट्रीय एशियाई आमंत्रण चैम्पियनशिप के दौरान हुई थी। जल्द ही दोनों को एक-दूसरे से प्यार हो गया और 1982 में उनकी सगाई हो गई। संजय सिंह की मुलाकात अमीता से 1983 में हुई, दोनों की शादी से एक साल पहले। तीनों दोस्त बन गए। सैयद और अमीता की शादी, जो व्यावहारिक रूप से अस्तित्वहीन थी क्योंकि किसी ने भी इसे होते हुए नहीं देखा था (जो एक राष्ट्रीय खेल जोड़े के लिए अजीब बात थी), जाहिर तौर पर संजय सिंह के घर पर विशेष विवाह अधिनियम के तहत संपन्न हुई थी। इसमें सैयद या अमीता के परिवार, उनके दोस्त या मीडिया का कोई भी सदस्य शामिल नहीं हुआ था। संजय सिंह और उनके जनसंपर्क अधिकारी आलम के

अलावा कोई गवाह नहीं था। पूरी संभावना है कि यह शादी दंपति द्वारा गढ़ी गई एक मनगढ़ंत कहानी थी।

हालांकि, शादी हुई थी या नहीं, यह यहाँ मायने नहीं रखता। बाहरी दुनिया के लिए, सैयद और अमीता एक दंपत्ति थे और संजय उनका एक आम दोस्त था। अमीता की सैयद से शादी से पहले ही संजय और अमीता के बीच प्रेम संबंध पनप रहा था; जो दिन-ब-दिन और भी गहरा होता गया। संजय सिंह की गिरफ्तारी और उसके घर पर तलाशी अभियान के बाद सीबीआई द्वारा जब्त किए गए अमीता, संजय और सैयद के प्रेम पत्र सब कुछ बयां करते हैं। गहरा प्रेम, अपार यौन आकर्षण, तड़प, दिल टूटना और सैयद को रास्ते से हटाने की साजिश। संजय का दोस्त अखिलेश एक गिरोह का सरगना था। उसके गिरोह के चार सदस्यों - अमर बहादुर सिंह, भगवती सिंह उर्फ पप्पू, बलाई सिंह और जितेंद्र सिंह उर्फ टिंकू - को हत्या के लिए किराए पर लिया गया था। अमर और भगवती ने गोलियां चलाईं, जबकि बलाई और जितेंद्र मारुति वैन में इंतजार कर रहे थे।

आइए इसमें उस समय की राजनीति को भी जोड़ लें। हत्या के समय केंद्र में कांग्रेस की सरकार थी और राजीव गांधी प्रधानमंत्री थे। संजय सिंह ने हाल ही में कांग्रेस से नाता तोड़कर जन मोर्चा ज्वाइन किया था। शुरुआत में इस अपराध को आतंकवाद का कृत्य माना गया और चूंकि मैं उस समय सीबीआई के आतंकवादी प्रकोष्ठ का प्रमुख था, इसलिए सीबीआई के अतिरिक्त निदेशक अरुण मुखर्जी ने यह मामला मुझे सौंपा। उन्होंने यह सुनिश्चित करने की चेतावनी दी कि जांच ऐसी न लगे जैसे यह राजीव गांधी का साथ छोड़ने वाले व्यक्ति के खिलाफ राजनीतिक प्रतिशोध का मामला हो। मुखर्जी संजय सिंह की गिरफ्तारी और उनके आवास की तलाशी की अनुमति देने में अनिच्छुक थे, लेकिन बाद में जांच में शामिल हुए मोहन जी कात्रे ने मेरी प्रस्तावित कार्ययोजना से सहमति जताई, जिसे कुशलतापूर्वक अंजाम दिया गया और संजय सिंह की गिरफ्तारी हुई, जिससे सभी दलों के राजनीतिक नेता बेहद नाराज हो गए। जन मोर्चा के कार्यकर्ताओं ने लखनऊ में सीबीआई कार्यालय के बाहर विरोध प्रदर्शन किया और जांच का विरोध करते हुए नारे लगाए। कांग्रेस नेता पी चिदंबरम भी बेहद नाराज थे और उन्हें शांत करने के लिए मुखर्जी ने मुझे जांच से हटाने का प्रस्ताव दिया। बाद में पता चला कि चिदंबरम मुझे हटाना नहीं चाहते थे, लेकिन मुझसे नाखुश थे, जिसका पता मुझे कई साल बाद चला जब गृह मंत्री के रूप में उन्होंने दिल्ली के उपराज्यपाल तेजेंद्र खन्ना को मेरी सेवाएं समाप्त करने की सलाह दी।

जांच जारी रही और मामला अदालत में पहुंचा। दिसंबर 1989 में केंद्र में राजनीतिक परिवर्तन हुआ जब संजय सिंह के करीबी रिश्तेदार वीपी सिंह प्रधानमंत्री बने। जल्द ही, सीबीआई पर मामले की धीमी गति से जांच करने का भारी दबाव पड़ने लगा। सबसे पहले मुखर्जी को पद से हटाया गया, जो केवल तीन महीने से निदेशक थे; उनके लिए गृह मंत्रालय में एक नया पद सृजित किया गया। उनकी जगह सीबीआई के अनुभवी राजेंद्र शेखर को नियुक्त किया गया। इसके तुरंत बाद, उन पर और मेरे वरिष्ठ अधिकारी, अतिरिक्त निदेशक एसके दत्ता पर, विशेष अभियोजक सामंत के नेतृत्व वाली अभियोजन टीम को भंग करने का दबाव डाला गया ताकि मुकदमा विफल हो जाए। लेकिन शेखर टस से मस नहीं हुए; उन्होंने इस्तीफा देने की धमकी दी। दत्ता और उन्होंने

वीपी सिंह के संयुक्त सचिव भूरे लाल से मुलाकात की और दृढ़ता से कहा कि विशेष अभियोजक सामंत अपने पद पर बने रहेंगे और यदि इस पर सहमति नहीं बनी तो वे अपने पद से मुक्त होना चाहेंगे। इस प्रकार, वीपी सिंह सरकार ने अकल्पनीय कदम उठाया।

अगर कानून पसंद नहीं है, तो उसे बदल देंगे। अगर अभियोक्ता पसंद नहीं है, तो उसे बर्खास्त कर देंगे।

एक व्यापक आदेश में, पिछली सरकार द्वारा नियुक्त सभी—जी हाँ, सभी—विशेष अभियोजकों को बर्खास्त कर दिया गया, जिनमें सामंत भी शामिल थे। विशेष अभियोजकों की नियुक्ति सरकारी विभागों द्वारा विधि मंत्रालय की सहमति से अदालतों में उनके मामलों का प्रतिनिधित्व करने के लिए की जाती है। विशेष अभियोजक या लोक अभियोजक की नियुक्ति कोई मज़ाक नहीं है। यह एक महत्वपूर्ण निर्णय है जिसे कई कारकों पर गंभीरता से विचार करने के बाद लिया जाना चाहिए। भारत के विधि आयोग ने लोक अभियोजकों की नियुक्ति पर एक पूरी रिपोर्ट (जुलाई 2006 में जारी 197वीं रिपोर्ट) समर्पित की है। लेकिन संस्थागत प्रक्रिया की घोर अवहेलना करते हुए, सरकार ने एक छोटी सी समस्या को सुलझाने के लिए पूरे तंत्र को ही नष्ट कर दिया। आदेश की तारीख से, प्रत्येक विभाग अदालतों में प्रतिनिधित्वहीन हो गया क्योंकि उनके पास मामलों की पैरवी करने के लिए कोई अभियोजक नहीं था।

इस फैसले से सैयद मोदी हत्याकांड ही नहीं, बल्कि अन्य सभी कानून प्रवर्तन एजेंसियों और विभागों द्वारा चलाए जा रहे सभी मामलों की सुनवाई कई वर्षों तक टलने की संभावना थी। लेकिन मैंने ऐसा होने नहीं दिया।

सभी विशेष अभियोजकों की बर्खास्तगी में अनियमितताओं के बारे में मीडिया को जानकारी दी गई, जिससे हंगामा मच गया। आलोचना से विचलित होकर, वीपी सिंह ने पहले तो बर्खास्तगी में अपनी किसी भी भूमिका से इनकार किया और फिर तुरंत वरिष्ठ आपराधिक वकील को बहाल कर दिया, जो टूटे मनोबल के साथ मामले में वापस तो आए। ट्रायल जज का तबादला कर दिया गया। एक नए जज को सीबीआई जज के रूप में नियुक्त किया गया। उन्हें यह आश्वासन दिया गया कि मुकदमा चलाने के लिए आदेश देने के बाद उन्हें उच्च न्यायालय में पद दिया जाएगा। नए जज को पूरी बहस दोबारा सुननी पड़ी और सामंत को मामले की पूरी प्रक्रिया फिर से देखनी पड़ी। अंत में, अदालत ने फैसला सुनाया कि संजय सिंह और अमीता किसी भी आरोप में दोषी नहीं हैं, लेकिन शेष पांचों - चार भाड़े के हत्यारों और उनके सरगना अखिलेश - को दोषी पाया और उन पर मुकदमा चलाया जाना चाहिए।

इसके बाद सभी आरोपियों ने अपील के कानूनी रास्ते अपनाते हुए सर्वोच्च न्यायालय तक याचिका दायर की। सीबीआई ने भी इस मामले को सर्वोच्च न्यायालय तक पहुंचाया, जहां यह माना गया कि संजय सिंह और अमीता के खिलाफ साजिश साबित करने के लिए पर्याप्त सबूत नहीं थे। सीबीआई द्वारा पेश किए गए सबूत केवल साजिश के संदेह की ओर इशारा करते थे, लेकिन इसे निर्णायक रूप से साबित नहीं करते थे। अखिलेश और उनके चार साथियों पर मुकदमा चला, लेकिन इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने उन्हें आरोपों से बरी कर दिया। 2004 में, सर्वोच्च न्यायालय ने भी उच्च न्यायालय के फैसले से सहमति जताई। न्यायालय ने कहा कि जब मुख्य

आरोपी संजय सिंह को ही उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय दोनों ने साजिश के आरोपों से बरी कर दिया है, तो अखिलेश को ऐसी साजिश का दोषी नहीं ठहराया जा सकता जो कभी साबित ही नहीं हुई।

बाकी चार लोगों के खिलाफ मुकदमे चले, लेकिन उनमें से दो को पैरोल पर जेल से रिहा होने के बाद मार दिया गया। 2009 में, अपराध घटित होने के 21 साल बाद, मूल सात आरोपियों में से केवल भगवती सिंह को ही बरी किया जा सका।

दोषी ठहराया गया और आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई।29 संजय सिंह ने अपनी पहली पत्नी गरिमा, जो वीपी सिंह की भतीजी थीं, को आपसी सहमति से तलाक दे दिया। आरोप है कि यह तलाक अदालत में एक फर्जी व्यक्ति को पेश करके प्राप्त किया गया था। संजय सिंह ने सैयद मोदी की विधवा अमीता से शादी कर ली। उनकी पहली पत्नी ने धोखाधड़ी से प्राप्त तलाक को चुनौती देने के लिए कानूनी रास्ता अपनाया और उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय दोनों से इसे अमान्य घोषित करवा दिया। वर्तमान स्थिति यह है कि संजय सिंह तकनीकी रूप से बहुविवाह संबंध में हैं, उनकी पहली पत्नी और बच्चे पैतृक संपत्ति के उत्तराधिकार को लेकर कड़वी लड़ाई लड़ रहे हैं, और जब मैंने यह किताब लिखना शुरू किया था, तब वे राज्यसभा सदस्य के रूप में कांग्रेस में वापस आ गए थे। लेकिन किताब पूरी होने से पहले ही संजय सिंह ने कांग्रेस छोड़ दी और अपने परिवार के साथ भाजपा में शामिल हो गए।

पत्नी अमीता। 30

हत्या के आरोपी से राज्यसभा सांसद तक—यही थी संजय सिंह की यात्रा, जो वीपी सिंह के रिश्तेदार और नेहरू-गांधी परिवार के मित्र थे, और अब भाजपा के नेता हैं।

यूरिया घोटाला: 1995

प्रत्येक महान सौभाग्य के पीछे अपराध होता है।

~ होनोरे दे बाल्ज़ाक

सीबीआई में अपने तैंतीस वर्षों के लगभग पूरे कार्यकाल के दौरान, मेरी छवि एक सख्त जांचकर्ता के रूप में बनी रही, जिसे राजनेताओं द्वारा काबू में करना मुश्किल था। समय के साथ मैंने जांच के तौर-तरीके सीख लिए और ऊंचे ओहदे वाले लोगों के पीछे पड़ गया, अपनी चतुराई भरी रणनीतियों का इस्तेमाल करते हुए और इस प्रक्रिया में सत्ताधारियों को नाराज़ करते हुए। अपने आखिरी साल में, मैं सीबीआई और सरकार के शीर्ष अधिकारियों के बीच लगभग अछूत बन गया था। मेरे खिलाफ निराधार जांच शुरू की गई और मेरे जयपुर स्थित घर को सीबीआई को केंद्रीय लोक निर्माण विभाग (सीपीडब्ल्यूडी) द्वारा आधिकारिक रूप से निर्धारित दर से कम किराए पर देने के मामले में मेरे खिलाफ बदले की भावना से जांच की गई। मुझे पदोन्नति से वंचित कर दिया गया; मुझे सरकारी प्रायोजन से भी वंचित कर दिया गया, जिससे मैं इंटरपोल में एक असाइनमेंट पर शामिल हो सकता था—यह सब सीबीआई निदेशक विजय रामा राव के कार्यकाल के दौरान हुआ।

वही रामा राव जिन्होंने शुरू में उर्वरक सचिव इंद्रजीत चौधरी के उस पत्र पर ध्यान नहीं दिया था जिसमें सार्वजनिक क्षेत्र की इकाई नेशनल फर्टिलाइजर्स लिमिटेड (एनएफएल) द्वारा यूरिया

उर्वरक के कुछ आयात की जांच करने का अनुरोध किया गया था।

मैंने एनएफएल में तीन महीने काम किया, जो कि सेवानिवृत्ति के बाद भी रामा राव के लिए मुश्किलें खड़ी करता रहा। अवधि छोटी इसलिए थी क्योंकि उच्च अधिकारियों ने मुझे आगे काम जारी रखने नहीं दिया। चौधरी मेरे विश्वविद्यालय के दिनों के दोस्त थे। सीबीआई को पत्र लिखने के अलावा, उन्होंने मुझसे एनएफएल में सलाहकार के रूप में शामिल होने और मामले की जांच करने का अनुरोध भी किया था। प्रधानमंत्री पी.वी. नरसिम्हा राव के बेटे और भतीजे समेत अन्य लोगों से जुड़े 133 करोड़ रुपये के यूरिया घोटाले का खुलासा आंशिक रूप से मेरी स्वतंत्र जांच और तीखे सवालों के कारण हुआ था। इसी बात से वे नाखुश थे और इसी वजह से एनएफएल में मेरा सलाहकार कार्यकाल बहुत कम समय का रहा।

मैं इसे विस्तार से समझाता हूँ।

भारत यूरिया का विश्व का दूसरा सबसे बड़ा उपभोक्ता है। 2016-2017 में, देश ने लगभग 32 मिलियन टन यूरिया की खपत की, जिसमें से 24.5 मिलियन टन स्वदेशी रूप से उत्पादित किया गया और शेष आयात किया गया। सरकार बीमार संयंत्रों को पुनर्जीवित करके, बंद इकाइयों को पुनः शुरू करके और नए प्रोजेक्ट शुरू करके घरेलू उत्पादन बढ़ाने के उद्देश्य से प्रयासरत है।

2022 तक आयात पूरी तरह बंद करना। 31 घरेलू स्तर पर यूरिया का उत्पादन हमारे किसानों को अंतरराष्ट्रीय मूल्य में उतार-चढ़ाव से बचाएगा, सरकारी सब्सिडी को सीमित करेगा और ग्रामीण अर्थव्यवस्था को विकसित करने में मदद करेगा। इसके अलावा, मुझे व्यक्तिगत रूप से लगता है कि 1995 के विनाशकारी यूरिया घोटाले के बाद, भारत को कभी भी यूरिया का आयात करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। ज़रा सोचिए, एनएफएल ने विदेश से 2,00,000 टन यूरिया खरीदा, और भारत केवल दो तुर्की नागरिकों को जेल में लाने में कामयाब रहा, वह भी उस घोटाले के 23 साल बाद।

सितंबर 1995 में, 20 लाख टन यूरिया की आपूर्ति के लिए एक वैश्विक निविदा जारी की गई। जल्द ही, नेशनल फाइनेंशियल कंपनी (एनएफएल) (सी.के. रामकृष्णन, सीएमडी) और दिलबाग सिंह कंवर, कार्यकारी निदेशक (विपणन) द्वारा प्रतिनिधित्व) और तुर्की स्थित कंपनी कार्सन दानिस्मानलिक टूरिज्म सनाई टियाक्रेट लिमिटेड के बीच यूरिया की आपूर्ति के लिए एक समझौता हुआ। कार्सन के बारे में कोई पृष्ठभूमि जांच किए बिना और अनुबंध की शर्तों की उचित कानूनी जांच किए बिना ही जल्दबाजी में अनुबंध पर हस्ताक्षर कर दिए गए। कार्सन का भारत को यूरिया की आपूर्ति का कोई पूर्व इतिहास नहीं था। वास्तव में, बाद में ईडी द्वारा कंपनी के पूर्ववृत्त की जांच के दौरान, अंकारा स्थित भारतीय दूतावास ने पाया कि 'कार्सन अंकारा के एक तृतीय श्रेणी के होटल के आधे कमरे में स्थित थी। पूर्ववृत्त अज्ञात।' कंपनी 1988 में पंजीकृत हुई थी, और अपने आठ वर्षों के कारोबार में इसने अपना आधिकारिक पता तीन बार बदला था। जब तक ईडी ने जांच शुरू की, तब तक पता चला कि कंपनी का कोई प्रतिनिधि नहीं था क्योंकि टुनके अलंकुस और सिहान करांसी दोनों ही अलग हो गए थे और उन्होंने नई कंपनियां शुरू कर दी थीं।

अनुबंध पर हस्ताक्षर करने के बाद, एनएफएल ने अंकारा के पामुक बैंक और स्विट्जरलैंड के इंडो-स्वेज बैंक में दो किस्तों में 38 मिलियन डॉलर (133 करोड़ रुपये) का भुगतान किया। बैंक

जाहिर तौर पर पैसा स्वीकार करने में आनाकानी कर रहे थे, लेकिन एनएफएल ने यह सुनिश्चित करने के लिए असाधारण उत्साह दिखाया कि मार्च 1996 तक पूरी रकम विदेश भेज दी जाए, और भारत को एक चम्मच भी यूरिया न भेजा जाए। विवरण इतने सरल हैं कि यह असंभव लगता है कि किसी को इस तरह से धोखा दिया जा सकता है। यह अप्रैल फूल के उस मज़ाक की तरह है जो हमें गुस्सा दिलाने के बजाय हंसाता है। कल्पना कीजिए कि आपको खाना पकाने के तेल की तत्काल आवश्यकता है, लेकिन आप बाहर नहीं जा सकते; इसलिए, आपका दोस्त इसे बाजार से लाने की पेशकश करता है। आप दोस्त को नकद देते हैं, जो इसे लेकर जाता है लेकिन कभी वापस नहीं आता। आपको नहीं पता कि वह कहाँ गई, पैसा कहाँ गया, और ज़ाहिर है, आपके पास खाना पकाने का तेल नहीं है। यह हास्यास्पद लगता, अगर यह सच न होता, और वह भी करदाताओं के 133 करोड़ रुपये की राशि से जुड़ा हुआ। समझौते के समय से लेकर फरवरी 1996 तक, कार्सन के प्रतिनिधि लगातार पत्र लिखकर यह भ्रम पैदा करते रहे कि कहीं 20 लाख टन यूरिया का उत्पादन हो रहा है जिसे जहाजों पर लादकर भारत भेजा जाएगा। लेकिन फिर कहीं न कहीं कुछ न कुछ घटना घट जाती, कभी हिमपात होता तो कभी चेचन संघर्ष। इसलिए कार्सन कहते कि आपूर्ति के लिए थोड़ा और समय चाहिए। यह एक नियमित प्रक्रिया बन गई और यह स्पष्ट हो गया कि आपूर्ति के लिए कोई यूरिया उपलब्ध ही नहीं था।

इंद्रजीत चौधरी ने 1 फरवरी 1996 को उर्वरक सचिव का पदभार संभाला। मार्च तक उन्हें पता चल गया था कि एनएफएल में कोई अपराध हुआ है। अप्रैल के आखिरी सप्ताह में उन्होंने सीबीआई निदेशक रामाराव को पत्र लिखकर सीबीआई से इस लेन-देन की जांच करने का अनुरोध किया और मुझे सलाहकार के रूप में नियुक्त किया। वे चाहते थे कि मैं विशेष रूप से इस सौदे की जांच करूं और यदि संभव हो तो एनएफएल की मौजूदा स्थिति को सुधारने का प्रयास करूं। मैं 30 अप्रैल 1996 को सीबीआई से सेवानिवृत्त हुआ और एक सप्ताह के भीतर ही एनएफएल में शामिल हो गया।

कई सवाल उठे। एनएफएल ने बिना सावधानी बरते एक संदिग्ध कंपनी के साथ सौदा कैसे कर लिया? भारतीय रिज़र्व बैंक की अनुमति के बिना इतनी बड़ी रकम का हस्तांतरण कैसे संभव हुआ? आरबीआई और स्टेट बैंक ऑफ इंडिया ने इन खातों में पैसा ट्रांसफर करने से पहले क्या उचित जांच-पड़ताल की? करसन के भारतीय एजेंट एम. सांबासिवा राव का पिछला रिकॉर्ड क्या था? इस घोटाले की योजना किसने बनाई? रिश्वत कितनी थी? पैसे का स्रोत क्या था और यह किसके पास जा रहा था?

मैंने चौधरी को सलाह दी कि एनएफएल को खुद को धोखाधड़ी का शिकार बताना चाहिए, करसन के साथ मिलीभगत करने वाले अंदरूनी लोगों और अपराध में शामिल निजी व्यक्तियों के नाम उजागर करने चाहिए, और सीबीआई से अनुरोध करना चाहिए कि उसकी शिकायत को एफआईआर के रूप में दर्ज किया जाए। यह 19 मई 1996 को किया गया। 23 मई तक, मुझे अपने सूत्रों से पता चला कि नरसिम्हा राव द्वारा नियुक्त रामा राव इस मामले को आगे बढ़ाने के मूड में नहीं थे, क्योंकि जैसे-जैसे मामले की तह तक जाया जाएगा, नरसिम्हा राव के बेटे, भतीजे और उनके सहयोगियों का नाम भी इसमें फंस जाएगा।

हिम्मत न हारते हुए, मैंने मई 1996 में वाजपेयी सरकार के 13 दिनों के कार्यकाल के दौरान मिले एक अवसर का लाभ उठाने का फैसला किया। मैंने अपने मित्र, पत्रकार टीवीआर शेनॉय को, जो भाजपा के थिंक-टैंक, इंडिया फर्स्ट फाउंडेशन के सदस्य थे और भाजपा नेताओं के करीबी थे, नाश्ते पर बुलाया और उन्हें घोटाले के बारे में जानकारी दी और मेरे पास मौजूद दस्तावेज़ दिखाए। नाश्ते के बाद वे सीधे एलके आडवाणी से मिलने गए और उन्हें मेरी बात बताई। इसके बाद उन्होंने मेरी और गृह मंत्री मुरली मनोहर जोशी की मुलाकात तय की, जिसमें मैंने एक बार फिर इस गंभीर अपराध के बारे में अपने विचार दोहराए। अगले ही दिन चौधरी को प्रधानमंत्री कार्यालय से यूरिया मामले की फाइल प्रधानमंत्री के अवलोकन के लिए भेजने का निर्देश मिला और एक-दो दिन के भीतर ही प्रधानमंत्री कार्यालय ने सीबीआई को मामला दर्ज करने का आदेश दिया। एनएफएल द्वारा दर्ज की गई पिछली एफआईआर और मेरी जांच रिपोर्ट सहित संबंधित रिपोर्टों पर विचार नहीं किया गया और मेरे द्वारा तय की गई जांच की दिशा को भ्रमित करने के लिए एक नया मामला दर्ज किया गया।

वाजपेयी सरकार गिर गई और कांग्रेस समर्थित सरकार सत्ता में आई, जिसके प्रधानमंत्री एच.डी. देवेगौड़ा थे। मंत्रालय में मेरे दोस्तों ने जल्द ही मुझे बताया कि बड़े अधिकारी आपस में चर्चा कर रहे थे कि आखिर मुझे एनएफएल द्वारा सलाहकार के रूप में नियुक्त क्यों किया गया? हम उसे कैसे हटा सकते हैं? हालांकि मेरा अनुबंध छह महीने का था, मैंने तीन महीने के भीतर ही स्वेच्छा से एनएफएल छोड़ दिया।

तेईस साल बाद, जुलाई 2018 में, सीबीआई की एक विशेष अदालत ने भ्रष्टाचार के मामलों में सबसे भारी जुर्माने में से एक, 100 करोड़ रुपये का जुर्माना, दो तुर्की नागरिकों, टुनके अलंकुस और सिहान करांसी पर लगाया, जो दोनों कार्सन कंपनी के पूर्व अधिकारी थे, और उन्हें छह साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई। अदालत ने तुर्की कंपनी के भारतीय एजेंट एम. सांबासिवा राव, रामकृष्णन, कंवर, प्रकाश चंद्र यादव (पूर्व केंद्रीय उर्वरक मंत्री रामलखन सिंह यादव के बेटे) और अंत में, नरसिम्हा राव के रिश्तेदार संजीव राव को भी दोषी ठहराया।

एक धनी पूर्व प्रधानमंत्री के रिश्तेदार और पूर्व मंत्री के बेटे को दोषी ठहराया जाना एक उल्लेखनीय घटनाक्रम था। अगर जांच और मुकदमे उसी दिशा में आगे बढ़ते, जिस दिशा में मैंने उन्हें निर्देशित करने का प्रयास किया था, तो 'अंतिम लेकिन महत्वपूर्ण' नाम पूर्व प्रधानमंत्री नरसिम्हा राव के सबसे छोटे बेटे प्रभाकर राव का हो सकता था। मैंने उस पर संदेह क्यों किया?

मेरे मन में उठे कई सवालों में से सबसे अहम सवाल बाल्ज़ाक के कथन पर मेरी अपनी राय थी। एनएफएल में किसी ने तो अपराध किया ही था; यह तो ज़ाहिर था। लेकिन एनएफएल यूरिया क्यों खरीद रहा था? 1994 तक, भारत यूरिया की खरीद एकमात्र आयात एजेंसी, भारत सरकार के उद्यम, मेटल्स एंड मिनरल्स ट्रेडिंग कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया (एमएमटीसी) के माध्यम से करता था। वे इस क्षेत्र के विशेषज्ञ थे और व्यापार की बारीकियों से भली-भांति परिचित थे। दूसरी ओर, एनएफएल यूरिया का उत्पादन करता था और उसे आयात का कोई अनुभव नहीं था। तो, इस बार किसने तय किया कि एनएफएल खुद ही इस प्रक्रिया की शुरुआत करेगा? मुझे लगता है कि यही इस घोटाले की जड़ थी।

अचानक एनएफएल के खिलाड़ी सहायक भूमिका में आ गए और कई राव मुख्य किरदारों के रूप में उभरने लगे: बापतला कृषि महाविद्यालय से कृषि में बीएससी की डिग्री प्राप्त एम. सांबासिवा राव, जिन्होंने बिक्री प्रतिनिधि के रूप में अपना करियर शुरू किया था, करसन के भारतीय एजेंट थे। वे अपने कॉलेज के मित्र संजीव राव के माध्यम से प्रधानमंत्री कार्यालय के करीबी थे, जिनका विवाह नरसिम्हा राव की भतीजी से हुआ था। सांबासिवा ने स्वीकार किया कि एसबीआई द्वारा करसन को हस्तांतरित धन का एक हिस्सा हैदराबाद के दो व्यापारियों, धर्मेश यादव और राजिंदर बब्बानी को वापस भेजा गया था। दोनों दुबई स्थित फर्म, एडिबल फूडस्टफ से जुड़े थे। दुबई से एम. सांबासिवा राव के बैंक ऑफ बड़ौदा खाते में ₹30 लाख के बराबर राशि हस्तांतरित की गई। ₹200,000 की एक और राशि न्यूयॉर्क स्थित प्रकाश यादव की फर्म, आरजीईए ब्रदर्स को भेजी गई। और ₹40 लाख की रिश्वत का बड़ा हिस्सा संजीव राव और प्रभाकर राव को मिला।
संजीव राव ने यह भी दावा किया कि पूरी कार्रवाई प्रभाकर राव द्वारा योजनाबद्ध की गई थी।
बाल्ज़ाक के इस कथन पर मेरी एक और राय यह है कि 'हर घोटाले के पीछे एक नीतिगत निर्णय होता है।' यूरिया के आयात के लिए एकमात्र मध्यस्थ के रूप में एमएमटीसी की एकाधिकारवादी पकड़ को तोड़ने के नीतिगत निर्णय ने इस घोटाले की नींव रखी। और यह नीतिगत निर्णय प्रधानमंत्री कार्यालय के आशीर्वाद के बिना संभव नहीं था। बाकी की कड़ी राव परिवार थे, और बाकी सब कुछ अपने आप ठीक हो गया।

5

सीबीआई के पास दिल और आत्मा है

जून 2018 में एक बहुप्रतीक्षित फिल्म 'संजू' रिलीज़ हुई। यह फिल्म अभिनेता संजय दत्त के जीवन पर आधारित एक बायोपिक है, जो नरगिस और सुनील दत्त के पुत्र हैं, दोनों ही बीते जमाने के दिग्गज अभिनेता थे। राजकुमार हिरानी द्वारा निर्देशित और विधु विनोद चोपड़ा और हिरानी द्वारा सह-निर्मित, इसी टीम ने 'पीके' और 'थ्री इडियट्स' जैसी कई हिट फिल्में दी हैं। फिल्म को जबरदस्त समीक्षाएं मिलीं और रिलीज़ के तीन दिनों के भीतर ही इसने 100 करोड़ की कमाई का आंकड़ा पार कर लिया। हालांकि, इसने एक राजनीतिक बहस को भी जन्म दिया और इस सवाल पर लोगों की राय बंट गई कि क्या हिरानी ने दत्त के अतीत को छिपाने की कोशिश की थी। मैंने जो फिल्म के पोस्टर देखे और उसके बाद जो बहस छिड़ी, उससे मुझे दत्त के जीवन में अपनी भूमिका याद आती है, जिसके बिना शायद उनका जीवन, चाहे अच्छा हो या बुरा, वैसा नहीं होता।

संजय दत्त मामला: 1993

मार्च 1993 में हुए सिलसिलेवार मुंबई बम धमाकों के बाद संजय दत्त को आतंकवाद को बढ़ावा देने के आरोप में गिरफ्तार किया गया और जांच का जिम्मा मेरे पास आया। उस समय मैं सीबीआई का संयुक्त निदेशक था और केंद्रीय भ्रष्टाचार-विरोधी इकाइयों के साथ-साथ पश्चिम बंगाल, बिहार और उड़ीसा में तीन राज्य स्तरीय भ्रष्टाचार-विरोधी शाखाओं का नेतृत्व कर रहा था। मेरे द्वारा लिए गए अनुकूल रुख के कारण संजय को जमानत पर रिहा कर दिया गया। अन्यथा, आतंकवादी और विघटनकारी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम (TADA) की कठोरता को देखते हुए, संभवतः वह मुकदमे की सुनवाई तक जेल में ही रहता, जिसे पूरा होने में लगभग 20 साल लगे।

संजय दत्त को जमानत मिली या नहीं, या उन्हें टीएडीए और शस्त्र अधिनियम, 1959 दोनों के तहत दोषी ठहराया गया, इससे मुझे क्या फर्क पड़ता है? आखिर उन्होंने अपराध तो किया ही था। इसका जवाब जानने के लिए हमें उनके जीवन में झांकना होगा।

फिल्म इंडस्ट्री में संजय दत्त को 'संजू बाबा' के नाम से जाना जाता था। वे एक बिगड़े हुए, दबंग और फिर भी बेहद संवेदनशील बच्चे थे, जिन्होंने अपनी पहली फिल्म के प्रीमियर से ठीक तीन दिन पहले कैंसर से अपनी माँ को खो दिया था, जिससे वे गहरे सदमे में थे। नरगिस दत्त संजय की फिल्म के प्रीमियर में शामिल होना चाहती थीं, चाहे उन्हें स्ट्रेचर पर ही क्यों न ले जाना पड़े। लेकिन वे वहाँ नहीं आ सकीं, और इस भयानक क्षति ने उन्हें नशे की ओर धकेल दिया और वे एक पथभ्रष्ट और पथभ्रष्ट रास्ते पर चल पड़े। हालाँकि वे एक समृद्ध परिवार में पैदा हुए थे, संजय का जीवन आसान नहीं था। जहाँ उनके पिता सुनील दत्त, जो कांग्रेस पार्टी के वफादार थे, ने उनके जीवन में राजनीतिक रंग भर दिया, वहीं उनकी माँ नरगिस ने उन्हें एक मुस्लिम पहचान दी, एक ऐसा बोझ जिसे दिसंबर 1992 में बाबरी मस्जिद विध्वंस के बाद के अत्यधिक ध्रुवीकृत माहौल में ढोना उनके लिए कठिन हो गया।

नब्बे के दशक तक, ऐसी अफवाहें थीं कि मुंबई के अंडरवर्ल्ड में उनके दोस्त थे। बताया जाता है कि फिल्म 'यलगार' की शूटिंग के दौरान अभिनेता फिरोज खान ने ही उन्हें अंडरवर्ल्ड डॉन दाऊद इब्राहिम से मिलवाया था।

दुबई जो अक्टूबर 1992 में भारत में रिलीज़ हुई।32 अयोध्या में बाबरी मस्जिद को धुर दक्षिणपंथी हिंदू नेताओं के नेतृत्व में लाखों कारसेवकों द्वारा हिंसक रूप से ध्वस्त किए जाने के बाद, जनवरी 1993 में मुंबई में सांप्रदायिक दंगों की एक श्रृंखला हुई।

सुनील दत्त, जो उस समय सांसद थे, तुरंत सबसे बुरी तरह प्रभावित झुग्गी-झोपड़ियों में गए जहाँ मुसलमान सबसे ज्यादा प्रभावित हुए थे, और संजय दत्त भी उनके साथ गए। पिता और पुत्र ने सांप्रदायिक हिंसा के पीड़ितों को राहत के रूप में भोजन उपलब्ध कराया।

कट्टरपंथी हिंदू समूहों ने जल्द ही उन्हें मुस्लिम समर्थक करार दिया। बॉलीवुड के 33 अभिनेता राजनीति से दूर रहने के लिए जाने जाते हैं; उन्हें आमतौर पर राजनीतिक विचार रखने के लिए बहुत व्यस्त या सतही समझा जाता है, और वे सभी बहुत संयमित बयान देते हैं और विवादास्पद मुद्दों पर चुप्पी साधे रहते हैं। लेकिन संजय दत्त न तो कोई धूर्त राजनेता थे और न ही कोई दिखावटी बॉलीवुड स्टार; वे बस एक सहज व्यक्ति थे जो अपने पिता के साथ रहना चाहते थे और मानवता की मदद करना चाहते थे। जल्द ही दत्त परिवार, जिसमें संजय की बहनें भी शामिल थीं, को मुसलमानों की मदद करने के लिए कट्टरपंथी हिंदू समूहों से धमकी भरे फोन आने लगे। फोन में संजय को बताया गया कि 'उन्हें' पता है कि उनकी भतीजी कहाँ पढ़ रही है, और उनके दैनिक जीवन की बारीकियाँ भी पता हैं। संजय डर गए। उन्होंने अपने परिवार की सुरक्षा के लिए एक AK-56 बंदूक खरीदी।

इस एक घटना ने उसकी किस्मत बदल दी।

भारत की आर्थिक राजधानी में माहौल तनावपूर्ण था। सांप्रदायिक हिंसा के शिकार निर्दोष मुसलमानों की मदद करने की इच्छा रखने वाले लोग भी असुरक्षित महसूस कर रहे थे। संजय दत्त को आशंका थी कि कोई भीड़ उनके घर तक आ सकती है और उनके परिवार पर हमला कर सकती है।

एक दशक बाद, 2002 में गुजरात में हुए मुस्लिम विरोधी दंगों के दौरान, पूर्व कांग्रेस सांसद एहसान जाफरी ने महिलाओं और बच्चों सहित कई मुसलमानों को अपने घर में शरण दी, जिसके बाद एक भीड़ उनके घर में घुस गई और उन्हें तथा कई अन्य लोगों को मार डाला। इस भयावह घटना को गुलबर्ग सोसाइटी नरसंहार के नाम से जाना जाता है, जिसमें अल्पसंख्यक समुदाय के 70 लोगों की हत्या कर दी गई और जाफरी के घर सहित 35 घर जला दिए गए। 1993 में संजय का डर निराधार नहीं था, क्योंकि यह पहली बार नहीं था जब भारत इस तरह के नफरत भरे माहौल में डूबा था।

मार्च 1993 में, जब मुंबई बारह सिलसिलेवार बम धमाकों से तबाह हो गया, जिनमें 257 लोगों की जान चली गई, 700 घायल हुए और कुछ ही घंटों में 32 करोड़ रुपये की संपत्ति नष्ट हो गई, तब संजय दत्त को आतंकवादी करार दिया गया और देशद्रोही बताया गया क्योंकि उनके पास एक AK-56 राइफल थी। अप्रैल 1993 में, उन्हें भारत में तस्करी करके लाई गई राइफल और

अन्य हथियारों और गोला-बारूद को रखने के आरोप में शस्त्र अधिनियम के तहत और आतंकी गतिविधियों को अंजाम देने या उनकी साजिश रचने के आरोप में कठोर TADA के तहत गिरफ्तार किया गया। मुंबई पुलिस द्वारा संजय दत्त को शहर की आर्थर रोड जेल में सौ से अधिक अन्य आपराधिक रिकॉर्ड वाले लोगों के साथ बंद करने के बाद—ये सभी बॉम्बे बम धमाकों के आरोपी थे—पूरा फिल्म उद्योग और देश भर में अभिनेता के अनगिनत प्रशंसक स्तब्ध रह गए।

क्या संजय दत्त, टाडा में परिभाषित किए गए अनुसार, एक शातिर और कट्टर आतंकवादी था? नहीं।

क्या उसने कोई गंभीर अपराध किया? निश्चित रूप से।

टाडा के तहत आतंकवाद के आरोप उन पर साबित नहीं हुए, लेकिन शस्त्र अधिनियम के तहत आरोप वैध थे और मेरा मानना था कि उन पर केवल अवैध रूप से हथियार रखने का मुकदमा चलाया जाना चाहिए। सीबीआई के इस अनुकूल फैसले से संजय दत्त को अक्टूबर 1995 में सर्वोच्च न्यायालय से जमानत मिल गई। 2006 में, उन्हें टाडा के तहत आतंकवाद के आरोपों से बरी कर दिया गया और केवल शस्त्र अधिनियम के तहत दोषी ठहराया गया, जिससे मेरा रुख सही साबित हुआ।

इस सवाल का जवाब देने के लिए कि संजय दत्त को जमानत मिले या न मिले, यह मेरे लिए क्यों मायने रखता था—न्याय के छोटे-छोटे कार्यों का भी व्यापक प्रभाव होता है जो बड़े-बड़े पहाड़ों को हिला सकता है। कानून के शासन को स्थापित करने वाला हर छोटा कार्य व्यापक परिप्रेक्ष्य में और राष्ट्र को महान बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

सीबीआई अधिकारी या कोई भी अन्य जांचकर्ता रोबोट नहीं होता; वह मानवीय भावनाओं से रहित होकर अपना कर्तव्य नहीं निभा सकता। साथ ही, उसे भावनाओं को अपने ऊपर हावी नहीं होने देना चाहिए। संजय दत्त के मामले में, और कई अन्य मामलों में जिनका आज उल्लेख करना आवश्यक है, मैंने न्याय, कानून के शासन और मानव संवेदनशीलता के बीच एक उचित संतुलन बनाने का प्रयास किया। यह संतुलन तब और भी महत्वपूर्ण हो जाता है जब राष्ट्र के हृदय में अति-राष्ट्रवाद और प्रतिशोध की भावना व्याप्त हो और किसी विशेष समुदाय के लोगों को बदनाम करने की होड़ लगी हो। ऐसी भावनाएं पुलिस बलों और राजनेताओं में व्याप्त हैं। हर कोई त्वरित न्याय और कड़ी सजा चाहता है। ऐसे कठिन समय में सीबीआई अधिकारी को शांत, निष्पक्ष और संवेदनशील रहना चाहिए।

मुंबई बम धमाके और उसके बाद हुए दंगे दाऊद का बाबरी मस्जिद विध्वंस का बदला थे। इस अपराध में उसके मुख्य सहयोगी उसका भाई अनीस, साथी टाइगर मेमन और याकूब मेमन थे, साथ ही कई अन्य लोग भी थे जिनके साथ उसके व्यापारिक संबंध थे। उन्हें पाकिस्तान की अंतर-सेवा खुफिया एजेंसी (आईएसआई) का समर्थन प्राप्त था, जिसे उस देश की सेना और सरकार का मौन आशीर्वाद प्राप्त था। मुंबई पुलिस ने मामले की जांच की और आरोपपत्र दाखिल किया, लेकिन अभियोजन के लिए इसे सीबीआई को सौंप दिया गया। हालांकि शुरू में जांच तुरंत सीबीआई को सौंपने का निर्णय लिया गया था, बाद में यह तय किया गया कि मुंबई पुलिस नवंबर 1993 तक आरोपपत्र दाखिल करेगी और उसके बाद सीबीआई मामले की जिम्मेदारी संभालेगी।

4 नवंबर 1993 को, दत्त सहित 189 आरोपियों के खिलाफ 10,000 से अधिक पृष्ठों का प्राथमिक आरोपपत्र दाखिल किया गया, जिसमें उस पर टीएडीए और शस्त्र अधिनियम दोनों के तहत आरोप लगाए गए थे। मेरे नेतृत्व में, सीबीआई ने नए सिरे से जांच की, और गिरफ्तारियां कीं और अभियोजन को आगे बढ़ाया।

1985 का टाडा एक बेहद सख्त कानून था, जिसे मूल रूप से 1984 में पंजाब में सिख अलगाववादी खालिस्तान आंदोलन से निपटने के लिए बनाया गया था। 1985 में डीआईजी (पंजाब सेल) के रूप में मैंने व्यक्तिगत रूप से इस कानून के मसौदे में आंतरिक सुरक्षा मंत्री पी चिदंबरम, गृह सचिव जीसी सोमैया और सूचना सूचना विभाग के निदेशक एमके नारायणन को सुझाव दिए थे। हम नॉर्थ ब्लॉक स्थित मंत्री के कमरे में घंटों 'आतंकवादी' की परिभाषा, आतंकवाद क्या होता है, आतंकवाद की जांच कैसे की जाएगी आदि पर काम करते थे। यह कानून पंजाब में हुए विद्रोह से उत्पन्न विशेष परिस्थिति से निपटने के लिए बनाया गया था, लेकिन जल्द ही इसे पूरे भारत में लागू कर दिया गया, जिसका मुख्य उद्देश्य लूटपाट और हत्या करने में लिप्त हो चुके अलगाववादियों को पकड़ना था। यह भारत का पहला आतंकवाद-विरोधी कानून था। यह 23 मई 1985 को लागू हुआ और 1989, 1991 और 1993 में नवीनीकृत किया गया, 1995 में इसे निष्क्रिय होने दिया गया क्योंकि व्यापक आरोपों के बाद यह अलोकप्रिय हो गया था, जिसमें बताया गया था कि कानून का दुरुपयोग कैसे किया गया था। अधिनियम के तीसरे अनुच्छेद में 'आतंकवाद' की बहुत विस्तृत परिभाषा दी गई है:

जो कोई भी, कानून द्वारा स्थापित सरकार को भयभीत करने के इरादे से, ऐसा करता है।

या जनता में या जनता के किसी वर्ग में आतंक फैलाने के लिए या

जनता के किसी भी वर्ग को अलग-थलग करना या सद्भाव को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करना

लोगों के विभिन्न वर्गों के बीच कोई भी कार्य या चीज़ का उपयोग करके किया जाता है

बम, डायनामाइट या अन्य विस्फोटक पदार्थ या ज्वलनशील पदार्थ

पदार्थ या घातक हथियार या जहर या हानिकारक गैसें या अन्य

रसायनों द्वारा या किसी अन्य पदार्थ (चाहे जैविक हो या अन्य) द्वारा

किसी खतरनाक प्रकृति के कार्य को इस प्रकार से करना जिससे नुकसान हो, या होने की संभावना हो

किसी व्यक्ति या व्यक्तियों की मृत्यु या चोट का कारण बनना, या किसी व्यक्ति या व्यक्तियों की हानि होना, या

संपत्ति को नुकसान पहुंचाना या नष्ट करना या किसी भी आपूर्ति में व्यवधान उत्पन्न करना

समुदाय के जीवन के लिए आवश्यक सेवाओं का हनन करता है, या किसी व्यक्ति को हिरासत में लेता है।

और ऐसे व्यक्ति को जान से मारने या घायल करने की धमकी देता है ताकि उसे विवश किया जा सके।

सरकार या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कोई कार्य करने या न करने का निर्देश देना,

आतंकवादी कृत्य करता है।

हालांकि किसी को आतंकवादी घोषित करना या किसी व्यक्ति को आतंकवादी साबित करना कभी आसान नहीं रहा है, लेकिन कानून स्पष्ट रूप से कहता है कि आतंकवादी वह होता है जो अमानवीय और क्रूर हो। संजय दत्त कई तरह के इंसान हो सकते थे, लेकिन वे आतंकवादी की परिभाषा में फिट नहीं बैठते थे। उभरते अभिनेता और फिल्मी सितारों के बेटे संजय को हथियारों का शौक था। उनके पास लाइसेंसी बंदूकें थीं और वे शिकार अभियानों के दौरान उनका इस्तेमाल करते थे। दिसंबर 1992-जनवरी 1993 के दंगों के बाद, दाऊद ने आईएसआई के इशारे पर अपने मुस्लिम भाइयों को असॉल्ट राइफल और हैंड ग्रेनेड से लैस करना चाहा। दाऊद की डी-कंपनी द्वारा हथियारों और विस्फोटकों की भारत में तस्करी की गई और उन्हें अंडरवर्ल्ड में वितरित किया गया।

संजय को उसके दोस्तों के ज़रिए हथियार मिले थे। उसने एक AK-56 राइफल तब हासिल की, जब उसके बचाव में उसने दावा किया कि उसके परिवार को हिंदू कट्टरपंथियों से धमकियाँ मिल रही थीं। उसे गोला-बारूद अपने दोस्तों समीर हिंगोरा और हनीफ कडावाला की मदद से मिला, जो दोनों फिल्म निर्माता और मैग्नम वीडियोज़ नामक कंपनी में साझेदार थे, जिसके पास उसकी कई फिल्मों के वीडियो अधिकार थे। कडावाला और हिंगोरा दाऊद के भाई अनीस के परिचित थे, जिसने उनका इस्तेमाल अभिनेता को हथियार पहुँचाने के लिए किया। गिरफ्तारी के कुछ साल बाद, कडावाला की एक अन्य गैंगस्टर छोटा राजन के आदमियों ने गोली मारकर हत्या कर दी।

हिंगोरा ने एक छोटी वीडियो लाइब्रेरी के मालिक के रूप में अपना कारोबार शुरू किया था। उनके ग्राहकों में अनीस और मुस्तफा डोसा शामिल थे, जो दोनों मुंबई बम धमाकों में आरोपी थे। वह डी-कंपनी के सदस्य अबू सलेम (जिसे 7 सितंबर 2017 को टीएडीए कोर्ट द्वारा आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई) के साथ हथियारों के साथ संजय दत्त के घर गया था। धमाकों के कुछ हफ्तों बाद, हिंगोरा को पूछताछ के लिए हिरासत में लिया गया। अबू सलेम फरार हो गया, लेकिन अंततः उसे पुर्तगाल से प्रत्यर्पित किया गया। संजय ने एके-56 बंदूक के साथ-साथ कुछ अन्य हथियार - तीन राइफलें, नौ मैगज़ीन, 450 कारतूस, एक 9 मिमी पिस्तौल और 20 से अधिक हथगोले - प्राप्त करने की बात कबूल की। ये हथियार 16 जनवरी 1993 को अबू सलेम, बाबा मूसा चौहान और हिंगोरा द्वारा उनके घर पहुंचाए गए थे। कुछ सबूत मिले हैं कि जब वे पहुंचे तो संजय दत्त अनीस से बात कर रहे थे। उन्होंने एक एके-56 को छोड़कर बाकी सभी हथियार लौटा दिए।

इसमें कोई शक नहीं था कि अनीस ने ही हथियार मुहैया कराए थे, जो 9 जनवरी को महाराष्ट्र के अलीबाग जिले के महासला के रास्ते तस्करी किए गए हथियारों के जखीरे का हिस्सा थे। संजय मॉरीशस में था जब हथियारों की खरीद में उसकी संलिप्तता तय हुई। मॉरीशस से लौटते समय उसके पिता ने पुलिस कमिश्नर को फोन करके 19 अप्रैल को संजय के आने की सूचना दी। पुलिस ने उसे हवाई अड्डे से ही पकड़ लिया। उसके कबूलनामे को टीएडीए के तहत 'मजबूत' सबूत माना गया और उसने यह भी खुलासा किया कि यूसुफ नुलवाला ने हथियार ठिकाने लगाने में उसकी मदद की थी। इससे और गिरफ्तारियां हुईं।

तो क्या यह TADA अधिनियम के तहत आतंकवाद का कृत्य था? मेरा मानना था कि नहीं, और

मेरे इस विचार से कई लोग नाखुश हुए। संजय दत्त को अत्यधिक कठिनाइयों से गुजारने के लिए राजनीतिक दबाव था।

मुकदमे की सुनवाई के दौरान सुनील दत्त मुझसे कई बार मिलने आए। संजय की गिरफ्तारी के दिन से ही वे पूरी तरह टूट चुके थे। हमारी मुलाकात मुंबई में सचिवालय के सामने स्थित दो मंत्री बंगलों के बीच बने स्पेशल टास्क फोर्स के कैंप कार्यालय में हुई। हम तीन बार और मिले—दो बार दिल्ली में और तीसरी बार इत्तेफाक से छत्रपति शिवाजी हवाई अड्डे के वीआईपी लाउंज में, जहां हम दोनों ने अपनी-अपनी फ्लाइट का इंतजार करते हुए एक घंटा बिताया। हमने निजी तौर पर और बिना किसी सहायक के बात की। सुनील दत्त ने मुझसे अपने दिल की सारी बात कह दी। वे बहुत तनाव में थे। उनके इकलौते बेटे को आतंकवादी समझा जा रहा था और उनकी आर्थिक स्थिति खराब होती जा रही थी। उन्होंने पहले शरद पवार से मदद की उम्मीद की थी, क्योंकि वे जानते थे कि उनके हस्तक्षेप के बिना बॉम्बे पुलिस, संयुक्त आयुक्त एम.एन. सिंह और आयुक्त अमरजीत समरा संजय को आतंकवादी ही मानते रहेंगे। यहां तक कि जज भी अपने रुख पर अड़े हुए थे। लेकिन पवार मदद करने को तैयार नहीं थे। दत्त सीनियर को यह एहसास हो गया था कि उनके बेटे को 1989 में राजीव गांधी की दुखद हत्या के बाद लिए गए उस फैसले की कीमत चुकानी पड़ रही है, जिसमें उन्होंने प्रधानमंत्री पद की दौड़ में शामिल महाराष्ट्र के तत्कालीन मुख्यमंत्री पवार के बजाय पी.वी. नरसिम्हा राव का साथ दिया था। कई वर्षों तक दर-दर भटकने और भारी खर्च पर शीर्ष आपराधिक वकीलों की सेवाएं लेने के बाद, दत्त को पता चला कि पवार की दुर्भावना को देखते हुए मुंबई में कोई भी उनके बेटे की मदद के लिए हाथ नहीं बढ़ाएगा।

मेरे अलावा—एक सीबीआई अधिकारी, जिसके लिए यह महत्वपूर्ण है कि न्याय की प्रक्रिया न केवल सुचारू रूप से चले, बल्कि उसके भीतर भी ऐसी प्रक्रियाएं हों जो निरंतर चलती रहें। किसी व्यक्ति को कठोरतम सजा देने की जल्दबाजी में बहक जाने के बजाय, मैंने यह राय दी कि संजय केवल शस्त्र अधिनियम के तहत अपराधों का दोषी है और जमानत का हकदार है। उसके विरुद्ध साक्ष्यों के संबंध में मेरी व्याख्या टीएडीए न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय दोनों के निर्णयों में सही साबित हुई।

टाडा अदालत ने संजय दत्त के इस दावे को स्वीकार किया कि उन्होंने अपने परिवार पर हमलों के डर से एके-56 बंदूक रखी थी। अदालत ने यह भी माना कि अभियोजन पक्ष यह साबित करने में विफल रहा कि दत्त ने मुंबई बम धमाकों में साजिश रची थी या उन्हें इसकी जानकारी भी थी। वे यह भी साबित करने में विफल रहे कि उनके पास मौजूद एके-56 बंदूक उसी खेप का हिस्सा थी जिसका इस्तेमाल मुंबई बम धमाकों में किया गया था। उन्हें शस्त्र अधिनियम के तहत दोषी ठहराया गया। टाडा अदालत के इस फैसले को मार्च 2013 में सर्वोच्च न्यायालय ने बरकरार रखा।

युद्ध छेड़ने के आरोपों को हटाना: 1993

कहीं पाठक यह न सोचें कि संजय दत्त के प्रति मेरे मन में कोई विशेष सहानुभूति थी, क्योंकि वह एक फिल्म स्टार थे या उनके पिता एक राजनेता थे। मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि मैंने न्याय

की प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलाने में अपना पूरा योगदान दिया, बिना किसी वर्ग, जाति, पंथ, धर्म या ऐसे किसी भी भेदभाव के। मेरे लिए न्याय ही सर्वोपरि सिद्धांत था, इससे अधिक कुछ नहीं।

13 मार्च 1993 को मुंबई में आयोजित आरडीएक्स के तेरह विस्फोट दाऊद, टाइगर मेमन, याकूब मेमन, अनीस, अबू सलेम और मोहम्मद डोसा की साजिश का हिस्सा थे, जो पाकिस्तान की आईएसआई के अन्य सभी संगठनों के साथ मिले हुए थे। मुस्तफा डोसा, करीमुल्लाह खान, फिरोज अब्दुल राशिद खान, रियाज सिद्दीकी, ताहिर मर्चेंट और अब्दुल कय्यूम अन्य सह-साजिशकर्ताओं में से थे। मुंबई पुलिस ने कुल 189 लोगों पर आरोप लगाए।

इनमें संजय दत्त भी शामिल थे। उन पर केवल अवैध रूप से हथियार रखने का मुकदमा चलाया गया, न कि कठोर टाडा कानून के तहत। मेरे नेतृत्व वाली सीबीआई टीम ने यह भी सुनिश्चित किया कि 26 आरोपियों को शुरुआत में ही सभी आरोपों से मुक्त कर दिया जाए। वे निर्दोष पाए गए थे। अन्य सभी आरोपियों के खिलाफ राष्ट्र के विरुद्ध युद्ध छेड़ने के आरोप हटा दिए गए थे। शुरुआत में जिन 26 लोगों को रिहा किया गया था, वे सभी मुसलमान थे। उस समय आम धारणा यह थी कि चूंकि विस्फोटों के लिए केवल मुसलमान ही जिम्मेदार हो सकते हैं, इसलिए कानून लागू करने वाले अधिकारियों को केवल उन्हीं के खिलाफ कार्रवाई करनी चाहिए। लेकिन मैं स्पष्ट था कि किसी व्यक्ति को किसी विशेष धार्मिक आस्था का पालन करने के कारण किसी अपराध के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता।

इतने बड़े अपराध को अंजाम देना दाऊद के लिए एक शानदार प्रबंधनीय उपलब्धि थी। लेकिन वह सैकड़ों अन्य लोगों की मदद के बिना ऐसा नहीं कर सकता था, जो उसके लिए आरडीएक्स और अन्य हथियारों की ढुलाई, लोडिंग, अनलोडिंग आदि का काम करते थे। इन लोगों को अपने काम की कोई जानकारी नहीं थी। उन्हें साजिश की कोई जानकारी नहीं थी, इसलिए उन पर अपराध करने का इरादा या आपराधिक मंशा का आरोप लागू नहीं होता था। मुंबई पुलिस भी इस बात से सहमत थी और उन्हें 1995 में ही सम्मानजनक तरीके से बरी कर दिया गया था।

अभियुक्तों को अगली राहत तब मिली जब उन पर लगे 'राष्ट्र-विरोधी युद्ध छेड़ने' के आरोप हटा दिए गए। दाऊद बाबरी मस्जिद विध्वंस का बदला लेने के लिए आतंक का इस्तेमाल कर रहा था। अभियुक्तों का ऐसा कोई इरादा नहीं था कि वे ऐसी स्थिति उत्पन्न करें जिसमें आबादी का एक वर्ग भारत राज्य से अलग होना चाहे, जो 'राष्ट्र-विरोधी युद्ध छेड़ने' के आरोप का आधार है। विस्फोटों का उद्देश्य आतंक के माध्यम से राष्ट्र को स्तब्ध करना था। उसने मुस्लिम युवाओं को आतंकवाद में भर्ती करने के लिए भी यही रणनीति अपनाई, जिन्हें दुबई के रास्ते पाकिस्तान भेजा जाता, वहां प्रशिक्षित किया जाता और फिर हथियारों से लैस करके भारत वापस भेजा जाता ताकि दिसंबर 1992 में अयोध्या में हिंदू बहुसंख्यकवादी ताकतों द्वारा किए गए अन्याय का बदला लिया जा सके। हालांकि, 10,000 पृष्ठों के टाडा फैसले में मामले के बारीक विवरण से पता चलता है कि दाऊद और अन्य गैंगस्टरों के लिए आतंकवाद, तस्करी, वेश्यावृत्ति, मानव तस्करी और मादक पदार्थों के साथ-साथ अंधेरे अंडरवर्ल्ड में एक नवीनतम सेवा उद्योग मात्र था। और आतंक के इस धंधे में, सीमा शुल्क विभाग के हिंदू अधिकारी और पुलिस अधिकारी भी

मुस्लिम गैंगस्टरों के साथ मिलकर धन अर्जित करने में लगे रहे। भारत राज्य से अलग होना कभी भी उनका उद्देश्य नहीं था।

सीबीआई उस समय उस स्थिति में थी जब आरोपपत्र दाखिल हो चुका था और अदालत को यह तय करना था कि किसके खिलाफ कौन से आरोप मान्य होंगे और मुकदमे की दिशा क्या होगी। मेरा मानना था कि 'युद्ध छेड़ने' के आरोप हटा दिए जाने चाहिए—पहला, क्योंकि इस बात का कोई सबूत नहीं था कि विस्फोट किसी अलगाववादी आंदोलन का समर्थन करने के घोषित उद्देश्य से किए गए थे; दूसरा, क्योंकि यदि सीबीआई आरोप नहीं हटाती और अदालत उसके खिलाफ फैसला सुनाती, तो एजेंसी की प्रतिष्ठा धूमिल हो जाती। तब सीबीआई पर आतंकवादियों को नहीं, बल्कि मुसलमानों को सताने का आरोप लगता।

ज़ाहिर है, यह फैसला लेना आसान नहीं था क्योंकि इससे छवि पर बुरा असर पड़ सकता था। मैंने अपने लोक अभियोजक से इस बारे में उनकी राय पूछी और वे मुझसे सहमत थे। हम दोनों जानते थे कि राज्य और केंद्र के राजनीतिक आकाओं को यह बात पसंद नहीं आएगी कि सीबीआई को मुस्लिम आतंकवादियों, जिन्हें कथित तौर पर राज्य का दुश्मन माना जाता है, के प्रति नरम रुख अपनाते हुए देखा जाए। राजनीतिक नेता चाहते थे कि हम अपराधियों पर सख्त से सख्त कानून लागू करें और उन्हें कड़ी से कड़ी सजा दें ताकि उन्हें वाहवाही मिले। लेकिन मेरे विचार से, भले ही अपराध गंभीर था, लेकिन न्याय की प्रक्रिया में धर्म को बाधा नहीं बनाना चाहिए।

मैंने लोक अभियोजक को अपने कानूनी कर्तव्य का पालन करने की सलाह दी। सीबीआई अदालत में सुनवाई के दिन, हमने सबसे पहले यह तर्क दिया कि युद्ध छेड़ने के आरोप हटा दिए जाएंगे। बचाव पक्ष की टीम हैरान रह गई क्योंकि वे विशेष रूप से इसी आरोप के खिलाफ बहस करने के लिए तैयार होकर आए थे। वे अभी तक अन्य आरोपों के लिए तैयार नहीं थे, और इस आरोप को हटाकर हमने उन्हें चौंका दिया।

युद्ध छेड़ने के आरोप को हटाना कानूनी और मानवीय दृष्टि से सही था, हालांकि मुझे सत्ता में बैठे लोगों ने फटकार लगाई। गृह सचिव ने मुझसे पूछा कि उनकी अनुमति के बिना आरोप कैसे हटाया जा सकता है। मैंने उन्हें याद दिलाया, 'खैर, लोक अभियोजक को कानूनी निर्णय लेने का अधिकार है। लेकिन अगर आप असंतुष्ट हैं या आपको लगता है कि उन्होंने कुछ गलत किया है, तो उन्हें बर्खास्त कर दीजिए।' लोक अभियोजक को हटाना विवादास्पद होता; इसलिए, ऐसा नहीं किया गया। फिर मैंने गृह सचिव को सुझाव दिया कि भारत के अटॉर्नी जनरल से परामर्श लिया जा सकता है। अटॉर्नी जनरल ने मेरी बात से सहमति जताई और मामला वहीं समाप्त हो गया।

मुंबई बम धमाके हमारे देश के इतिहास के सबसे घातक आतंकवादी हमलों में से एक थे, और इसके बाद की कानूनी प्रक्रिया भी बेहद उतार-चढ़ाव भरी रही है। मुख्य साजिशकर्ता दाऊद इब्राहिम आज भी न्याय से बच निकला है। मुख्य मुकदमा 2007 में समाप्त हुआ, जिसमें मेमन परिवार के सदस्यों को 100 अन्य लोगों के साथ दोषी ठहराया गया। याकूब को 2015 में फांसी दे दी गई, लेकिन टाइगर मेमन अभी भी फरार है और माना जाता है कि वह पाकिस्तान में छिपा हुआ है। अबू सलेम भी फरार था, लेकिन बाद में उसे प्रत्यर्पित कर दिया गया और 2017 में

उसके मुकदमे में उसे दोषी पाया गया।

याकूब मेमन की फांसी: 2015

सीबीआई के अंदर भी इंसानियत है। मैं उन सभी सामाजिक कार्यकर्ताओं से बार-बार यही कहना चाहता हूँ जिन्होंने याकूब मेमन को फांसी से कुछ घंटे पहले बचाने के लिए तुरंत कदम उठाया। उन्होंने सीबीआई पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाया, जो कुछ मामलों में, या शायद कई मामलों में, पूरी तरह से गलत नहीं है, फिर भी याकूब को बचाने के लिए सर्वोच्च न्यायालय से दया याचिका दायर करना गलत था और इसने समकालीन भारतीय राजनीति को ध्रुवीकृत कर दिया।

सबसे पहले, मुंबई बम धमाकों के मामले की जांच सीबीआई ने पूरी पेशेवरता के साथ की थी। याकूब की फांसी भले ही समाज के कुछ वर्गों के लिए एक अनसुलझा रहस्य हो, लेकिन सीबीआई के लिए नहीं। वह निश्चित रूप से एक अपराध का दोषी था—मुंबई धमाकों की साजिश में शामिल होना, जिसमें 257 लोगों की जान गई थी। हालांकि, यह स्पष्ट है कि याकूब मेमन को कड़ी सजा इसलिए दी गई क्योंकि उसका भाई टाइगर, जो दाऊद के साथ मुख्य साजिशकर्ता था, कानून से बच निकला था। याकूब पाकिस्तान से लौटकर भारतीय अधिकारियों के साथ सहयोग करने को तैयार था। उसने इस बारे में बहुमूल्य जानकारी और सबूत दिए कि आईएसआई ने साजिशकर्ताओं की किस प्रकार सहायता की—इस तथ्य की पुष्टि एक पूर्व वरिष्ठ खुफिया अधिकारी ने की है। फिर भी, उसे इस जघन्य अपराध से बरी नहीं किया जा सकता। सर्वोच्च न्यायालय ने इन कम करने वाले कारकों को नजरअंदाज करते हुए उसकी पुनरीक्षण याचिका खारिज कर दी। न्यायालय की तीन सदस्यीय पीठ ने न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ द्वारा पिछली दो सदस्यीय पीठ के फैसले पर उठाए गए प्रक्रियात्मक त्रुटियों को खारिज करते हुए उसकी उपचारात्मक याचिका भी खारिज कर दी। फिर भी, कुछ कार्यकर्ताओं का मानना था कि भारत के राष्ट्रपति संविधान के अनुच्छेद 72 के तहत प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग कर सकते थे। दुर्भाग्यवश, ऐसा नहीं हुआ।

मृत्युदंड के विरुद्ध अपीलों पर सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय एक जैसे नहीं रहे हैं। न्यायाधीशों की पीठ के अलग-अलग मतों को ही प्राथमिकता दी गई है। 2014 में, सर्वोच्च न्यायालय ने इस मामले में दोषी ठहराए गए अन्य लोगों की मृत्युदंड की सजा को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया, लेकिन याकूब की सजा को नहीं। राजीव गांधी हत्याकांड, जो एक बड़ा आतंकवादी हमला भी था, में दोषी ठहराए गए तीन व्यक्तियों की सजा को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया गया। इसके तुरंत बाद, बम विस्फोट करने के आरोप में मृत्युदंड की सजा पाए देवेंद्र पाल सिंह भुल्लर की सजा को भी आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया गया। दोनों ही मामलों में, तमिलनाडु और पंजाब के राजनीतिक नेताओं द्वारा मृत्युदंड की सजा को आजीवन कारावास में परिवर्तित करने के लिए काफी दबाव डाला गया था।

इन मामलों में, जिनमें याकूब का मामला भी शामिल है, जिस तरह से मापदंड को अलग-अलग तरीके से लागू किया गया है, उससे मृत्युदंड की समीक्षा की आवश्यकता स्पष्ट होती है। 'दुर्लभतम मामलों' के सिद्धांत की व्याख्या अलग-अलग न्यायाधीशों द्वारा व्यक्तिपरक रूप से की जाती है। दिल्ली स्थित राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय के एक अध्ययन के अनुसार, मृत्युदंड पाने वाले

अधिकांश लोग गरीब और सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों से आते हैं।

हालांकि, इसमें कोई शक नहीं कि याकूब दोषी पाया गया और उसे माफ़ी दिलाने की गुहार लगाने वालों को अपने इस विलंब पर पछतावा होना चाहिए कि उन्होंने फांसी की सजा पाए व्यक्ति को बचाने के लिए इतनी देर से अपनी कोशिशें दिखाईं। उन्हें तो भारत के राष्ट्रपति से प्रार्थना करनी चाहिए थी, और वह भी 2013 में। जहां धुर दक्षिणपंथियों को अपने राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों पर हमला करने का मौका मिल गया, वहीं वाम-उदार धर्मनिरपेक्ष दलों से जुड़े लोग आसानी से यह भूल जाते हैं कि भ्रष्ट या अक्षम न्याय व्यवस्था के कारण अन्य आतंकवादी कानून की गिरफ्त से बच निकले हैं।

अनीस इब्राहिम फाइल्स: 1993

बॉम्बे ब्लास्ट मामलों में सीबीआई ने बेहतरीन पेशेवर तरीके से अपना काम किया, लेकिन नौकरशाही और राजनेता हमें निराश कर गए।

जनवरी और फरवरी 1993 में देश में अत्यधिक परिष्कृत हथियारों की तस्करी की गई थी। यह सीमा शुल्क और पुलिस अधिकारियों के साथ सक्रिय मिलीभगत से किया गया था, जिसे दाऊद के छोटे भाई और डी-कंपनी में दूसरे नंबर के कमांडर अनीस द्वारा गुप्त रूप से आयोजित किया गया था।

सीबीआई अनीस को पकड़ने के बेहद करीब पहुंच गई थी, लेकिन विदेश मंत्रालय की ढिलाई के कारण असफल रही। दोनों अभी भी फरार हैं और उन्हें प्रत्यर्पित न करने का कारण स्पष्टीकरण होना चाहिए। विदेश मंत्रालय में अनीस प्रकरण से संबंधित कई आपत्तिजनक दस्तावेज और फाइलें मौजूद हैं जिन्हें सार्वजनिक किया जाना चाहिए।

बहरीन में अनीस के प्रत्यर्पण के लिए मेरी मुलाकात एक ऐसी कहानी है जिसे कोई सुनना नहीं चाहता। फरवरी-मार्च 1996 में इंटरपोल ने रेड अलर्ट जारी किया और अनीस को बहरीन में गिरफ्तार कर लिया गया। दिलचस्प बात यह है कि उस पर अत्यधिक शराब पीने का आरोप था। ऐसा माना जाता है कि अनीस शारजाह से बहरीन एक-दो ड्रिंक लेने के लिए जाया करता था, क्योंकि शारजाह एक 'ड्राई' शहर था। मैं, सीबीआई के दो अन्य अधिकारियों के साथ, बहरीन पुलिस के समन पर पहुंचा।

लेकिन बहरीन के अमीर ने अपनी पुलिस के आदेश को पलट दिया और सीबीआई को हिरासत देने से साफ इनकार कर दिया। अनीस को बड़ी आसानी से संयुक्त अरब अमीरात (यूएई) के शारजाह अधिकारियों को सौंप दिया गया। वह मामूली आपराधिक आरोपों का सामना करने के बहाने शारजाह लौट आया। हमने बहरीन पुलिस से विरोध जताया। बहरीन के आपराधिक जांच विभाग के प्रमुख, जो एक ब्रिटिश नागरिक थे, अपनी सरकार से स्पष्ट रूप से नाराज़ थे, लेकिन सर्वशक्तिमान अमीर के आदेश के सामने उन्होंने अपनी बेबसी ज़ाहिर की। हम खाली हाथ और बेहद निराश होकर लौट आए। हमने विदेश मंत्रालय के माध्यम से बहरीन में अपने राजदूत को हर बात की जानकारी दी। विदेश मंत्रालय प्रत्यर्पण क्यों नहीं करवा पाया, यह आज भी बरमूडा ट्रायंगल से भी गहरा रहस्य बना हुआ है।

या शायद, यह कोई रहस्य नहीं है। सभी सवालों का जवाब है, न पूछो, न बताओ।

घटनाक्रम: मुंबई बम धमाकों का मामला: 1993
12 मार्च 1993: बॉम्बे में सिलसिलेवार बम धमाकों की खबर आई। एक घंटे के भीतर कुल मिलाकर...
मुंबई में 13 बम धमाके हुए। ये 13 स्थान थे बॉम्बे स्टॉक एक्सचेंज भवन, मस्जिद-मांडवी कॉर्पोरेशन बैंक शाखा, ज़वेरी बाज़ार, माहिम कॉज़वे स्थित फिशरमैन्स कॉलोनी, प्लाज़ा सिनेमा, कथा बाज़ार, सेंचुरी बाज़ार, होटल सी रॉक, एयर इंडिया भवन, सहार हवाई अड्डे का टर्मिनल (वर्तमान सीएसआईए), होटल जुहू सेंटॉर, वर्ली और पासपोर्ट कार्यालय। इनमें से अधिकांश बम कारों और स्कूटरों में छिपाए गए थे।
19 अप्रैल 1993: क्राइम ब्रांच ने बॉलीवुड अभिनेता संजय दत्त को गिरफ्तार किया।
मुंबई हवाई अड्डे पर एके-56 राइफल, एक 9 मिमी पिस्तौल और गोला-बारूद रखने के आरोप में गिरफ्तार किया गया।
28 अप्रैल 1993: दत्त ने हथियार रखने की बात कबूल की और बाद में
उसी को नष्ट करना।
5 मई 1993: बॉम्बे हाई कोर्ट ने दत्त को अंतरिम जमानत दी।
4 नवंबर 1993: 10,000 पृष्ठों से अधिक लंबी प्राथमिक आरोपपत्र दाखिल की गई
दत्त समेत 189 आरोपियों के खिलाफ, जिनका नाम आरोपी संख्या 117 है।
19 नवंबर 1993: सीबीआई ने मामले को अपने हाथ में लिया।
10 अप्रैल 1994: टीएडीए अदालत ने 26 आरोपियों को बरी कर दिया, जबकि आरोप हटा दिए गए।
शेष 163 फ्रेमों के विरुद्ध।
19 अप्रैल 1994: मुकदमा शुरू हुआ।
4 जुलाई 1994: सुप्रीम कोर्ट ने उनकी जमानत रद्द कर दी और उन्हें दोबारा गिरफ्तार कर लिया गया।
20 नवंबर 1994: दत्त ने अपना बयान वापस ले लिया।
29 मार्च 1996: पी.डी. कोडे को इस मामले के लिए विशेष टीएडीए न्यायाधीश नियुक्त किया गया।
मार्च 2001-अगस्त 2002: मामले की विस्तृत सुनवाई।
13 जून 2003: गैंगस्टर अबू सलेम के मुकदमे को अलग कर दिया गया।
12 सितंबर 2006: अदालत ने मेमन परिवार के चार सदस्यों को सजा सुनाई
तीन को दोषी ठहराया गया और बरी कर दिया गया। 12 अन्य दोषियों को मृत्युदंड दिया गया और 20 को आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई।
31 जुलाई 2007: टीएडीए अदालत ने दत्त को छह साल की कठोर कारावास की सजा सुनाई।
20 अगस्त 2007: संजय दत्त ने अपने खिलाफ सुप्रीम कोर्ट में अपील दायर की।
31 जुलाई को टीएडीए अदालत द्वारा सुनाया गया फैसला।
1 नवंबर 2011: सुप्रीम कोर्ट ने दत्त द्वारा दायर अपीलों की सुनवाई शुरू की

और साथ ही 100 अन्य दोषियों और राज्य को भी।
21 मार्च 2013: सुप्रीम कोर्ट ने याकूब मेमन की मौत की सजा को बरकरार रखा, मामला स्थानांतरित किया
10 दोषियों की मृत्युदंड की सजा को आजीवन कारावास में परिवर्तित कर दिया गया है, और 18 में से 16 दोषियों के आजीवन कारावास को भी बरकरार रखा गया है। न्यायालय ने घोषणा की है।
दत्त को पांच साल की जेल की सजा सुनाई गई है और उन्हें चार सप्ताह के भीतर आत्मसमर्पण करने का आदेश दिया गया है।
21 जुलाई 2015: सुप्रीम कोर्ट ने याकूब मेमन की याचिका खारिज कर दी।
29 जुलाई 2015: राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी और महाराष्ट्र के राज्यपाल
याकूब की दूसरी दया याचिका खारिज कर दी गई।
30 जुलाई 2015: याकूब मेमन को नागपुर केंद्रीय जेल में फांसी दी गई। सुप्रीम कोर्ट ने अपील खारिज कर दी।
फांसी पर 14 दिन की रोक लगाने के लिए अंतिम समय में याचिका दायर की गई।
25 फरवरी 2016: अभिनेता संजय दत्त पुणे के येरवडा जेल से रिहा हुए।
जेल।
29 मई 2017: टीएडीए अदालत ने 16 जून को सुनवाई की तारीख घोषित की।
अबू सलेम और अन्य छह आरोपियों के खिलाफ मुकदमे में फैसला सुनाया गया।
16 जून 2017: टीएडीए अदालत ने अबू सलेम, मुस्तफा डोसा और
मोहम्मद डोसा को 1993 के मुंबई बम धमाकों के मामले में हत्या और साजिश का दोषी पाया गया। अदालत ने फिरोज अब्दुल राशिद खान और करीमुल्लाह शेख को भी आईपीसी, टीएडीए और विस्फोटक अधिनियम की धाराओं के तहत साजिश और हत्या के आरोपों में दोषी ठहराया। अदालत ने ताहिर मर्चेंट को भी इस मामले में दोषी पाया।
स्रोत: लाइवमिंट, 16 जून 201734
ऑपरेशन ब्लू स्टार: 1984
जून 1984 में अमृतसर हिंसा के साये में घिरा हुआ था। गुरु अर्जुन देव की शहादत की वर्षगांठ पर स्वर्ण मंदिर दर्शन के लिए आए हजारों निर्दोष श्रद्धालु देश के सबसे घातक विद्रोहों में से एक की चपेट में आ गए थे—भारतीय सेना की 350वीं इन्फैंट्री ब्रिगेड और खालिस्तान नामक एक अलग राष्ट्र की मांग करने वाले सिख उग्रवादियों के बीच भीषण संघर्ष हुआ। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने ऑपरेशन ब्लू स्टार का आदेश दिया था—एक ऐसा अभियान जिसमें सशस्त्र बल (पंजाब और चंडीगढ़) विशेष अधिकार अधिनियम, 1983 के तहत सेना को अखिल भारतीय सिख छात्र संघ और दल खालसा सहित कई प्रतिबंधित संगठनों की गतिविधियों का मुकाबला करने के लिए बुलाया गया था। उनके नेता जरनैल सिंह भिंडरांवाले और बर्खास्त मेजर-जनरल शबेग सिंह और अन्य ने हथियार, गोला-बारूद और विस्फोटक जमा कर लिए थे। ये लोग भारत के खिलाफ युद्ध छेड़ने के लिए स्वर्ण मंदिर परिसर में एकत्रित हुए थे।

5 जून से 10 जून 1984 तक चला यह पांच दिवसीय अभियान मेजर-जनरल कुलदीप सिंह बराड़ की समग्र कमान और ब्रिगेडियर डी.वी. राव के नेतृत्व में 350वीं इन्फैंट्री ब्रिगेड के अधीन किया गया था। इस अभियान में कई उग्रवादियों, सेना के जवानों और आम पर्यटकों की जान गई। भारी मात्रा में हथियार और गोला-बारूद बरामद किए गए। अभियान के अंत में, सेना ने स्वर्ण मंदिर को उग्रवादियों से मुक्त करा लिया, लेकिन इमारत पूरी तरह से क्षतिग्रस्त हो गई थी। सेना ने कुल 1,592 लोगों को गिरफ्तार किया, जिनमें से ब्रिगेडियर राव को पूरा विश्वास था कि सभी आतंकवादी थे।

ऑपरेशन के तुरंत बाद मुझे दिल्ली से अमृतसर एक विशेष विमान से भेजा गया ताकि मैं ब्रिगेडियर द्वारा हिरासत में लिए गए 1,592 संदिग्ध 'आतंकवादियों' की जांच का जिम्मा संभाल सकूं और उन पर मुकदमा चला सकूं। सीबीआई के सामने पहले कभी इतने अधिक आरोपी एक ही मामले में नहीं आए थे और न ही कभी आए। मेरी राय में सभी आतंकवादी नहीं थे, इसलिए मैंने उनमें से केवल 379 पर मुकदमा चलाया जबकि 1,213 को वापस भेज दिया गया। मैंने सेना की इस मांग को मानने से इनकार कर दिया कि सभी पर बिना किसी पर दया दिखाए आतंकवादी के रूप में मुकदमा चलाया जाए।

हालांकि मुझे देश के कानूनों का पालन करने और लोकलुभावन भावनाओं के आगे न झुकते हुए न्याय की प्रक्रिया को सुचारू रूप से चलने देने की अपनी इच्छाशक्ति और दृढ़ संकल्प पर गर्व है, फिर भी मैं सेना की भावनाओं को पूरी तरह समझता हूं। स्वर्ण मंदिर परिसर के अंदर और बाहर आतंकवादियों द्वारा की गई व्यापक तैयारी एक सर्वाधिकारहीन युद्ध से कम नहीं थी।

• उत्तर में स्थित मुख्य प्रवेश द्वार को पूर्व से पूरी तरह से किलेबंद कर दिया गया था।

पश्चिम;

• मेहराबों और मुख्य प्रवेश द्वार के सभी खुले हिस्सों को ईंटों से बंद कर दिया गया था।

देखने के लिए कुछ छेद छोड़ दिए गए हैं;

• कई स्थानों पर बंकरों का निर्माण किया गया था;

• मंदिर की ओर जाने वाली सड़कें पूरी तरह से ढकी हुई थीं और आवागमन असंभव था।

उनके पार जाने से इन स्थानों से गोलीबारी को आमंत्रित किया जा सकता था;

• होटल टेम्पल व्यू, ब्रह्म बूटा अखाड़ा, सिंधी होटल और अन्य

मंदिर परिसर के मुख्य प्रवेश द्वार के सामने स्थित भवनों को किलेबंद कर दिया गया था और विशेष स्थानों से उन पर गोलाबारी की जाती थी;

• पश्चिमी भाग में अकाल तख्त क्षेत्र पर परिक्रमा का प्रभुत्व है।

और पश्चिम की ओर स्थित सभी इमारतों को किलेबंद कर दिया गया था;

• मंदिर की दक्षिणी दीवार के साथ मेहराबों में बने छिद्रों को सील कर दिया गया था।

छत के ऊपर ईंटें और बंकर बनाए गए थे;

• परिक्रमा के इस हिस्से के दक्षिण में स्थित सभी ऊंची इमारतों को

मंदिर की ओर जाने वाली सभी गलियों पर आवागमन को नियंत्रित करने के लिए कब्जा कर लिया गया था;

• पश्चिमी दिशा में स्थित बाबा अटल गुरुद्वारे की किलेबंदी कर दी गई थी;
• गुरु नानक निवास कार्यालय और शिरोमणि गुरुद्वारा की इमारतें
प्रबंधक समिति (एसजीपीसी), गुरु राम दास लंगर और गुरु राम दास सराय के पूर्व में टावरों को मजबूत और कब्जा कर लिया गया;
• बंकरों के निर्माण का काम अभी भी जारी था जब
ऑपरेशन संपन्न हुआ।
ब्रिगेडियर राव के साथ सीमा सुरक्षा बल (बीएसएफ) और केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल (सीआरपीएफ) के अर्धसैनिक बल थे। कुछ बलों को रिजर्व में रखा गया था क्योंकि शुरू में यह अनुमान लगाया गया था कि ऑपरेशन ब्लू स्टार डेढ़ दिन से अधिक नहीं चलेगा। ब्रिगेडियर यह अनुमान नहीं लगा सके कि ऑपरेशन कितना विस्तृत और भयावह होगा। यह पांच दिनों तक चला, जिसमें खालिस्तानियों से निपटने के लिए पूरी सेना रिजर्व की जरूरत पड़ी। फिर भी, ऑपरेशन की आधिकारिक समाप्ति की घोषणा के बाद भी जब ज्ञानी जैल सिंह ने मंदिर का दौरा किया, तब भी कुछ आतंकवादी स्नाइपर सक्रिय रहे। इस ऑपरेशन में सेना ने 83 अधिकारियों और जवानों को खो दिया। इसके अलावा, उन पांच दिनों में 252 अन्य घायल हुए; कुछ के अंग काटने पड़े।
इस अभियान में दोनों पक्षों ने जमकर लड़ाई लड़ी। मेरे जांचकर्ताओं ने मुझे पूरी कहानी विस्तार से बताई जिससे यह स्पष्ट हो गया कि खालिस्तानियों ने कितनी अच्छी तैयारी की थी। मैं यहाँ रिकॉर्ड की गई हर बात को हूबहू प्रस्तुत कर रहा हूँ:
26 मद्रास को मंदिर में प्रवेश करने का कार्य सौंपा गया था।
पूर्वी द्वार दक्षिणी परिक्रमा की ओर क्षेत्र को साफ करता है और
आटा मंडी गेट तक के कमरों में तलाशी अभियान चलाया गया। इसका उद्देश्य अवैध हथियारों को जब्त करना भी था।
गोला-बारूद जुटाना और आतंकवादियों को उनके कार्यक्षेत्र में ही पकड़ना। लेफ्टिनेंट कर्नल
आरएमजी पन्नियार ने 26 मद्रास की कमान संभाली जो जलियांवाला में चले गए
बाग में 5 जून को रात 9:30 बजे विरोध प्रदर्शन शुरू हुआ। आधे घंटे के भीतर ही यह शुरू हो गया।
दक्षिणी परिक्रमा की ओर बढ़ते हुए भारी और प्रभावी आक्रमण हुआ।
सिंधी होटल लंगर साहिब और लगभग सभी अन्य इमारतों में आग लग गई।
ये सभी किलेबंद थे। कंपनी भारी नुकसान झेलते हुए आगे बढ़ी।
हताहतों के कारण अंततः 6 जून को दोपहर 1:30 बजे मंदिर में प्रवेश किया।
पहले वाले के दक्षिणी भाग पर एक मजबूत आधार स्थापित करने के लिए आगे बढ़े।
गेट पर हल्की मशीनगनों, स्वचालित राइफलों, पिस्तौलों आदि से गोलीबारी की गई।
हथगोले। इसके चलते हरमंदिर साहिब से भी भारी गोलीबारी हुई, लेकिन
निर्देशों के अनुसार हरमंदिर साहिब की ओर जवाबी गोलीबारी नहीं की गई।
घायल जूनियर कमीशंड ऑफिसर (जेसीओ) अकाल तख्त में दाखिल हुए

और उसे पकड़ लिया गया। फिर उसे विस्फोटकों से उड़ा दिया गया।
15 कुमाऊं सैनिकों ने पश्चिमी दिशा से कवर फायर प्रदान करने के लिए एक एपीसी का इस्तेमाल किया।
परिकारमा के कोने पर भी, टैंक रोधी हथियारों से गोलीबारी की गई।
और पश्चिमी द्वार पर ही नष्ट हो गया। एपीसी के अंदर सैनिक मौजूद थे।
भारी हताहत हुए और पैदल सेना के हथियार उन्हें बेअसर करने में विफल रहे।
इस परिसर में अकाल तख्त, लाल इमारत और निसान शामिल हैं।
साहिब परिसर। ब्रिगेडियर राव ने टैंकों को परिसर में शामिल करने की अनुमति मांगी।
Parikrama. General Sundarji spoke to Rajiv Gandhi in the early hours
6 जून को, वह और अरुण सिंह प्राइम के नियंत्रण कक्ष में थे।
मंत्री के घर पर। इसकी अनुमति बिना परामर्श किए दी गई थी।
प्रधानमंत्री। खबरों के मुताबिक इंदिरा गांधी को गहरा सदमा लगा था और
वह दंग रह गई। उसे बताया गया था कि सेना का अभियान त्वरित होगा।
संक्षिप्त और निर्णायक, न्यूनतम जानमाल के नुकसान के साथ। बताया जाता है कि वह
उन्होंने अपना हाथ माथे पर रखकर अपनी मृत्यु की घोषणा कर दी।
अब यह लगभग अपरिहार्य था, शायद उसे अपने भयावह भविष्य का आभास हो गया था।
सेना ने हमें कई पन्नों के बयान दिखाए जिनमें उस भयंकर युद्ध का वर्णन था, जिसने हमें क्रोधित और भयभीत दोनों कर दिया था। यह सचमुच आश्चर्यजनक था कि वे कितने शक्तिशाली हो गए थे, कितने सुसंगठित थे और भारत के विरुद्ध युद्ध छेड़ने के लिए कितने दृढ़ थे। वे सेना को अचानक घेरने में सफल रहे और भारी नुकसान पहुंचाया। उनके पास आक्रमण के हथियारों का भंडार लगभग असीमित प्रतीत होता था—सेना की राइफलें और तोपें, गोला-बारूद और विस्फोटक, हल्की मशीनगनें, सेल्फ-लोडिंग राइफलें, कार्बाइन, स्टेंगन, टैंक-रोधी तोपें और चीनी असॉल्ट राइफलें। मंदिर परिसर के अंदर छोटे हथियार और गोला-बारूद बनाने के लिए एक कारखाना स्थापित किया गया था। यह सोचकर ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं कि अगर सेना इस अभियान में विफल हो जाती तो क्या होता।

दुर्भाग्यवश, धार्मिक स्थल पर किए गए इस अभूतपूर्व अभियान ने जनता का ध्यान आकर्षित किया और सेना की जमकर आलोचना हुई। सेना के जवानों पर पूजा स्थल पर अत्यधिक बल प्रयोग करने का आरोप लगाया गया। हालांकि, उन्होंने पंजाब खुफिया विभाग की आतंकवादियों की तैयारियों की व्यापक चेतावनी को नजरअंदाज करके गलती की थी। इन सबके बीच, खूनी संघर्ष में बच निकले 1,592 लोगों को अभियान के अंत में सेना ने पकड़ लिया। स्वाभाविक रूप से, उनके प्रति आक्रोश था और कई लोगों का मानना था कि वे सभी खूंखार आतंकवादी थे जिन्हें फांसी दी जानी चाहिए।

लेकिन यह मेरा विचार नहीं था। यह स्पष्ट था कि सेना द्वारा पकड़े गए सभी लोग आतंकवादी नहीं थे; कुछ तीर्थयात्री थे जो गोलीबारी में फंस गए थे। सीबीआई अधिकारी का कर्तव्य है कि वह आरोपी के बारे में पहले से कोई राय न बनाए और कानून की सख्त व्याख्या तथा मानवीय

पहलुओं के बीच संतुलन बनाए रखे। मानवता को ध्यान में रखते हुए, अपने सिद्धांत को सबूतों के आधार पर परखें—यही वह संतुलन है जिसे हमेशा बनाए रखना चाहिए। गिरफ्तार किए गए कुछ लोगों के चेहरों पर दिख रहा खौफ ही सब कुछ बता रहा था। यह स्पष्ट था कि वे श्रद्धालु थे जो ईश्वर का आशीर्वाद लेने आए थे और उन्हें मृत्युदंड नहीं दिया जाना चाहिए था। तीर्थयात्रियों को मंदिर परिसर छोड़ने के लिए पंजाबी में बार-बार घोषणाएँ की गई थीं।

Pyare sada sangatajee vahe guruji ka Khalsa, vahe guruji ka fateh. Aap jee nu vinti kiti jandi hai ki hun ton 5.30 vaje de darmian security force ne firing band kar diti hai iss dauran sarre sadh sangat nu vinti hai ki oh darshini deori chowk ghant ghar vaipsion bahar aak siddhe kotvali ajan। (नमाज़ियों को नमस्कार। आप सभी को सूचित किया जाता है कि...) अत्यंत सम्मान के साथ सूचित किया जाता है कि सुरक्षा बल लगभग 5:30 बजे से प्रभावी होंगे। गोलीबारी बंद कर दी गई है। इसलिए, सभी उपासकों से विनम्रतापूर्वक अनुरोध किया जाता है। दर्शन देवरी चौक, घंटाघर लौटने के लिए।)

कई तीर्थयात्रियों ने उग्रवादियों के प्रकोप का जोखिम उठाते हुए ऐसा करना चुना। फिर भी कुछ ऐसे भी थे जो वहीं रुके रहे। सेना के लिए इसका मतलब था कि वे उग्रवादियों को नैतिक समर्थन दे रहे थे। लेकिन इसके अन्य संभावित कारण भी थे। हो सकता है कि उन्हें सचमुच विश्वास हो कि मंदिर की दीवारें उन्हें बाहर निकलने की कोशिश में अपनी जान जोखिम में डालने से कहीं अधिक सुरक्षा प्रदान करेंगी। वे डर के मारे सहमे हुए हो सकते थे और यह तय नहीं कर पा रहे थे कि क्या करें। मंदिर परिसर न छोड़ने का कारण चाहे जो भी हो, सबूतों की सावधानीपूर्वक जांच किए बिना उन्हें आतंकवादी मान लेना अन्यायपूर्ण होता।

मैंने अपने जवानों और अधिकारियों की टीम को आदेश दिया कि गिरफ्तार किए गए 1,592 व्यक्तियों में से प्रत्येक से व्यक्तिगत रूप से पूछताछ की जाए। प्रत्येक ने अपना घर का पता बताया, यानी वह स्थान जहाँ वे गिरफ्तारी से पहले रहते थे। हमने प्रत्येक निकटतम पुलिस स्टेशन को वायरलेस संदेश भेजे और उनके आपराधिक रिकॉर्ड की पुलिस सत्यापन रिपोर्ट मांगी। हमें सभी पुलिस स्टेशनों से जवाब मिले, लेकिन 1592 में से केवल 433 के आपराधिक रिकॉर्ड होने की सूचना मिली। मैंने निर्णय लिया कि जब तक गिरफ्तार किए गए व्यक्तियों का कोई आपराधिक रिकॉर्ड न हो, मैं उन्हें आतंकवादी नहीं मानूंगा।

इसके अलावा, स्थिति रिपोर्ट 35 की हमारी जांच से पता चला कि मंदिर परिसर के भीतर विभिन्न इकाइयों द्वारा हथियारों के साथ या मृत पाए गए लोगों की संख्या भी 433 थी। हमने केवल इन्हीं 433 लोगों पर मुकदमा चलाने का निर्णय लिया। इसके लिए हमें इन 433 व्यक्तियों के नाम स्थापित करने के लिए पूरी तरह से छानबीन करनी पड़ी, जिनकी आगे जांच की गई। इसके बाद, हमने अंततः प्रथम दृष्टया यह स्थापित किया कि जांच किए गए 433 लोगों में से 379 वे लोग थे जिन्होंने भारतीय सेना से लड़ाई लड़ी थी, विनाशकारी हथियार रखे थे और भारत विरोधी और खालिस्तान समर्थक नारे लगाए थे। हमने राय दी कि केवल इन्हीं पर आतंकवादी के रूप में मुकदमा चलाया जाना चाहिए।

ब्रिगेडियर राव को हमारा फैसला स्वाभाविक रूप से पसंद नहीं आया। उनके वरिष्ठ अधिकारी मेजर-जनरल बरार और रक्षा राज्य मंत्री केपी सिंह देव को भी यह पसंद नहीं आया। सेना उन सभी पर मुकदमा चलाना चाहती थी। मुझे सभी 1,592 गिरफ्तार लोगों पर मुकदमा चलाने और फिर 1,159 को निचली अदालत द्वारा बरी किए जाने पर सहमत होने के लिए मनाने की कोशिश की गई। रक्षा मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी भी चाहते थे कि सेना का दृष्टिकोण ही सर्वोपरि हो। उनका तर्क था कि मुकदमा चलाने का मतलब दोष सिद्ध होना नहीं है, इसलिए हिरासत में लिए गए सभी लोगों पर मुकदमा चलाने में कोई हर्ज नहीं है। मैं इस बात को मानने को तैयार नहीं था और मैंने तर्क दिया कि हमें केवल उन्हीं लोगों पर मुकदमा चलाना चाहिए जिनके खिलाफ सबूतों से प्रथम दृष्टया राष्ट्र के खिलाफ युद्ध छेड़ने का अपराध साबित होता हो। मैंने सेना के विचारों पर विचार किया, लेकिन इस तथ्य को देखते हुए कि 3 जून गुरु अर्जुन देव का शहादत दिवस था, इस बात की संभावना कि वे तीर्थयात्री थे न कि आतंकवादी, मेरे लिए बहुत मायने रखती थी। अगर उन पर मुकदमा चलाया जाता, तो आतंकवादी होने का कलंक जीवन भर उनका पीछा करता। मैं अपने इस रुख पर अडिग रहा कि या तो केवल 379 लोगों पर मुकदमा चलाया जाएगा या किसी पर भी नहीं, क्योंकि सेना द्वारा उनकी गिरफ्तारी मात्र अपर्याप्त सबूत था।

न्याय की प्रक्रिया में कई पेचीदगियां शामिल होती हैं। न्याय की कई कहानियां हैं, जिनमें से कुछ हमारी समझ से परे हैं। 1986 के पंजाब समझौते ने इस गाथा का अंत किया। सभी आरोप हटा दिए गए और सभी आरोपियों को रिहा कर दिया गया। लेकिन ब्लू स्टार मिसाइल से निकले झटके ने दो घातक प्रहार किए—31 अक्टूबर 1984 को प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या कर दी गई और 10 अगस्त 1986 को जनरल ए.एस. वैद्य की हत्या कर दी गई।

क्या यह सचमुच न्याय था? हम कभी निश्चित नहीं हो सकते कि अपराध किसका था और न्याय किसका था। इस महान संस्था में जांच अधिकारी होने के नाते हम केवल मानवता, विवेक और सत्य के प्रति सम्मान के साथ कानून का पालन कर सकते थे। हमने कानून के शासन के अलावा किसी और से आदेश नहीं लिया।

कानून, मानवता और व्यवस्था, ये तीनों मिलकर सीबीआई अधिकारी के मार्गदर्शक सिद्धांत बनाते हैं।

Khandelwal and Harshad Mehta: 1993

हम मनोरंजन और सूचना के युग में जी रहे हैं, जहाँ समाचार मनोरंजन बन गया है और चौबीसों घंटे चलने वाले समाचार चैनल सनसनीखेज 'ब्रेकिंग न्यूज़' की तलाश में रहते हैं। घटनाएँ 'ब्रेकिंग न्यूज़' इसलिए नहीं होतीं क्योंकि वे राष्ट्रीय महत्व की होती हैं, बल्कि इसलिए होती हैं क्योंकि उन्हें आसानी से सनसनीखेज या राजनीतिक रंग दिया जा सकता है। शुक्र है, 1994 में इतने ज़्यादा टेलीविजन समाचार चैनल नहीं थे। अगर उस समय सुर्खियाँ बटोरने वाले प्रतिस्पर्धी मीडिया होते, तो एमडी खंडेलवाल को गिरफ्तार करने के मेरे फैसले की खबर से हंगामा मच जाता। प्राइम टाइम में बहसें होतीं, ट्विटर पर हैशटैग की जंग छिड़ी होती और सीबीआई के फैसले पर सवाल उठाते हुए लंबे-लंबे लेख प्रकाशित होते, जिनमें एजेंसी के प्रभावित होने की

निंदा की जाती।

लेकिन हर खबर के पीछे एक जटिल कहानी छिपी होती है, जो लगातार विकसित होती रहती है, जिसमें कई किरदार अपनी-अपनी भूमिका निभाते हैं और जिसका अंत पहले से तय नहीं होता। एक पीड़ित बाद के दृश्य में खलनायक बन सकता है, और सीबीआई अधिकारी जो बिना पर्याप्त कारण के किसी को गिरफ्तार करता है, प्रतिशोधी और अत्याचारी प्रतीत हो सकता है। लेकिन जल्द ही यह पता चल सकता है कि वह तो केवल मदद करने की कोशिश कर रहा था।

1993 में, प्रतिभूति घोटाले की जांच के दौरान, जिसका नेतृत्व मैं सीबीआई में कर रहा था और जिस समय संयुक्त संसदीय समिति (जेपीसी) द्वारा इस घोटाले की जांच साथ-साथ की जा रही थी, उसी दौरान रेलवे बोर्ड के पूर्व अध्यक्ष के पुत्र और भारत सरकार की संयुक्त खुफिया समिति (जेआईसी) के प्रमुख के भतीजे खंडेलवाल को गिरफ्तार किया गया। खंडेलवाल एक चार्टर्ड अकाउंटेंट (सीए) थे, एक चतुर और मिलनसार व्यक्ति जो समृद्ध सामाजिक हलकों में उठते-बैठते थे। वे प्रतिभूति घोटाले के मास्टरमाइंड हर्षद मेहता के सीए और वकील थे और मुंबई और दिल्ली में मेहता के कार्यों से पूरी तरह वाकिफ थे। जांच के दौरान, मुझे यह स्पष्ट हो गया कि प्रतिभूति घोटाले में उनकी भूमिका थी, या तो मेहता के निर्देशों पर या अपनी मर्जी से या दोनों। लेकिन हमारे पास मौजूद ठोस सबूत और खंडेलवाल का आचरण उनकी गिरफ्तारी को उचित नहीं ठहराते थे। वे स्वेच्छा से जांच में शामिल हुए थे और उन्हें सच्चाई बताने के लिए किसी तरह के दबाव की जरूरत नहीं थी। सीबीआई की जांच संस्कृति में क्या कोई कठोर रवैया अपनाना उचित था? सहयोग करने को तैयार होने के बावजूद उसे गिरफ्तार करना एक अपमानजनक बात थी। फिर भी मैंने उसे गिरफ्तार कर लिया। क्यों?

स्वाभाविक रूप से, मेरे इस कदम से कई लोग नाराज़ हो गए। अपने प्रभाव और संपर्कों को देखते हुए, खंडेलवाल को कभी उम्मीद नहीं थी कि उन्हें गिरफ्तार किया जाएगा। जेआईसी के सर्वशक्तिशाली प्रमुख, खंडेलवाल के चाचा, बेहद क्रोधित थे। उन्होंने मेरे निदेशक एस.के. दत्ता को खूब खरी-खोटी सुनाई, जो भारतीय पुलिस सेवा के उत्तर प्रदेश कैडर से थे (जो उनका भी कैडर था)। दत्ता उनसे कुछ साल जूनियर थे। मुझे इस अनावश्यक गिरफ्तारी का कारण समझाना बहुत मुश्किल हो रहा था।

खंडेलवाल और मेहता दोनों प्रतिभूति घोटाले में आरोपी थे और उन पर कई अपराधों का आरोप लगाया गया था। लेकिन मेहता का अपराध और उसकी संलिप्तता कहीं अधिक गंभीर थी। उसका अभियोजन गवाहों की गवाही पर निर्भर था, जिनमें सबसे प्रमुख खंडेलवाल थे। मुझे उन्हें गवाह बनाकर हर्षद के खिलाफ गवाही दिलवानी थी। मैं यह कैसे कर सकता था? खंडेलवाल को गवाह बनाने के लिए मैं क्या कर सकता था? यह एक पेचीदा मामला था क्योंकि खंडेलवाल मेहता का साथी था और किसी साथी की गवाही तभी मान्य होती थी जब वह पहले अपना अपराध स्वीकार करे और फिर उसे जांचकर्ताओं के प्रभाव से दूर हिरासत में रखा जाए। एक उच्च पदस्थ वकील होने के नाते, खंडेलवाल के लिए सभी कानूनी रास्ते अपनाए बिना, न्याय से बचने के लिए हर संभव प्रयास किए बिना अपना अपराध स्वीकार करना असंभव था।

जब तक किसी के साथ अपराधी जैसा बर्ताव न किया जाए, तब तक वह अपना जुर्म कबूल नहीं

करता। ऐसे व्यक्ति में गिरफ्तारी का डर पैदा करना जरूरी होता है। यह अन्यायपूर्ण जरूर है, लेकिन सोची-समझी साजिश के तहत किया गया था। प्रतिभूति घोटाले में खंडेलवाल की भूमिका बिल्कुल स्पष्ट थी। अगर मुकदमे के दौरान वह मजिस्ट्रेट के सामने कबूलनामा कर लेता, तो उसे जेल हो सकती थी। लेकिन गिरफ्तारी के बाद सरकारी गवाह बनने और जमानत मिलने के कारण उसे दोबारा जेल नहीं भेजा गया। मेहता के खिलाफ गवाही देने में उसे काफी समय लगा, लेकिन हमारी जांच के शुरुआती दिनों में उसकी गिरफ्तारी ने उसे बाद में होने वाली परेशानियों से बचा लिया।

खंडेलवाल के चाचा, जो एक अत्यंत सम्मानित सरकारी अधिकारी थे और जिन्होंने देश की सेवा में उत्कृष्ट योगदान दिया था, लंबे समय तक मुझसे नाराज़ रहे। लेकिन मैंने उन्हें कभी नहीं बताया कि मेहता के कांडों में खंडेलवाल की भूमिका का पता चलने पर ही मैंने उसके भविष्य को भांप लिया था। और यह भी कि उसकी गिरफ्तारी पर काफी सोच-विचार किया गया था, जो पहली नज़र में अन्यायपूर्ण लग रही थी, लेकिन अंततः उसके लिए यह एक बेहतर निर्णय साबित हुआ।

जिंक कॉर्पोरेशन मामला: 1990

जब हम कहते हैं कि सीबीआई एक 'संस्था' है, तो इसका क्या अर्थ है? इसी तरह, जब राजनेता भारत की लोकतांत्रिक संस्थाओं की रक्षा करने की बात करते हैं, तो वास्तव में इसका क्या मतलब होता है?

मेरे विचार से इसका अर्थ है किसी भी व्यवस्था या संगठन को मानवीय रूप देना। लोकतंत्र का हर स्तंभ, विधायिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका और इस विशाल तंत्र के सभी अन्य अंग, कड़ाई से निर्धारित नियमों और विनियमों के अनुसार कार्य करते हैं। लेकिन कठोर कानूनों, नियमों, संरचनाओं और अनुशासनों से परे, हमें व्यवस्था में एक हृदय और आत्मा का संचार करने का प्रयास करना चाहिए, ताकि अंततः एक संगठन के रूप में यह अच्छाई प्राप्त करने के लिए प्रयासरत हो। हम किसी अमूर्त अवधारणा या किसी अमूर्त संस्था में हृदय और आत्मा का संचार कैसे कर सकते हैं?

यहीं पर व्यवस्था का हिस्सा बनने वाले व्यक्तियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। हमारा हृदय, आत्मा और विवेक कानून के शासन के साथ मिलकर काम करना चाहिए। कानून, मानवता और व्यवस्था को अपना मार्गदर्शक सिद्धांत बनाएं और किसी भी स्थिति का आकलन करने के लिए अपने सर्वोत्तम विवेक का उपयोग करें, और फिर व्यापक हित को प्राप्त करने वाले तरीके से कार्य करें।

1990 में, जिंक कॉर्पोरेशन ऑफ इंडिया (ZCI) के केंद्रीय सतर्कता अधिकारी, एस.के. चटर्जी मेरे पास एक असामान्य अनुरोध लेकर आए। वे मेरे सहपाठी थे और आईपीएस में एक विलक्षण व्यक्तित्व वाले अधिकारी थे। शायद पेशेवर और व्यक्तिगत सम्मान के मिश्रण ने मुझे उनकी बात धैर्यपूर्वक सुनने और कठोर नियम से परे सोचने के लिए प्रेरित किया। नियम यह है कि जब एफआईआर दर्ज की जाती है और सीबीआई द्वारा जांच की जा रही होती है, तो रिपोर्ट में नामित सभी व्यक्तियों पर एक साथ मुकदमा चलाया जाता है।

चटर्जी ने मुझसे अनुरोध किया कि जेडसीआई के खेतरी (राजस्थान) संयंत्र में भ्रष्टाचार के एक

मामले में दर्ज एफआईआर में चार में से दो लोगों से संबंधित मामले का शीघ्र निपटारा किया जाए। इस मामले की जांच सीबीआई के जयपुर कार्यालय द्वारा की जा रही थी। मैं नई दिल्ली में डीआईजी था और जयपुर शाखा मुझे रिपोर्ट करती थी, इसलिए मैं उनके अनुरोध का जवाब देने में संकोच कर रहा था।

आखिर उन्होंने ऐसा अटपटा अनुरोध क्यों किया, यह मेरी समझ से परे था। मेरे चेहरे के भाव देखकर चटर्जी ने कहा कि इन दोनों व्यक्तियों का प्रमोशन जल्द ही होने वाला था, लेकिन जांच के चलते उन्हें प्रमोशन नहीं मिलेगा। मैंने पूछा, 'यह तो बिलकुल सही बात है, जांच के दायरे में आए व्यक्ति को प्रमोशन के लिए क्यों चुना जाए?' उनके जवाब में सहानुभूति तो थी, लेकिन कोई कानूनी आधार नहीं था। उन्हें पूरा यकीन था कि दोनों अधिकारी निर्दोष हैं और अंततः साबित भी हो जाएंगे, लेकिन सीबीआई की जांच से उनके प्रमोशन के मौके खत्म हो जाएंगे और उनके करियर को अपूरणीय क्षति पहुंचेगी। चटर्जी का एकमात्र तर्क यह था कि सीबीआई द्वारा आरोपी के रूप में नामजद किए जाने से पहले उनका रिकॉर्ड बेदाग था। इस तर्क का भी कोई कानूनी आधार नहीं था, क्योंकि बेदाग अतीत भविष्य में भ्रष्टाचार से बचाव की गारंटी नहीं देता। लेकिन मैं समझ सकता था कि चटर्जी वास्तव में उनके बारे में चिंतित थे।

मैंने रूढ़िवादी सोच से बाहर निकलकर अगले सात दिनों में उनके मामलों की गहन समीक्षा की। मैंने पाया कि वे वास्तव में अपराधी नहीं थे और पदोन्नति के लिए उन्हें जल्द से जल्द सजा सुनाए जाने के योग्य थे। इसलिए, मैंने अपने नीति विभाग को पत्र लिखकर यह तय करने में मदद मांगी कि क्या केवल उन दोनों के मामले में निर्णय लेना उचित होगा। मुझे मंजूरी मिल गई और मैंने इस अपरंपरागत दृष्टिकोण की जांच के लिए इसे अपने संयुक्त निदेशक सह विशेष आईजी को भेजा। उन्होंने न केवल मंजूरी दी बल्कि सीबीआई निदेशक को भी सहमत करा लिया। दोनों जेडसीआई अधिकारियों को पदोन्नति मिल गई।

मुख्य संदेश यह है कि सरकारी सेवा में एक ईमानदार अधिकारी के लिए समय पर पदोन्नति मिलना अत्यंत वांछनीय होता है। सीबीआई, एक संस्था के रूप में, इस बात को समझती है और यह सुनिश्चित करने के लिए असाधारण कदम उठाती है कि मानवीय मूल्य कठोर कानूनों में न खो जाएं।

6

सबसे निचले स्तर पर पहुंचना

24 अक्टूबर 2018. ब्रेकिंग न्यूज़: 'केंद्र सरकार ने केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) का नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया।' आधी रात को हुए एक 'तख्तापलट' में, सीबीआई निदेशक आलोक वर्मा और एजेंसी के दूसरे सबसे बड़े अधिकारी विशेष निदेशक राकेश अस्थाना को उनके सभी अधिकार छीन लिए गए और उन्हें अनिवार्य रूप से छुट्टी पर भेज दिया गया। एक नए कार्यवाहक निदेशक की नियुक्ति की गई, जिन्होंने तुरंत 12 सीबीआई अधिकारियों का तबादला कर दिया। ये सभी अधिकारी देश की 'प्रमुख' जांच एजेंसी के नंबर 1 अधिकारी के नेतृत्व में सीबीआई के नंबर 2 अधिकारी के खिलाफ भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच कर रहे थे। यह सब कुछ रात के सन् 2 बजे हुआ।

सीबीआई का क्या हुआ? यह तख्तापलट आखिर था क्या? क्या भारत पर किसी शत्रु शक्ति ने हमला किया था? क्या आपातकाल घोषित कर दिया गया था? सरकार इतनी बेशर्मी से इस संस्था की स्वायत्तता पर हमला कैसे कर सकती है और एक निश्चित कार्यकाल वाले निदेशक को रातोंरात कैसे हटा सकती है?

मौजूदा सरकार के पास सीबीआई निदेशक को हटाने का अधिकार नहीं है, क्योंकि उनकी नियुक्ति और बर्खास्तगी प्रधानमंत्री, भारत के मुख्य न्यायाधीश और लोकसभा में विपक्ष के नेता सहित तीन सदस्यीय समिति द्वारा की जाती है। तो क्या यह कांग्रेस नेता राहुल गांधी के आरोपों के अनुसार, वर्मा को राफेल घोटाले की जांच करने से रोकने के लिए नरेंद्र मोदी सरकार का एक हताश प्रयास था? 1947 में देश की आजादी के बाद से भारत ने इससे ज्यादा चौंकाने वाली घटना कभी नहीं देखी। इस अभूतपूर्व घटनाक्रम को किस नजरिए से देखा जाए?

* * * * *

1963 से आज तक सीबीआई में 29 निदेशक और कई संयुक्त निदेशक रहे हैं। मैं उनमें से एक हूँ। तो मेरी कहानियों में क्या खास है? शायद कुछ नहीं, सिवाय उस समय के जब यह किताब लिखी जा रही है। जैसे-जैसे मैं सीबीआई में बिताए अपने 33 वर्षों को याद करता हूँ, संस्था अपने इतिहास के सबसे बुरे दौर से गुजर रही है।

सीबीआई का पतन चरमरा गया है। भारत के आम नागरिकों का इस संस्था की स्वायत्तता पर बचा-खुचा भरोसा भी खत्म हो गया है, जिसे बड़ी उम्मीदों के साथ स्थापित किया गया था और दशकों की मेहनत से हममें से कुछ लोगों ने इसे विकसित किया था। लगातार आने वाली सरकारों ने राजनीतिक लाभ के लिए इस संस्था का दुरुपयोग किया है और मोदी सरकार ने महज चार वर्षों में अपने कार्यों से सीबीआई की छवि को बेहद नकारात्मक बना दिया है। सरकार देश की हर संस्था पर बेरहमी से अतिक्रमण कर रही है। ऐसा लगता है कि वह तानाशाही शासन में विश्वास रखती है।

जनवरी 2018 में, अपने इतिहास में पहली बार, सर्वोच्च न्यायालय के चार सबसे वरिष्ठ न्यायाधीशों (भारत के मुख्य न्यायाधीश के बाद) ने मीडिया कॉन्फ्रेंस आयोजित कर भारत की

जनता से कहा कि देश की सर्वोच्च अदालत में सुधार के लिए कुछ करना आवश्यक है। उन्होंने तर्क दिया कि अन्यथा लोकतंत्र का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा। सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश पारंपरिक रूप से मीडिया से दूर रहते हैं और कभी भी सार्वजनिक प्रेस कॉन्फ्रेंस नहीं करते, इसका सीधा सा कारण यह है कि न्यायाधीश जनता से अपील नहीं कर सकते; जनता ही न्यायाधीशों से अपील करती है, न कि इसके विपरीत। इसलिए यह वास्तव में चौंकाने वाला था जब चार न्यायाधीशों - न्यायमूर्ति जे चेलमेश्वर, न्यायमूर्ति रंजन गोगोई, न्यायमूर्ति एम बी लोकुर और न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ - ने चेलमेश्वर के आवास पर मीडिया को संबोधित करते हुए लोकतंत्र को बचाने की अपील की। चारों न्यायाधीशों में सबसे वरिष्ठ चेलमेश्वर ने कहा: 'सबसे पहले, हम चारों आप सभी को इतने कम समय में प्रतिक्रिया देने के लिए धन्यवाद देना चाहते हैं। यह इस संस्था के इतिहास में एक असाधारण घटना है। सर्वोच्च न्यायालय का प्रशासन सुचारू रूप से नहीं चल रहा है।' पिछले कुछ महीनों में कई ऐसी घटनाएं घटी हैं जो वांछनीय नहीं हैं... जब तक इस संस्था को संरक्षित नहीं किया जाता, इस देश में लोकतंत्र का अस्तित्व नहीं टिक पाएगा।'

न्यायाधीशों ने कितनी हताशा और बेबसी महसूस की होगी कि उन्हें भारत के सर्वोच्च न्यायालय के कामकाज में व्याप्त अनियमितताओं को सार्वजनिक करना पड़ा? हालांकि किसी का नाम या विशिष्ट घटना का उल्लेख नहीं किया गया, लेकिन इसे तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश दीपक मिश्रा द्वारा मामलों के आवंटन और पीठों के गठन, विशेष रूप से सीबीआई विशेष न्यायाधीश बृजगोपाल हरकिशन लोया की मृत्यु की जांच की मांग वाली याचिका की सुनवाई के संबंध में किए गए कार्यों के विरुद्ध एक विद्रोह के रूप में देखा गया।

जज लोया सोहराबुद्दीन फर्जी मुठभेड़ के हाई-प्रोफाइल मामले की सुनवाई कर रहे थे।

मामला संख्या 36, जिसमें भाजपा अध्यक्ष अमित शाह मुख्य आरोपी थे। लोया की दिसंबर 2014 में नागपुर के एक सरकारी गेस्ट हाउस में रहस्यमय परिस्थितियों में मृत्यु हो गई, जहां वे एक शादी में शामिल होने गए थे। आधिकारिक तौर पर उनकी मृत्यु का कारण हृदयाघात बताया गया था। हालांकि, नवंबर 2017 में, कारवां पत्रिका द्वारा किए गए एक शोध में पता चला कि लोया के परिवार के कुछ सदस्यों का दृढ़ विश्वास था कि उनकी हत्या की गई थी। उन्होंने यह भी बताया कि सोहराबुद्दीन मुठभेड़ मामले में न्यायाधीश के फैसले को प्रभावित करने के लिए उन्हें 100 करोड़ रुपये की रिश्वत की पेशकश की गई थी। इससे पहले, लोया से पहले इस मामले की सुनवाई कर रहे न्यायाधीश जेटी उत्पट का 2012 के सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के बावजूद अचानक तबादला कर दिया गया था, जिसमें यह निर्दिष्ट किया गया था कि मामले की सुनवाई शुरू से अंत तक उसी न्यायाधीश द्वारा की जानी चाहिए। लोया की मृत्यु के बाद, अगले न्यायाधीश एमबी गोसावी ने एक महीने के भीतर मामले की त्वरित सुनवाई की और शाह को सभी आरोपों से बरी कर दिया।

इन रिपोर्टों ने एक बार फिर देश को झकझोर दिया और सीबीआई की लापरवाही भरी जांच और मुख्य आरोपी अमित शाह पर संदेह की उंगली उठाई, जो मई 2014 के बाद संभवतः भारत के दूसरे सबसे शक्तिशाली व्यक्ति बन गए थे। लोया की अचानक मृत्यु का रहस्य सीबीआई के

इतिहास में दर्ज कई अनसुलझे रहस्यों के ढेर में दब गया है, जबकि तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश मिश्रा ने उस याचिका को खारिज कर दिया था जिसके कारण उनके साथी न्यायाधीशों ने 'विद्रोह' किया था। देश की सर्वोच्च अदालत ने कहा कि न्यायाधीश लोया की मृत्यु 'स्वाभाविक' थी और किसी स्वतंत्र जांच की आवश्यकता नहीं थी।

मिश्रा को लंबे समय से 'मोदी का खास आदमी' माना जा रहा था। नागरिक समाज और विपक्षी दलों के कई सदस्यों ने आशंका जताई थी कि मोदी सरकार सर्वोच्च न्यायालय समेत कई संस्थानों की स्वायत्तता पर अतिक्रमण करके लोकतंत्र का गला घोंट रही है। लोया फैसले के एक दिन के भीतर ही, संसद में विपक्षी दलों ने अभूतपूर्व कदम उठाते हुए भारत के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश के खिलाफ महाभियोग प्रस्ताव पेश किया। न्यायाधीशों की प्रेस कॉन्फ्रेंस से पैदा हुई अशांति और अविश्वास ने विपक्ष को इतना बड़ा कदम उठाने पर मजबूर कर दिया। हालांकि, बाद में महाभियोग प्रस्ताव वापस ले लिया गया।

सीबीआई में नंबर 1 और नंबर 2 व्यक्तियों के बीच बेहद अप्रिय और चिंताजनक सत्ता संघर्ष के कारण जांच एजेंसियों, न्यायपालिका और सरकार पर आम लोगों का भरोसा बुरी तरह से गिर गया।

जुलाई 2018 में रिपोर्ट किया गया।37 इंडियन एक्सप्रेस ने रिपोर्ट किया कि सीबीआई ने केंद्रीय सतर्कता आयुक्त को एक पत्र में बताया था कि विशेष निदेशक अस्थाना के पास निदेशक वर्मा का प्रतिनिधित्व करने का अधिकार नहीं है, और अस्थाना स्वयं कई भ्रष्टाचार मामलों में 'जांच के दायरे में' हैं।

सच कहूँ तो, पहले तो मुझे इस कहानी पर यकीन ही नहीं हुआ। सीबीआई ने मीडिया रिपोर्ट पर कोई आधिकारिक प्रतिक्रिया नहीं दी थी—मुझे लगा कि अखबारों की खबरें बढ़ा-चढ़ाकर पेश की गई थीं। मुझे शक था कि सीबीआई द्वारा सीवीसी को लिखे गए तथाकथित पत्र वास्तव में मौजूद भी थे या नहीं। लेकिन जल्द ही मेरा शक गलत साबित हुआ। जैसे-जैसे वर्मा द्वारा अस्थाना के खिलाफ की गई और जांचों की खबरें आती रहीं, वैसे-वैसे सत्ता संघर्ष और स्पष्ट होता चला गया। अस्थाना को प्रधानमंत्री मोदी और तत्कालीन भाजपा अध्यक्ष अमित शाह का पसंदीदा माना जाता था, जो 'नए भारत' के निर्माण में उनका साथ दे रहे थे। अस्थाना गुजरात कैडर के आईपीएस अधिकारी थे और उन्होंने ही 2002 में गोधरा ट्रेन कांड की जांच का नेतृत्व किया था, जिसमें विशेष जांच दल (एसआईटी) को मोदी के खिलाफ कोई सबूत नहीं मिला था। प्रधानमंत्री जाहिर तौर पर उन्हें सीबीआई का प्रमुख बनाना चाहते थे। उन्हें दिसंबर 2016 में अतिरिक्त निदेशक नियुक्त किया गया और अक्टूबर 2017 में विशेष निदेशक के पद पर पदोन्नत किया गया। उस समय के निदेशक वर्मा ने उनकी नियुक्ति पर आपत्ति जताई क्योंकि वे खुद जांच के दायरे में थे। लेकिन मोदी के पसंदीदा होने के कारण, उन्हें न केवल नियुक्त किया गया बल्कि पदोन्नत भी किया गया। तब से दोनों के बीच लगातार मतभेद चल रहे थे।

21 अक्टूबर को, सीबीआई ने विवादित मांस निर्यातक मोइन कुरैशी के खिलाफ जांच में बाधा डालने के लिए 2 करोड़ रुपये की रिश्वत लेने के आरोप में अस्थाना के खिलाफ एफआईआर दर्ज की और मनोज कुमार को गिरफ्तार किया, जो एक बिचौलिए के रूप में कथित तौर पर मामले

को निपटाने के लिए पैसे दे रहा था। सीबीआई के वरिष्ठ अधिकारियों ने इस अभूतपूर्व घटनाक्रम की पुष्टि की और कहा कि अस्थाना के खिलाफ 15 अक्टूबर को एफआईआर दर्ज की गई थी और कुमार ने अपना जुर्म कबूल कर लिया था और अदालत के सामने अपना बयान दर्ज कराया था।

द पायनियर ने बताया कि मजिस्ट्रेट ने रिश्वत के बारे में पूछताछ की।38 तीन दिन बाद, मोदी सरकार ने वर्मा और अस्थाना दोनों को बर्खास्त कर दिया और सीबीआई के दो शीर्ष अधिकारियों द्वारा एक-दूसरे पर लगाए गए भ्रष्टाचार के आरोपों की जांच करने के लिए सीवीसी को रास्ता दिया।

दोनों अधिकारियों को हटाकर स्वतंत्र जांच शुरू करना समझदारी भरा कदम था। लेकिन यह सब रात के अंधेरे में क्यों किया गया? यह सरकार द्वारा सीबीआई को जबरदस्ती अपने शिकंजे में लेने जैसा था, और स्वाभाविक रूप से इस कदम से पूरा देश आक्रोशित हो गया। पत्रकार रितु सारिन ने इंडियन एक्सप्रेस में अपने कॉलम में पूछा, 'क्या सीबीआई इससे भी नीचे गिर सकती है?' सारिन, जिन्होंने दो दशकों से अधिक समय तक सीबीआई की गतिविधियों पर नजर रखी थी, ने लिखा कि हालांकि हालात कुछ भी हो सकते हैं।

सीबीआई के साथ हमेशा से ही संबंध खराब थे, लेकिन इतने खराब कभी नहीं थे।39

अपने बचाव में सरकार ने अटॉर्नी-जनरल के माध्यम से कहा कि सीबीआई निदेशक और विशेष निदेशक के बीच विवाद से इस प्रमुख संस्था की गरिमा और प्रतिष्ठा धूमिल हो रही थी, और इसीलिए दोनों को छुट्टी पर भेज दिया गया। यह बात सच हो सकती है, लेकिन सच्चाई यह है कि वे जुलाई से ही आपस में लड़ रहे थे; तो फिर सरकार को अचानक यह क्यों लगा कि समय समाप्त हो गया है और आधी रात का यह नाटक अपरिहार्य हो गया है? सीबीआई द्वारा अस्थाना के खिलाफ एफआईआर दर्ज करने के एक दिन के भीतर और प्रशांत भूषण और अरुण शौरी द्वारा सीबीआई निदेशक से मुलाकात करके राफेल घोटाले की जांच के लिए स्वतः संज्ञान लेते हुए प्रारंभिक जांच शुरू करने का अनुरोध करने के कुछ ही हफ्तों के भीतर यह अचानक निर्णय क्यों लिया गया?

सीबीआई में आपसी खींचतान कोई नई बात नहीं है। पहले भी कई बार निदेशक और अन्य वरिष्ठ अधिकारियों के बीच तीखी बहसें हुई हैं, यहां तक कि लोग बैठकों से उठकर चले गए हैं। सीबीआई में हमेशा से ही मतभेदों की गुंजाइश रही है—चाहे वे वरिष्ठों के बीच हों, सहकर्मियों के बीच हों या कनिष्ठों के बीच। मैंने खुद कई मौकों पर अपने निदेशकों के खिलाफ आवाज उठाई है, लेकिन मामला कभी हाथ से नहीं निकला। हमारा मानना था कि स्वस्थ असहमति होनी चाहिए, जिसके बिना कोई भी संगठन तरक्की नहीं कर सकता। लेकिन अब सीबीआई के अंदर जो हो रहा है, वह ब्यूरो के अंदर और बाहर दोनों जगह भ्रष्ट, लालची और अनैतिक लोगों के बीच खून-खराबा है।

पिछले पांच दशकों में सीबीआई के सफर को देखने वाला कोई भी व्यक्ति यह बता सकता है कि जब भी कोई ऐसा मामला दर्ज हुआ है जिसमें कोई बड़ा राजनेता शामिल नहीं था, सीबीआई ने हमेशा ही गहन जांच की है और दोषियों को पकड़ा है। इस पुस्तक में बताई गई कहानियां इस

बात की गवाही देती हैं। धर्मा तेजा के प्रत्यर्पण से लेकर बॉम्बे बम धमाकों की जांच तक, सीबीआई का रिकॉर्ड हमें गर्व से भर देता है। अपने अस्तित्व के पहले दो दशकों में, सीबीआई इतनी सफल रही कि इसने राष्ट्रीय जांच एजेंसी (एनआईए) और विशेष धोखाधड़ी जांच कार्यालय (एसएफआईओ) जैसे नए संगठनों को जन्म दिया (जिनकी स्थापना में मैंने भी भूमिका निभाई थी)। फिर भी, जब 2जी घोटाला, कोयला आवंटन घोटाला, बोफोर्स घोटाला और सोहराबुद्दीन मामला जैसे मामलों की बात आई, तो सीबीआई का व्यवहार एक ऐसे व्यक्ति में बदल गया जिसे सर्वोच्च न्यायालय ने 'पिंजरे में बंद तोता' कहा था।

नई दिल्ली में सत्ता परिवर्तन होते ही कुछ मामले अचानक फिर से सामने आ जाते हैं। एयरसेल मैक्सिस मामले में, जिसमें पूर्व केंद्रीय वित्त मंत्री पी चिदंबरम और उनके बेटे कार्ति शामिल थे, सीबीआई ने पहली चार्जशीट दाखिल होने के चार साल बाद अचानक एक अतिरिक्त चार्जशीट में नए आरोप दायर कर दिए, जबकि मामले के तथ्यों में कोई बदलाव नहीं हुआ था। अगर वाकई तथ्य वही हैं, तो ये आरोप कांग्रेस के नेतृत्व वाली यूपीए सरकार के दौरान क्यों नहीं लगाए गए? भाजपा के सत्ता में आने के बाद ही ये आरोप क्यों लगाए जा रहे हैं?

दूसरी ओर, अगस्त 2013 में तर्कवादी और अंधविश्वास-विरोधी कार्यकर्ता नरेंद्र दाभोलकर की हत्या के मामले में, तीन आरोपियों अमोल काले, राजेश बंगेरा और अमित देगवेकर को इस आधार पर जमानत दे दी गई कि सीबीआई निर्धारित समय के भीतर आरोपपत्र दाखिल करने में विफल रही थी। इस मामले में, सीबीआई के वकील जमानत याचिका दायर करने वाले सत्र न्यायालय में भी उपस्थित नहीं हुए। आरोपपत्र दाखिल करने या कम से कम समय बढ़ाने का अनुरोध करने में सीबीआई की इस उदासीनता और अक्षमता का क्या कारण हो सकता है? एक कारण यह हो सकता है कि आरोपी हिंदू जनजागृति समिति और सनातन संस्था जैसे समूहों से जुड़े थे, जो सरकार के समर्थक होने का दावा करते हैं।

* * * * *

2015 में, भारत ने फ्रांस की डसॉल्ट एविएशन से 36 राफेल लड़ाकू विमानों की खरीद के लिए सरकार-से-सरकार हथियार समझौते पर हस्ताक्षर किए थे। विपक्षी दलों ने इस सौदे को घोटाला करार दिया है और कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गांधी ने आरोप लगाया है कि प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी इस सौदे से जुड़े भ्रष्टाचार में व्यक्तिगत रूप से शामिल हैं।

इन जेट विमानों की खरीद की प्रक्रिया यूपीए सरकार द्वारा 2007 में रक्षा मंत्री ए.के. एंटनी के नेतृत्व में शुरू की गई थी। इस मेगा डील के लिए सरकारी निविदा जारी की गई, जिसमें लॉकहीड मार्टिन के एफ-16, यूरोफाइटर के टाइफून, रूस के मिग-35, स्वीडन के ग्रिपेन, बोइंग के एफ/ए-18 और डसॉल्ट एविएशन के राफेल ने बोली लगाई। लंबी और गहन जांच के बाद, दिसंबर 2012 में बोलियां खोली गईं और डसॉल्ट एविएशन को सबसे कम बोली लगाने वाली कंपनी के रूप में चुना गया। जेट विमानों की खरीद का प्रस्ताव तैयार किया गया। योजना के अनुसार, फ्रांस में निर्मित 18 तैयार विमान खरीदे जाएंगे और 108 विमान भारत में हिंदुस्तान एयरोनॉटिक्स लिमिटेड (एचएएल) के सहयोग से निर्मित किए जाएंगे। भारतीय वायु सेना (आईएएफ) प्रमुख ने इन जेट विमानों का परीक्षण किया था और उन्हें मंजूरी दे दी थी। जेट विमानों की कीमत को

लेकर कड़ी सौदेबाजी हुई और एक अंतिम कीमत तय की गई।
प्रत्येक जेट के लिए ₹40,526 करोड़ निर्धारित किए गए थे।
लेकिन समझौते को अंतिम रूप दिए जाने से पहले ही 2014 में सत्ता परिवर्तन हो गया। अप्रैल 2015 में, फ्रांस की आधिकारिक यात्रा के दौरान, प्रधानमंत्री मोदी ने अचानक घोषणा की, 'भारत में लड़ाकू विमानों की महत्वपूर्ण परिचालन आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए, मैंने उनसे [फ्रांसीसी राष्ट्रपति फ्रांस्वा होलांद] बात की है और सरकार-से-सरकार समझौते के तहत यथाशीघ्र 36 राफेल जेट विमानों की मांग की है, जो उड़ान भरने की स्थिति में हों।'
यह घोषणा अचानक हुई, जिससे मोदी के इस सौदे में निहित स्वार्थ होने का संदेह पैदा हुआ। फरवरी 2017 में मीडिया रिपोर्टों से पता चला कि अनिल अंबानी के नेतृत्व वाले अनिल धीरूभाई अंबानी समूह की एक कंपनी और डसॉल्ट ने एक संयुक्त उद्यम (जेवी) बनाया था, और इस सौदे का ऑफसेट अनुबंध—कथित तौर पर भारत का अब तक का सबसे बड़ा अनुबंध—इसी जेवी ने हासिल किया था। डसॉल्ट अंबानी के साथ जेवी में क्यों शामिल होगा, जिनके समूह पर ₹35,000 करोड़ का कर्ज था? बताया जाता है कि नई कंपनी सौदे पर हस्ताक्षर होने से मात्र बारह दिन पहले अस्तित्व में आई थी और उसे रक्षा उपकरण निर्माण का कोई अनुभव नहीं था। डसॉल्ट ने 70 वर्षों से रक्षा उपकरण बनाने वाली सार्वजनिक क्षेत्र की एचएएल को इस अनुभवहीन कंपनी से क्यों बदला, जिसका स्वामित्व भारी कर्ज में डूबे व्यक्ति के पास था?
बातें समझ में नहीं आतीं। हालांकि, जो बात समझ में आती है, वह यह है कि अंबानी को इस सौदे से लगभग 30,000 करोड़ रुपये का फायदा हो सकता है; अमीर उद्योगपतियों के साथ मोदी की दोस्ती जगजाहिर है। और मोदी के पक्ष में यह बात भी कोई खास मायने नहीं रखती कि जब मोदी ने घोषणा की, उस समय अंबानी खुद फ्रांस में मौजूद थे।
हालात न सिर्फ बेमेल थे, बल्कि और भी बिगड़ गए। अगस्त 2018 में मीडिया रिपोर्ट्स सामने आईं जिनमें खुलासा हुआ कि हॉलैंड और मोदी के बीच समझौता ज्ञापन (MoU) पर हस्ताक्षर होने से दो दिन पहले, अनिल अंबानी की रिलायंस एंटरटेनमेंट ने हॉलैंड की पार्टनर, अभिनेत्री जूली गेयेट के साथ एक फिल्म बनाने का समझौता किया था। रुकिए, अभी और भी कुछ होना बाकी था। 22 सितंबर को, पूर्व राष्ट्रपति हॉलैंड ने मीडियापार्ट को दिए एक इंटरव्यू में चौंकाने वाला खुलासा किया कि, 'ऑफसेट पार्टनर के चुनाव में हमारी कोई भूमिका नहीं थी। यह भारतीय सरकार थी जिसने इस सेवा समूह (रिलायंस) का प्रस्ताव रखा था, और डसॉल्ट ने अंबानी के साथ बातचीत की थी। हमारे पास कोई विकल्प नहीं था; हमें जो मध्यस्थ दिया गया, हमने उसे ही स्वीकार किया।'
चौंकाने वाले आरोप, अनगिनत सवाल और सरकार की ओर से अभी तक कोई जवाब नहीं:
1. क्या नरेंद्र मोदी ने रक्षा खरीद प्रक्रियाओं को दरकिनार किया? क्या उन्होंने
उनके मंत्रिमंडल के किसी भी मंत्री, वित्त मंत्रालय या रक्षा मंत्रालय को ले लीजिए।
क्या अधिग्रहण समिति अप्रैल 2015 में अचानक यह घोषणा करने से पहले मौजूद थी कि भारत फ्रांस से 36 राफेल जेट खरीदेगा?
2. सितंबर 2016 में अंततः हस्ताक्षरित समझौता इससे बिल्कुल अलग है।

यूपीए सरकार द्वारा (2012 से) किए गए समझौते और मोदी द्वारा किए गए सौदे में प्रत्येक जेट की कीमत, मीडिया रिपोर्टों के अनुसार, मूल कीमत से तीन गुना अधिक थी। सच्चाई क्या है? प्रत्येक राफेल जेट की कीमत क्या है?

3. मोदी के समझौते में एचएएल को प्रौद्योगिकी हस्तांतरण शामिल नहीं है, जिसे महत्वपूर्ण माना जाता है।

रक्षा क्षेत्र में सरकार की 'मेक इन इंडिया' पहल को एक बड़ा बढ़ावा देने के तौर पर। क्या यह एक समझदारी भरा फैसला था?

4. इस सौदे में अनिल अंबानी की क्या भूमिका थी? क्या यह सब पूरी तरह से शुद्ध लाभ था? संयोग?

अब तक, भाजपा सरकार की इन सभी आरोपों पर प्रतिक्रिया या तो तिरस्कारपूर्ण, खारिज करने वाली या फिर असंगत और आत्म-विरोधी बयानों वाली रही है। पार्टी के प्रवक्ताओं ने तीन गुना कीमत के अंतर को यह कहकर समझाने की कोशिश की है कि हम जो जेट विमान खरीद रहे हैं, वे यूपीए सरकार द्वारा बातचीत के दौरान खरीदे गए जेट विमानों से अलग हैं—नए विमानों में भारत के लिए विशेष रूप से अनुकूलित विशेषताएं हैं। जब इन विशेषताओं के बारे में जानकारी मांगी गई, तो यह तर्क दिया गया कि विवरण गोपनीय होने के कारण प्रकट नहीं किए जा सकते और देश के सुरक्षा हितों की रक्षा के लिए इन्हें सार्वजनिक नहीं किया जाना चाहिए। कांग्रेस पार्टी ने दावा किया कि मोदी की फ्रांस यात्रा के दौरान भारत-फ्रांस द्वारा जारी संयुक्त बयान के अनुसार, 'विमान और संबंधित प्रणालियां और हथियार उसी कॉन्फ़िगरेशन में वितरित किए जाएंगे, जैसा कि भारतीय वायु सेना द्वारा परीक्षण और अनुमोदित किया गया था (जो यूपीए सरकार के दौरान लंबी बातचीत में हुआ था)।'

अगर यह बात सच है, तो जेट विमानों की विशिष्टताओं और कीमत में कोई अंतर नहीं होना चाहिए। भारत और फ्रांस दोनों के मीडिया ने इस सौदे की रिपोर्टिंग करते समय कुछ नई विशेषताओं का उल्लेख किया था, जैसे 'नए जमाने की बियॉन्ड विजुअल रेंज मिसाइल मेटियोर' और 'इजरायली हेलमेट माउंटेड डिस्प्ले', लेकिन यह समझ से परे है कि इन विशेषताओं को शामिल करने से विमान की कीमत में तीन गुना वृद्धि कैसे हो सकती है। फिर, क्या कीमत वास्तव में यूपीए द्वारा तय की गई कीमत से तीन गुना अधिक थी? हम यह नहीं कह सकते क्योंकि सरकार ने जेट विमानों की सटीक कीमत बताने से लगातार इनकार किया है। भारतीय वायु सेना के लिए लड़ाकू विमान खरीदने में करदाताओं का पैसा खर्च हो रहा है, लेकिन नागरिकों के रूप में हमें यह जानने का अधिकार नहीं है कि हमारा कितना पैसा खर्च हो रहा है - जिसका राफेल विमान की तकनीकी विशिष्टताओं से कोई लेना-देना नहीं है।

भाजपा ने मीडिया या विपक्षी दलों द्वारा लगाए गए किसी भी आरोप का खंडन नहीं किया है; बल्कि पार्टी और सरकार ने मुख्य मुद्दों से ध्यान भटकाने की कोशिश की है। होलांद के सनसनीखेज खुलासे का खंडन नहीं किया गया है, हालांकि बाद में इसमें शामिल अधिकांश पक्षों ने नुकसान को कम करने का प्रयास किया। फ्रांस सरकार और डसॉल्ट एविएशन के प्रवक्ताओं ने स्पष्ट बयान दिए कि डसॉल्ट ने स्वतंत्र निर्णय लिया था और प्रक्रियाओं का पालन किया था।

लेकिन उन्होंने यह नहीं कहा कि होलांद झूठ बोल रहे थे। बहुत समय बीत चुका है, कई सवाल उठाए गए हैं, फिर भी सरकार ने सबसे आसान काम - जांच का आदेश देना - नहीं किया है। विपक्ष, मीडिया और नागरिक समाज सभी इस सौदे की संयुक्त संसदीय समिति द्वारा जांच की मांग कर रहे हैं, लेकिन सरकार ने साफ इनकार कर दिया है।

इस स्थिति की तुलना उस प्रतिक्रिया से करें जो राजीव गांधी सरकार ने बोफोर्स सौदे में 64 करोड़ रुपये के अवैध भुगतान के आरोपों पर दी थी। 24 मार्च 1986 को भारत और स्वीडिश हथियार निर्माता एबी बोफोर्स ने भारतीय सेना के लिए 400 155 मिमी हॉवित्जर तोपों की आपूर्ति के लिए 1,437 करोड़ रुपये का सौदा किया था। 16 अप्रैल 1987 को स्वीडिश रेडियो ने दावा किया कि कंपनी ने बिचौलिए ओटावियो क्वात्रोची (एक इतालवी व्यवसायी, जो कथित तौर पर राजीव गांधी की इतालवी पत्नी सोनिया गांधी के करीबी थे) के माध्यम से शीर्ष भारतीय राजनेताओं और रक्षा अधिकारियों को रिश्वत देकर यह सौदा हासिल किया था। इससे आक्रोश फैल गया और विपक्ष ने गांधी पर सीधे भ्रष्टाचार का आरोप लगाया, हालांकि उन्होंने लोकसभा में कहा था कि कोई रिश्वत नहीं दी गई थी और न ही इस सौदे में कोई बिचौलिए शामिल थे। अनुबंध की जांच के लिए एक जेपीसी गठित करने की मांग उठाई गई। 6 अगस्त को सरकार ने यह मांग स्वीकार कर ली और केंद्रीय मंत्री बी शंकरानंद की अध्यक्षता में एक जेपीसी का गठन किया गया।

अगर स्वीडिश मीडिया में लगे आरोपों और जनता के भारी विरोध के आधार पर जेपीसी (न्याय समिति) का गठन किया जा सकता है, तो स्वाभाविक रूप से यह सवाल उठता है कि मोदी सरकार ने राफेल सौदे की जांच के लिए इसी तरह की कार्रवाई क्यों नहीं की? एक आम नागरिक इस बारे में क्या सोचता है? पूरा देश जेपीसी की मांग कर रहा है, लेकिन प्रधानमंत्री मोदी चुप हैं, जबकि उनकी सरकार के अन्य मंत्री दावा कर रहे हैं कि इस सौदे में कुछ भी गलत नहीं है।

राफेल मामला सुप्रीम कोर्ट तक पहुंचा। याचिकाकर्ताओं में पूर्व केंद्रीय मंत्री यशवंत सिन्हा, अरुण शौरी (दोनों भाजपा से संबंधित थे) और वकील प्रशांत भूषण शामिल थे। उन्होंने सीबीआई द्वारा अदालत के निर्देशानुसार जांच की मांग की। 14 दिसंबर 2018 को मुख्य न्यायाधीश रंजन गोगोई की अध्यक्षता वाली तीन-न्यायाधीशों की पीठ, जिसमें न्यायाधीश संजय किशन कौल और कुरियन जोसेफ शामिल थे, ने सभी याचिकाएं खारिज कर दीं। इस फैसले की आलोचना हुई क्योंकि ऐसा प्रतीत हुआ कि यह आंशिक रूप से सरकार द्वारा अदालत में सीलबंद लिफाफे में प्रस्तुत की गई तथ्यात्मक रूप से गलत जानकारी पर आधारित था, जिसे याचिकाकर्ताओं को सत्यापित करने का अवसर नहीं मिला। फैसले में दावा किया गया कि राफेल सौदे से संबंधित फाइल की जांच भारत के नियंत्रक एवं महालेखा परीक्षक (सीएजी) ने की थी और इसकी रिपोर्ट संसद की लोक लेखा समिति को सौंपी गई थी, जो रिपोर्ट का एक 'संशोधित संस्करण' सार्वजनिक करेगी।

ये सभी 'तथ्य' गलत थे। फैसले के समय, सीएजी की रिपोर्ट को अंतिम रूप नहीं दिया गया था और इसलिए, इसे संसद में पेश नहीं किया गया था। महत्वपूर्ण बात यह है कि सीएजी की रिपोर्ट को सार्वजनिक करने से पहले पीएसी द्वारा उसके कुछ हिस्सों को संपादित करने का कोई पूर्व

उदाहरण नहीं था। ऐसा प्रतीत होता है कि सुप्रीम कोर्ट सरकार द्वारा सीलबंद लिफाफे में दिए गए 'गुप्त' नोट से गुमराह हो गया था। सरकार ने अपनी गलती का एहसास किया और अपने फैसले में कुछ 'व्याकरण संबंधी त्रुटियों' को सुधारने के लिए सर्वोच्च न्यायालय में एक आवेदन दायर किया। इस फैसले की अन्य आधारों पर भी आलोचना की गई, उदाहरण के लिए, अंबानी भाई-बहनों, मुकेश और अनिल के नेतृत्व वाले कॉर्पोरेट समूहों में कंपनियों के बीच अंतर न करने के लिए, जो अलग हो चुके थे और अलग-अलग व्यापारिक समूहों का नेतृत्व करते थे।

याचिकाकर्ताओं ने सर्वोच्च न्यायालय की उसी पीठ द्वारा दिए गए फैसले की समीक्षा की मांग की। ग्यारह महीने बाद, 14 नवंबर 2019 को, मुख्य न्यायाधीश के पद से गोगोई के सेवानिवृत्त होने से ठीक पहले, पीठ अपने फैसले पर अडिग रही। सरकार के समर्थकों ने इसे 'जीत' के रूप में देखा, जबकि अपीलकर्ता सिन्हा, शौरी और भूषण निराश तो थे, लेकिन पूरी तरह से नाखुश नहीं थे। मूल याचिकाकर्ता, वकील मनोहर लाल शर्मा और विपिन ढांडा चुप रहे। शर्मा चुप रहने वालों में से नहीं हैं और उन्होंने भारत के सर्वोच्च न्यायालय सहित कई अदालतों में कई जनहित याचिकाएं (PIL) दायर की हैं। वे कोयला ब्लॉक आवंटन घोटाले में याचिकाकर्ता थे और उन्होंने राष्ट्रीय न्यायिक आयोग की वैधता को भी चुनौती दी थी। मई 2015 में एक मामले में, उन्हें 'घोटालेबाजी से गैरजिम्मेदार' करार दिया गया था और माफी मांगने से पहले उन्हें नई जनहित याचिकाएं दायर करने के अधिकार से लगभग वंचित कर दिया गया था।

इस मामले में, सिन्हा, शौरी और भूषण के हस्तक्षेप के कारण शर्मा को 'सफलता' मिली। लेकिन उन्होंने सफलता का दावा किया। मैं इसे सफलता क्यों कह रहा हूँ? आखिरकार, मूल याचिका और पुनर्विचार याचिका दोनों खारिज कर दी गईं। यहाँ यह ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि पुनर्विचार याचिका और मूल रिट याचिका दोनों को खारिज करने का एक मुख्य कारण यह था कि रिट याचिका भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के तहत दायर की गई थी। आदेश में कहा गया था: 'हमारा यह मत है कि पुनर्विचार याचिकाएँ निराधार हैं और तदनुसार इन्हें एक बार फिर खारिज किया जाता है, इस बात पर फिर से जोर देते हुए कि हमारा मूल निर्णय भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के दायरे में आधारित था।'

हमारे संविधान की बुनियादी जानकारी रखने वाले भी जानते होंगे कि अनुच्छेद 32 तभी लागू हो सकता है जब हमारे मौलिक अधिकारों का उल्लंघन हो। इस मामले में यह तर्क दिया गया कि राफेल अनुबंध में किसी के भी मौलिक अधिकारों का उल्लंघन नहीं हुआ है। यह बात समझ से परे है कि शर्मा की याचिका को शुरू में ही खारिज क्यों नहीं किया गया और उस पर विचार क्यों किया गया। आखिरकार, सर्वोच्च न्यायालय ने 10 अक्टूबर 2018 को यह टिप्पणी की थी कि याचिका में दिए गए कथनों और सामग्री की पर्याप्तता से संतुष्ट न होने के बावजूद केवल सीमित जांच ही शुरू की गई थी। फिर सर्वोच्च न्यायालय ने इस मामले में हस्तक्षेप क्यों किया? इस संदर्भ में दो अनुत्तरित प्रश्न हैं। पहला, मूल याचिकाकर्ताओं का उद्देश्य क्या था? दूसरा, सर्वोच्च न्यायालय ने अनुच्छेद 32 के तहत अपनी रिट शक्तियों का प्रयोग ऐसे मामले में क्यों किया जिसमें उसे कथनों की पर्याप्तता पर संदेह था?

न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ का सहमति वाला लेकिन अलग फैसला याचिकाकर्ताओं सिन्हा, शौरी

और भूषण की जीत का प्रतीक था। अब सीबीआई इस मामले में शामिल हो गई थी और हस्तक्षेपकर्ताओं ने ब्यूरो से कार्रवाई की मांग की। राफेल मामला अब निःसंदेह सीबीआई के हाथ में है। जोसेफ ने, सर्वोच्च न्यायालय के एक ओबिटर डिक्टम (न्याया न्यायाधीश द्वारा व्यक्त की गई राय जो कानूनी रूप से एक मिसाल के तौर पर बाध्यकारी होती है) से कहीं अधिक, इस तरह की कार्रवाई का आदेश दिया। उन्होंने निष्कर्ष में निर्देश देते हुए कहा: "...जिस फैसले की समीक्षा की मांग की गई है, वह प्रथम प्रतिवादी (सीबीआई) को ... शिकायत पर ... कानून के अनुसार कार्रवाई करने से नहीं रोकेगा।"

इसके अतिरिक्त, जोसेफ ने कहा कि पुलिस की शक्तियां सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों से कहीं अधिक व्यापक हैं (जो अनुच्छेद 32 की सीमाओं से बंधी हैं)। पुलिस की शक्तियों का विस्तृत वर्णन करते हुए उन्होंने कहा कि ये शक्तियां सर्वोच्च न्यायालय की शक्तियों से कहीं अधिक व्यापक हैं और उनसे अतिक्रम नहीं करतीं। इस प्रकार, सीबीआई नवंबर 2013 के ललिता कुमारी फैसले के अनुसार अपने दम पर कार्रवाई कर सकती है। इस मामले में, सर्वोच्च न्यायालय की पांच न्यायाधीशों की संविधान पीठ (जिसमें गोगोई भी शामिल थे) ने पुलिस द्वारा आपराधिक मामलों की जांच के संबंध में विभिन्न दिशानिर्देश निर्धारित किए थे, पुलिस अधिकारी की जांच पर लगे प्रतिबंधों और सीमाओं को हटाया था और प्रथम सूचना रिपोर्ट (एफआईआर) दर्ज करना अनिवार्य कर दिया था। अगर मैं सीबीआई का संयुक्त निदेशक (भ्रष्टाचार विरोधी) होता—यह पद मैंने 1992-93 में संभाला था—तो राफेल मामले में जोसेफ के सहमतिपूर्ण लेकिन अलग फैसले को देखते हुए, मैं भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 17ए के अनुपालन में यह सिफारिश करता कि सीबीआई को सिन्हा, शौरी और भूषण द्वारा दायर शिकायत के आधार पर प्रारंभिक जांच शुरू करने के लिए सरकार के कार्मिक विभाग (डीओपी) से अनुमति लेनी चाहिए। राफेल मामला पूरी तरह से सीबीआई के जिम्मे है और ब्यूरो को किसी भी तरह की शर्मिंदगी से बचाने के लिए, उसे एफआईआर दर्ज करने के लिए डीओपी की अनुमति लेनी चाहिए। मोदी सरकार में ऐसा होगा या नहीं, यह एक बिल्कुल अलग सवाल है।

* * * * *

अपराध हमेशा राज्य के विरुद्ध होता है, न कि व्यक्तिगत नागरिकों के विरुद्ध। इसीलिए अपराध की जांच करना, आरोपियों पर मुकदमा चलाना और अपराधियों को न्याय के कटघरे में लाना राज्य का दायित्व है, जिसे पुलिस, सीबीआई और अन्य एजेंसियों के माध्यम से पूरा किया जाता है। उल्लिखित परिस्थितियों में, जब भ्रष्टाचार के कई आरोप हों, तो सीबीआई को स्वतः संज्ञान लेकर या स्वयं ही मामलों की जांच करनी चाहिए। हालांकि, वर्तमान व्यवस्था में, सीबीआई अक्सर सरकार के आदेश या अनुमति का इंतजार करती है। यदि किसी मामले में, सीबीआई निचली अदालत में आरोपी का दोष सिद्ध करने में विफल रहती है और अभियोजन कार्यवाही के विरुद्ध निर्णय प्राप्त होता है, तो प्रथा यह है कि उच्च न्यायालय में अपील दायर की जाए और मामले को कानूनी माध्यम से अंतिम निष्कर्ष तक पहुंचाया जाए। लेकिन कई मामलों में, हमने देखा है कि सीबीआई अपील दायर नहीं करती है। वे कौन से मामले थे? और किन मामलों में शक्तिशाली राजनेता शामिल थे?

सीबीआई ने मुंबई विशेष न्यायालय द्वारा अमित शाह (वर्तमान में केंद्रीय गृह मंत्री) को बरी करने के फैसले के खिलाफ अपील दायर नहीं की।

सोहराबुद्दीन शेख फर्जी मुठभेड़ मामला। 41 फिर भी, राजीव गांधी और कुछ अन्य कांग्रेस नेताओं से जुड़े बोफोर्स घोटाले के मामले में, सीबीआई ने ब्रिटेन स्थित हिंदुजा बंधुओं और एक स्वीडिश फर्म को नए आधार पर बरी करने वाले दिल्ली उच्च न्यायालय के आदेश को चुनौती देने के लिए सर्वोच्च न्यायालय का रुख किया।

बारह साल के अंतराल के बाद सबूत!42 हालांकि, सुप्रीम कोर्ट को देरी का कोई औचित्य नहीं मिला और उसने सीबीआई की अपील खारिज कर दी। 'हम याचिकाकर्ता द्वारा इस विशेष अनुमति याचिका (एसपीएल) को दाखिल करने में 4,522 दिनों की अत्यधिक देरी को समझाने के लिए दिए गए कारणों से संतुष्ट नहीं हैं,'

न्यायालय ने फैसला सुनाया। 43

अगस्त 2012 में, एक निचली अदालत ने गुजरात सरकार में भाजपा मंत्री माया कोडनानी को राज्य के सबसे भीषण सांप्रदायिक नरसंहार में मुख्य साजिशकर्ता मानते हुए 2002 में अहमदाबाद के नरोदा पाटिया इलाके में 97 मुसलमानों की हत्या के मामले में दोषी ठहराया और उन्हें 28 साल की जेल की सजा सुनाई। दोषी ने गुजरात उच्च न्यायालय में अपील दायर की और 20 अप्रैल 2018 को अदालत ने उन्हें सभी आरोपों से बरी कर दिया और भाजपा नेता रिहा हो गईं। उन्हें संदेह से परे दोषी पाए जाने से लेकर सभी आरोपों से बरी होने तक, यह 180 डिग्री का उलटफेर कैसे हुआ? सीबीआई के पास उच्च न्यायालयों द्वारा बरी किए जाने के खिलाफ अपील दायर करने के लिए 90 दिनों की अवधि होती है। इस पुस्तक को लिखते समय, ऐसी कोई जानकारी नहीं थी कि सीबीआई ने कोडनानी की बरी होने के खिलाफ अपील दायर की है।

जब हम इस किताब को पूरा कर रहे थे, तभी खबर आई कि सोहराबुद्दीन फर्जी मुठभेड़ मामले में, जिसकी जांच 2010 में गुजरात आपराधिक जांच विभाग (सीआईडी) से सीबीआई द्वारा अपने हाथ में लेने के बाद से की जा रही थी, मुंबई की एक विशेष सीबीआई अदालत ने सभी 22 आरोपियों को बरी कर दिया है। विशेष सीबीआई न्यायाधीश एस.जे. शर्मा ने आरोपियों को बरी करते हुए खेद व्यक्त किया और कहा कि वे असहाय थे क्योंकि सीबीआई आरोपियों और कथित अपराधों के बीच संबंध साबित नहीं कर सकी। तीन लोग मारे गए हैं—सोहराबुद्दीन शेख, तुलसीराम प्रजापति और कौसर बी—और तेरह साल बाद भी किसी को दोषी नहीं पाया गया है, मानो किसी ने उनकी हत्या ही न की हो। यह फैसला भारतीय न्याय प्रणाली की घोर विफलता प्रतीत होता है और सत्ता में बैठे लोगों के हस्तक्षेप की बू आती है। सबसे पहले, रहस्यमय साजिशों के जरिए अमित शाह को क्लीन चिट मिल गई, जबकि मुकदमे के अंतिम चरण तक, यानी नवंबर 2018 तक, अभियोजन पक्ष के अंतिम गवाहों में से एक ने उनका नाम लिया था, पूर्व डीआईजी दह्याजी गोबरजी वंजारा और

राजकुमार पांडियन को प्रमुख षड्यंत्रकारियों में से एक बताया गया है।44

दूसरे, न्यायाधीश ने शाह को दूसरी बार 'क्लीन चिट' दे दी - जो उस समय केंद्रीय गृह मंत्री और मोदी सरकार में दूसरे सबसे शक्तिशाली व्यक्ति थे - जबकि उन पर मुकदमा नहीं चल रहा था।

इसके अलावा, फैसले में एक विरोधाभासी बयान था। इसमें कहा गया कि अभियोजन पक्ष ने मामले में आरोपियों को दोषी साबित करने की पूरी कोशिश की, लेकिन गवाहों के मुकर जाने पर वे बेबस थे। ऐसे मामले में जिसमें 92 गवाह पहले ही मुकर चुके थे, सीबीआई का यह कर्तव्य होना चाहिए था कि वह इस बात की अलग से जांच करे कि इतने सारे गवाह मुकर क्यों गए और क्या उन पर कोई दबाव डाला गया था। ऐसा कोई प्रयास नहीं किया गया। अभियोजन पक्ष ने मामले को पूरी तरह से बिखरने दिया।

जब तक यह किताब छपकर आपके हाथों में पहुंचेगी, तब तक हमें पता चल जाएगा कि सीबीआई ने इस मामले में अपील दायर की है या नहीं।

निष्कर्ष स्पष्ट है। सवाल भी स्वाभाविक हैं। किस मामले की जांच सीबीआई करती है और किसे बंद कर देती है? सीबीआई उच्च न्यायालयों में कब अपील करती है और कब नहीं? ब्यूरो अतिरिक्त आरोपपत्र कब दाखिल करता है? और कब वह बुनियादी सबूत पेश करने में भी विफल रहता है, जिससे आरोपी को स्वतः जमानत मिल जाती है? इन सवालों के जवाब से पता चलेगा कि क्या सीबीआई के फैसलों को नियंत्रित करने वाला कोई रहस्यमय हाथ है और क्या वह हाथ उस कुख्यात साजिश का हिस्सा है, जो अपराधी-राजनेता-अधिकारी गठजोड़ का प्रतीक है।

सोहराबुद्दीन-कौसर बी जुड़वां हत्याकांड: 2005

सोहराबुद्दीन मामले ने एक और चिंताजनक पहलू को उजागर किया है—गवाहों और जांचकर्ताओं के बीच का संबंध, जो अक्सर एक ही सोच के नहीं होते। कभी-कभी हमारे व्यक्तिगत अनुभव हमें बहुत जटिल मुद्दों को बेहतर ढंग से समझने में मदद करते हैं। अगर मैं खुद ऐसी स्थिति में न होता जहां मुझे भी विरोधी रुख अपनाना पड़ता, तो शायद मैं विरोधी गवाहों को लेकर फैली चिंता को पूरी तरह से न समझ पाता।

यह सन् 1996 की शुरुआत की बात है, अप्रैल 1996 में मेरी सेवानिवृत्ति से कुछ ही समय पहले। मैं नई दिल्ली के तिलक मार्ग स्थित भारत के मुख्य पासपोर्ट अधिकारी भास्कर मित्रा के कार्यालय में गया था। भारतीय विदेश सेवा (आईएफएस) अधिकारी मित्रा पिछले तीन वर्षों में हमारी टीम - विशेष कार्य बल - के एक महत्वपूर्ण सदस्य बन गए थे। सीबीआई को विदेश भागे आतंकवादियों की जांच और गिरफ्तारी के लिए हर संभव सहायता की आवश्यकता थी और मित्रा ने सीबीआई के काम को सुगम बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उस दिन जब मैं उनके कार्यालय से निकला, तो वे मुझे विदा करने के लिए अपने प्रथम मंजिल के कार्यालय से सरकारी पार्किंग स्थल तक आए।

पार्किंग एरिया के अंदर, हमें एक अकेली चटख लाल रंग की मारुति 800 दिखाई दी। उसका ड्राइवर आगे की सीट पर लेटा हुआ था, पैर फैलाए झपकी ले रहा था। मारुति कार का दिखना उस समय ध्यान देने लायक था, क्योंकि उन दिनों एम्बेसडर कारें ही ज़्यादा चलती थीं। इसके अलावा, इस मारुति पर गृह मंत्रालय (MHA) का स्टिकर लगा हुआ था, जिससे मुझे शक हुआ। भास्कर और मैं दोनों गाड़ी के पास गए, ड्राइवर को जगाया और उससे कुछ सवाल पूछे। मेरा यह शक सही निकला कि MHA के असली स्टिकर का गलत इस्तेमाल किया जा रहा है। यह मामला गंभीर था। दिल्ली उस समय आतंकवादियों के लिए सुरक्षित पनाहगाह थी। कुछ ही

मिनटों में तिलक मार्ग पुलिस स्टेशन को सूचना दे दी गई और एक अधिकारी मौके पर पहुँच गया। उसने मेरी शिकायत दर्ज कर ली। औपचारिकताएँ एक घंटे में पूरी हो गईं और मैं केंद्रीय सरकारी कार्यालय (CGO) परिसर में अपने कार्यालय वापस चला गया।

अप्रैल का महीना आया और मैं सेवानिवृत्त हो गया।

चौदह साल बाद, मुझे घोर आश्चर्य हुआ जब मुझे गवाही देने के लिए पटियाला हाउस अदालत में बुलाया गया। दो दशकों से अधिक के इस लंबे अंतराल में दिल्ली पुलिस से किसी ने भी मुझसे इस मामले के संबंध में संपर्क नहीं किया था और अचानक मुझे अभियोजन पक्ष के गवाह के रूप में गवाही देने की गंभीर जिम्मेदारी निभाने के लिए अदालत में तुरंत पेश होने के लिए बुलाया गया। अभियोजक ने मुझे बताया कि रिकॉर्ड के अनुसार, जांच के दौरान मुझसे अभियोजन पक्ष के गवाह के रूप में पूछताछ की गई थी। अपने दावे को साबित करने के लिए उन्होंने मेरा बयान भी पेश किया। एकमात्र गड़बड़ी यह थी कि मुझे याद नहीं था कि मैंने कोई बयान दर्ज कराया था।

जब मैंने बयान पढ़ा, तो मुझे 16 साल पहले घटी घटनाओं का वर्णन तथ्यात्मक रूप से सही लगा। या यूँ कहूँ कि मेरी जानकारी और स्मृति के अनुसार सही लगा। लेकिन इसे जाँच अधिकारी (IO) ने मेरी उपस्थिति में दर्ज नहीं किया था। यह सुनकर भले ही अजीब लगे, लेकिन मैं IO से कभी मिला भी नहीं था। जो बयान मेरा बयान होने का दावा कर रहा था, वह वास्तव में IO का वह बयान था जिसे उसने मेरा बयान होने की सबसे अधिक संभावना समझी थी। इस बिंदु पर मैं बयान को चुनौती दे सकता था, लेकिन मैंने ऐसा नहीं किया। मैंने बयान के अनुसार ही गवाही दी, भले ही तकनीकी रूप से वह मेरा नहीं था। मुझे उस ड्राइवर की पहचान भी बतानी थी जिसे मैंने 16 साल पहले कुछ समय के लिए देखा था। ऐसी परिस्थितियों में, यदि मैंने अभियोजन पक्ष के साथ सहयोग नहीं किया होता, तो सैद्धांतिक रूप से मुझे विरोधी गवाह घोषित किया जा सकता था।

भारत में भारतीय दंड संहिता के तहत दोषसिद्धि दर लगभग 46 प्रतिशत है, जिसमें केरल की दोषसिद्धि दर 84 प्रतिशत के साथ सर्वश्रेष्ठ है और बिहार की सबसे खराब (10 प्रतिशत) है। मैंने जिन घटनाओं का वर्णन किया है, वे आंशिक रूप से यह स्पष्ट करती हैं कि कई राज्यों में दोषसिद्धि दर इतनी कम क्यों है।

सोहराबुद्दीन मामले में, कई गवाहों ने अपने पहले के बयानों के विपरीत बयान दिए, और कई ने जांचकर्ताओं के दावों का खंडन किया। संक्षेप में, सोहराबुद्दीन और उनकी पत्नी कौसरबी की नवंबर 2005 में गुजरात में हत्या कर दी गई थी। जांच एक साल तक ठप्प पड़ी रही और गुजरात जैसे 'शराबबंदी वाले' राज्य में एक सार्वजनिक स्थान पर कथित तौर पर नशे में धुत एक पुलिसकर्मी द्वारा कुछ महत्वपूर्ण जानकारी लीक होने के बाद फिर से शुरू हुई। तब से, कानूनी प्रक्रिया के उतार-चढ़ाव ने पूरे देश का ध्यान आकर्षित किया। लेकिन इस मामले को अद्वितीय बनाने वाली बात इसकी जांच और मुकदमा है, जिसके देश की कानूनी प्रक्रियाओं और आपराधिक न्याय प्रणाली के कामकाज पर महत्वपूर्ण और खतरनाक प्रभाव पड़े।

यह एक ऐसा व्यक्ति था जिस पर हत्या, दंगा, अपहरण, रिश्वतखोरी और जबरन वसूली जैसे कई

जघन्य अपराधों का आरोप था। उसका अपहरण किया गया, उसे एक राज्य से दूसरे और फिर दूसरे राज्य ले जाया गया, और फिर उसकी पत्नी के साथ एक 'मुठभेड़' में मार डाला गया, क्योंकि कथित तौर पर उसे गुजरात के राजनीतिक रूप से शक्तिशाली लोगों के 'रहस्यों' की जानकारी थी। यह आरोप पूरी तरह निराधार नहीं था, क्योंकि यह एक तथ्य था कि एक साल तक दोनों हत्याओं का पता नहीं चल पाया था।

किसी अपराध की जांच या तो पुलिस को सूचना मिलने के बाद की जाती है, या फिर पुलिस द्वारा स्वतः संज्ञान लेकर (या अपनी मर्जी से) की जाती है। जांच के निष्कर्ष उस मजिस्ट्रेट को सूचित किए जाते हैं जिसके अधिकार क्षेत्र में अपराध दर्ज किया गया पुलिस थाना आता है। मजिस्ट्रेट रिपोर्ट का संज्ञान लेते हैं, उसके गुण-दोष पर विचार करते हैं और फिर आरोपों पर अंतिम निर्णय लेते हैं। हालांकि, इस मामले को उच्च न्यायालयों - सत्र न्यायालय से लेकर उच्च न्यायालय और अंततः सर्वोच्च न्यायालय तक - में चुनौती दी जा सकती है कि क्या मामले की सुनवाई होगी या नहीं।

सोहराबुद्दीन और कौसर बी की दोहरी हत्याओं की जांच पहले पांच वर्षों तक गुजरात की आईपीएस अधिकारी गीता जौहरी के नेतृत्व में हुई। किसी भी जांच के दौरान, कुछ अनसुलझे मुद्दे उठ सकते हैं और अदालतें अंतरिम आदेश जारी करती हैं जो जांच एजेंसी पर बाध्यकारी होते हैं। सोहराबुद्दीन मामले में भी ऐसे ही अंतरिम अदालती आदेश आए। एक बार हस्तक्षेप करते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने संदेह जताया कि जांच में बाधा डाली जा रही है। इसलिए, उसने मामला सीबीआई को सौंप दिया और बाद में सुनवाई मुंबई स्थानांतरित कर दी गई। सर्वोच्च न्यायालय के आदेश का पालन करते हुए, सीबीआई ने मामले की गहन जांच की और हत्याओं के कथित आरोपी व्यक्तियों को गिरफ्तार कर 38 लोगों के खिलाफ मामला दर्ज किया। महत्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने शक्तिशाली और प्रभावशाली अमित शाह के अलावा जौहरी द्वारा चार्जशीट में नामित 22 लोगों के अतिरिक्त 15 अन्य लोगों के नाम भी दर्ज किए। यह सब 2013 में हुआ।

गुजरात पुलिस और सीबीआई द्वारा आठ साल की जांच के बाद, सीबीआई अदालत में मुकदमा शुरू हुआ। मामले की सुनवाई करने वाले पहले न्यायाधीश का मुकदमे के दौरान अचानक तबादला कर दिया गया, जबकि सुप्रीम कोर्ट का आदेश था कि सोहराबुद्दीन मामले की सुनवाई शुरू से अंत तक एक ही न्यायाधीश द्वारा की जाए। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, अगले न्यायाधीश बृजगोपाल हरकिशन लोया की संदिग्ध परिस्थितियों में मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु की जांच की मांग को दबा दिया गया। तीसरे न्यायाधीश ने मुकदमा पूरा किया और 2014 में फैसला सुनाया, जो संयोगवश उनका आखिरी फैसला था। उन्होंने सभी 22 आरोपियों को बरी कर दिया। अंत में, सीबीआई को करारी हार का सामना करना पड़ा। विशेष सीबीआई न्यायाधीश एस.जे. शर्मा ने सीबीआई पर राजनीतिक रूप से प्रेरित जांच का आरोप लगाया। उन्होंने कहा, 'सीबीआई के सामने एक पूर्व नियोजित सिद्धांत और एक ऐसी योजना थी जिसका उद्देश्य राजनीतिक नेताओं को फंसाना था।'

अदालत ने आपराधिक वकील माजिद मेमन द्वारा उठाए गए इस प्रासंगिक बिंदु पर भी विचार नहीं किया कि मुकदमे की लंबी कार्यवाही के दौरान गवाहों को अपने पक्ष में कर लिया गया था।

विशेष न्यायाधीश अजय गोयल ने हाल ही में एक फैसले में (जिसकी रिपोर्ट 6 जनवरी 2019 को द इंडियन एक्सप्रेस में प्रकाशित हुई थी) हत्या के प्रयास के आरोप में तीन व्यक्तियों को बरी करते हुए कहा: 'एक बार फिर, यह एक ऐसा मामला है जो जांच में किसी चूक या अभियोजन पक्ष द्वारा मामले को साबित करने के प्रयास में किसी कमी के कारण नहीं, बल्कि समाज में प्रचलित गवाहों की शत्रुतापूर्ण प्रवृत्ति के कारण विफल हो गया है।'

गवाहों के मुकर जाने के कारण अदालतों में कई जांचें विफल हो रही हैं। यह स्पष्ट है कि गवाहों को बहला-फुसलाकर जांच में बाधा डाली जा सकती है और अपराधियों की मदद करवाई जा सकती है।

मुकदमा कैसे चलता है? सबसे पहले, निचली अदालत गवाहों के बयानों (पुलिस द्वारा आपराधिक प्रक्रिया न्यायालय की धारा 161 के तहत दर्ज किए गए) का मूल्यांकन करती है ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि आरोपी पर मुकदमा चलाया जाना चाहिए या नहीं। ये गवाहों के हस्ताक्षर रहित बयान होते हैं और जांच अधिकारी इस बात का प्रमाण पत्र दर्ज करता है कि उसने गवाहों द्वारा दिए गए बयानों को पढ़ लिया है और उन्हें यथावत दर्ज किया गया है। जब मुकदमा शुरू होता है, और अदालत में दर्ज और प्रस्तुत किए गए बयान विश्वसनीय माने जाते हैं, तो न्यायाधीश मुकदमा शुरू करता है। हालांकि, कटघरे में, गवाह अपने ऊपर लगाए गए बयानों को देने से इनकार कर सकते हैं। अदालत में शपथ पर गवाह जो कहते हैं, वही अंततः अदालत के फैसले का आधार बनता है। यहां तक कि जांच अधिकारी भी अदालत को शपथ पर बताता है कि गवाहों ने वही कहा है जो उसने दर्ज किया है, और जब वह उनके बयान पढ़कर सुनाता है तो वे इसकी पुष्टि करते हैं। लेकिन भारतीय न्यायाधीश गवाह के बयान को ही विश्वसनीय मानता है।

ब्रिटिश शासन के दौरान भी आम भारतीय पुलिसकर्मी पर भरोसा नहीं किया जाता था, और आज भी नहीं किया जाता। यह एक दुखद स्थिति है। इसमें कोई संदेह नहीं कि कुछ पुलिसकर्मी जबरदस्ती करते हैं, यातना के तृतीय-श्रेणी के तरीके अपनाते हैं, मनगढ़ंत सबूत पेश करते हैं और उन्हें बढ़ा-चढ़ाकर पेश करते हैं। लेकिन पुलिस सेवा में ईमानदार लोग भी हैं। पुलिसकर्मियों द्वारा किए गए अत्याचारों की खबरें मीडिया में सुर्खियां बटोरती हैं। आम नागरिक का पुलिस पर भरोसा बहुत कम है। फिर भी, आम तौर पर, शपथ लेकर झूठ बोलने वाले गवाह पर भी विश्वास कर लिया जाता है। एक समाज के रूप में हमें आपराधिक न्याय प्रणाली में सुधार लाने के तरीकों पर गंभीरता से विचार करना होगा ताकि सच्चाई कायम रहे।

भारत में कई लोगों का पुलिस व्यवस्था पर से विश्वास उठने का एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि कई पुलिसकर्मी अपने राजनीतिक आकाओं के इशारे पर काम करते थे। इसके कई कारण हैं। जब यह प्रावधान किया गया कि पुलिस को दिया गया बयान या इकबालिया बयान टीएडीए के तहत कानूनी रूप से सबूत के तौर पर मान्य है, तो कुछ पुलिस अधिकारियों ने इसका दुरुपयोग करके निर्दोष लोगों को फंसाया। देश के कानून निर्माताओं ने टीएडीए को आसानी से समाप्त होने दिया। मेरी राय में, यह एक तात्कालिक प्रतिक्रिया थी, कोई समाधान नहीं।

अमेरिका में, यदि संघीय जांच ब्यूरो (एफबीआई) के समक्ष दिया गया कोई भी बयान झूठा पाया जाता है, तो संबंधित व्यक्ति को कारावास की सजा हो सकती है। मेरा मानना है कि भारत में भी

ऐसी ही सख्त व्यवस्था आवश्यक है। गवाहों को बिना हस्ताक्षर वाले बयान देने के बजाय, कानूनी रूप से केवल हस्ताक्षरित बयान देने के लिए बाध्य किया जाना चाहिए, जिनका पालन करना उनके लिए बाध्यकारी हो। नार्को और पॉलीग्राफ परीक्षणों का उपयोग पुलिस और गवाहों को झूठे बयान देने से रोकने के लिए किया जा सकता है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, आपराधिक प्रक्रिया संहिता (सीआरपीसी) में संशोधन करना होगा। यह आसान नहीं होगा, लेकिन उन स्थितियों का अंत होना चाहिए जहां निचली अदालतों में गवाहों को मुकर जाना घोषित कर दिया जाता है।

हम शायद सिंगापुर में अपनाई जाने वाली पद्धतियों को अपना सकते हैं, जिसका आपराधिक कानून हमारे कानून के समान है। उस देश में, लोक अभियोजक प्रत्येक गवाह से अदालत में पेश होने से पहले और पुलिस द्वारा आरोप पत्र दाखिल करने से पहले पूछताछ करता है। यह दोबारा जांच सुनिश्चित करने में मदद करती है कि गवाह और अभियोजन पक्ष दोनों एक ही बात पर सहमत हैं। एक और सुरक्षा उपाय यह है कि बयान की दो मूल प्रतियां लिखकर या छापकर एक प्रति को किसी सुरक्षित स्थान पर सीलबंद रखा जाए। यदि बयान की सत्यता पर कोई विवाद उत्पन्न होता है, तो इस प्रति का उपयोग जांचकर्ता और गवाह दोनों कर सकते हैं। इस संबंध में वीडियो बयान रिकॉर्ड करना भी उपयोगी होगा।

भारत में लाखों मामलों को बर्बाद करने वाले गवाहों के मुकर जाने की प्रवृत्ति के पीछे के मूल कारणों की हमें गहन जांच करनी चाहिए। दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 25ए के तहत अभियोजन निदेशक (डीपी) की नियुक्ति का प्रावधान है। इस निदेशक और उनके अधीन कार्यरत निकाय को इस बात की अलग-अलग जांच करनी चाहिए कि क्या कोई गवाह धमकियों, दबाव या प्रलोभन के कारण मुकर गया है। इस मुद्दे पर इस पुस्तक में आगे विस्तार से चर्चा की जाएगी।

मेरी सेवानिवृत्ति से एक वर्ष पूर्व, 17 अप्रैल 1995 को, सीबीआई के एक सेवारत अधिकारी द्वारा अभूतपूर्व कदम उठाते हुए, मैंने टाइम्स ऑफ इंडिया के संपादकीय पृष्ठ पर आपराधिक-राजनेता-अधिकारी गठजोड़ के खिलाफ एक लेख लिखा। यह वह समय था जब बोफोर्स घोटाले और प्रतिभूति घोटाले में शामिल राजनेताओं की ठीक से जांच या अभियोग चलाने में विफल रहने के कारण सीबीआई की छवि बेहद खराब थी। सीबीआई कर्मचारियों के एक आंतरिक सम्मेलन में, मैंने सुझाव दिया कि हमें जनता के सामने पहले से कहीं अधिक पारदर्शी होना चाहिए और उन्हें अपने कामकाज और चुनौतियों के बारे में जानकारी देनी चाहिए।

मेरे इस तीखे बयान ने सबका ध्यान खींचा। टाइम्स ऑफ इंडिया के हिंदी सहयोगी दैनिक नवभारत टाइम्स ने 26 अप्रैल 1995 को मेरे लेख का हवाला देते हुए एक संपादकीय प्रकाशित किया, वहीं प्रमुख बंगाली दैनिक आनंदबाजार पत्रिका ने आश्चर्य व्यक्त किया कि एक सेवारत लोक सेवक यह कैसे कह सकता है कि नौकरशाह अपराध गिरोहों के साथ मिलीभगत करते हैं, अपने राजनीतिक आकाओं के साथ उनके नाजायज संबंध हैं और वे अपराध में सक्रिय रूप से सहायक हो सकते हैं। इसके बदले में, ऐसे नौकरशाहों को न केवल संरक्षण दिया जाता है, बल्कि पदोन्नति, महत्वपूर्ण पदों, कार्यकाल विस्तार, राज्यपाल द्वारा नियुक्तियों और 'लाभदायक' पूर्व-नियमों के आधार पर नियुक्तियों के रूप में पुरस्कृत भी किया जाता है। इस प्रक्रिया में, ऐसे

सरकारी कर्मचारी सत्ता के गलियारों में अकल्पनीय प्रभाव रखते हैं और निश्चित रूप से, अकल्पनीय पैमाने पर धन कमाते हैं। मैंने अपनी शिकायत इस आशा के साथ समाप्त की कि देश के मतदाता जल्द ही इस सांठगांठ के खिलाफ विद्रोह करेंगे और भ्रष्ट लोगों को उनके आरामदायक पदों से बेदखल कर देंगे।

जन क्रांतियां समय-समय पर होती रही हैं, लेकिन भ्रष्टाचार के मोर्चे पर कुछ भी बदला हुआ नहीं दिखता, जो राजनेताओं और नौकरशाहों के बीच सरकारी अधिकारियों द्वारा सुगम बनाए गए गठजोड़ का परिणाम है। मेरे लेख के प्रकाशन के 23 साल बाद, सितंबर 2018 में, राजनीति के अपराधीकरण का अध्ययन करने के लिए गठित एन.एन. वोहरा समिति की रिपोर्ट का हवाला देते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि आपराधिक नेटवर्क समानांतर सरकारें चला रहे हैं। न्यायालय ने टिप्पणी की: 'राजनीति का अपराधीकरण अपने सबसे चरम रूप में 1993 के बॉम्बे सीरियल बम धमाकों के दौरान महसूस किया गया, जो आपराधिक गिरोहों, पुलिस, सीमा शुल्क अधिकारियों और उनके राजनीतिक संरक्षकों के एक व्यापक नेटवर्क के मिलीभगत का परिणाम थे।'

पाठकों को याद होगा कि मेरे नेतृत्व में सीबीआई ने 1993 के बॉम्बे बम धमाकों के मामलों की जांच की थी, एक ऐसी जांच जिस पर मुझे गर्व है और मेरा मानना है कि यह सीबीआई द्वारा की गई सर्वश्रेष्ठ जांचों में से एक थी।

नरेंद्र मोदी के भ्रष्टाचार-विरोधी चुनावी वादे पर सत्ता में आने के बाद भी, भ्रष्ट नौकरशाह अपराधियों को संरक्षण देना जारी रखे हुए हैं, चाहे वे आतंकवादी हों या वित्तीय जालसाज। इस चुनाव में अन्ना हजारे के नेतृत्व वाले जन आंदोलन का भी योगदान था। अप्रैल 2011 में, सामाजिक कार्यकर्ता अन्ना हजारे ने लाखों लोगों का नेतृत्व करते हुए रामलीला मैदान में अनिश्चितकालीन भूख हड़ताल की, जिसमें उन्होंने स्वीडन जैसे देशों में प्रचलित लोकपाल प्रणाली की तर्ज पर एक स्वतंत्र भ्रष्टाचार-विरोधी निकाय, लोकपाल की स्थापना की मांग की। यूपीए सरकार द्वारा लोकपाल और लोकायुक्त अधिनियम को लागू करने के आश्वासन के बाद हजारे ने अपनी भूख हड़ताल समाप्त की। यह अधिनियम दिसंबर 2013 में संसद के दोनों सदनों से पारित हुआ और 2014 के नव वर्ष के दिन राष्ट्रपति प्रणब मुखर्जी ने भी इसे मंजूरी दे दी। न्यायमूर्ति एन संतोष हेगड़े (सर्वोच्च न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश और कर्नाटक के लोकायुक्त), प्रशांत भूषण (सर्वोच्च न्यायालय के अधिवक्ता) और अरविंद केजरीवाल (उस समय सूचना के अधिकार (आरटीआई) अधिनियम का उपयोग करने वाले एक कार्यकर्ता) द्वारा तैयार किए गए नए कानून में एक जन लोकपाल की स्थापना का प्रावधान किया गया है, जो सरकार की पूर्व अनुमति की प्रतीक्षा किए बिना सार्वजनिक पदों पर आसीन शीर्ष व्यक्तियों द्वारा किए गए भ्रष्टाचार के कृत्यों की त्वरित जांच शुरू करेगा और उसे पूरा करेगा।

चुनाव से पहले भ्रष्टाचार के खिलाफ इतना शोर मचाने वाले प्रधानमंत्री मोदी को लोकपाल की स्थापना को अपनी प्राथमिकताओं की सूची में सबसे ऊपर रखना चाहिए था। लेकिन इसके विपरीत, एक आरटीआई आवेदन के जवाब में यह खुलासा हुआ कि मोदी की अध्यक्षता में लोकपाल की चयन समिति की पहली बैठक मार्च 2018 में हुई - मई 2014 में भाजपा के

नेतृत्व वाली एनडीए सरकार के सत्ता में आने के 45 महीने बाद। यूपीए सरकार द्वारा शुरू किए गए इस कार्य को आगे बढ़ाने में इतनी लंबी देरी क्यों हुई?

2014 के आम चुनाव प्रचार के दौरान, मोदी और अन्य भाजपा नेताओं ने बार-बार दावा किया था कि सत्ता में आने के बाद भ्रष्टाचार का खात्मा किया जाएगा और सभी स्तरों पर भ्रष्ट अधिकारियों के खिलाफ कड़ी कार्रवाई की जाएगी। इन चुनावी वादों को पूरा करने के बजाय, मोदी का नाम हाल के दो सबसे बड़े घोटालों में घसीटा गया है—हीरा व्यापारी नीरव मोदी द्वारा किया गया बैंक घोटाला और राफेल विमान सौदा (जिसका विस्तृत विवरण पहले ही दिया जा चुका है)।

31 जनवरी 2018 को, आयकर अधिकारियों ने मशहूर हीरा व्यापारी नीरव मोदी के दिल्ली, सूरत और जयपुर स्थित कार्यालयों पर छापा मारा, जो पहले से ही आयकर विभाग की निगरानी में थे। 5 फरवरी को, सीबीआई ने व्यापारी पर धोखाधड़ी के एक बड़े मामले में आरोप लगाया। उनके, उनके भाई निशाल मोदी, उनकी पत्नी अमी और उनके चाचा मेहुल चिनुभाई चोक्सी के खिलाफ आपराधिक साजिश और धोखाधड़ी के आरोप में एफआईआर दर्ज की गई, जिससे सरकारी खजाने को ₹280 करोड़ का नुकसान हुआ। कुछ ही दिनों में, सरकारी स्वामित्व वाले पंजाब नेशनल बैंक (पीएनबी) ने सीबीआई में शिकायत दर्ज कराई कि उसके अपने अधिकारियों ने व्यापारी और उसके सहयोगियों को विदेशों के बैंकों से ऋण दिलाने में मदद करने के लिए अवैध गारंटी दस्तावेज उपलब्ध कराकर नियमों का उल्लंघन किया था। पीएनबी के अनुसार, धोखाधड़ी की राशि चौंका देने वाली ₹11,000 करोड़ थी।

इस खबर ने पूरे देश को झकझोर दिया। यह संभवतः भारत का अब तक का सबसे बड़ा बैंक घोटाला था, जिसे एक चहेते व्यवसायी और एक हाई-प्रोफाइल सोशलाइट ने अंजाम दिया था, जिनके उत्पाद हॉलीवुड और बॉलीवुड के फिल्मी सितारों के बीच समान रूप से लोकप्रिय थे। एक ऐसे देश में जहां मध्यम वर्ग के लोग करों के बोझ तले दबे हुए हैं, जहां किसान अपेक्षाकृत छोटी रकम के ऋण चुकाने में असमर्थ होने के कारण आत्महत्या कर रहे हैं, देश के दूसरे सबसे बड़े सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक में इस तरह का बड़ा घोटाला किसी हिंसक आतंकवादी कृत्य से कम क्रूर अपराध नहीं था। इस घोटाले का चौंकाने वाला पहलू अपराध स्वयं नहीं था, बल्कि यह तथ्य था कि उसी वर्ष 23 जनवरी को, धोखाधड़ी का खुलासा होने से कुछ दिन पहले, नीरव मोदी को प्रधानमंत्री मोदी के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलते हुए देखा गया था। वह भारतीय कॉरपोरेट जगत के नेताओं के एक प्रतिनिधिमंडल के सदस्य के रूप में दावोस में विश्व आर्थिक मंच (डब्ल्यूईएफ) की वार्षिक बैठक में भाग ले रहे थे, जिसे व्यापारिक नेताओं का दुनिया का सबसे बड़ा सम्मेलन कहा जाता है। बात यहीं खत्म नहीं हुई। सोशल मीडिया पर वायरल हुए एक वीडियो में प्रधानमंत्री को 2015 में अपने आवास पर स्वर्ण मुद्राकरण योजना के शुभारंभ के अवसर पर धनी और प्रभावशाली व्यक्तियों की एक सभा को संबोधित करते हुए दिखाया गया है, जिसमें उन्होंने चोकसी को 'मेहुल भाई' कहकर संबोधित किया, जो घोटालेबाज के साथ उनकी निकटता और सहजता को दर्शाता है। नीरव मोदी और मेहुल चोकसी दोनों ही देश छोड़कर भाग गए थे, जाहिर तौर पर किसी और कारण से।

घोटाले का पता चलने से कुछ समय पहले कानून से बचने के लिए।45 चोक्सी कथित तौर पर एक कैरेबियन द्वीप में है जबकि नीरव मोदी यूके में जेल में है।

एक अन्य उद्योगपति, विजय माल्या, जो अपनी विलासितापूर्ण जीवनशैली के लिए जाने जाते हैं, इस समय ब्रिटेन में हैं। शाही अंदाज में जीवन बिताने वाले इस व्यक्ति को सीबीआई 9000 करोड़ रुपये के ऋण डिफ़ॉल्ट के मामले में ढूंढ रही है। वह मार्च 2016 में भारत से भाग गए थे। सीबीआई उन्हें कानूनी कार्यवाही के लिए वापस लाने के प्रयास कर रही है। एक विशेष अदालती सुनवाई के बाद, पत्रकारों से बात करते हुए, माल्या ने वित्त मंत्री अरुण जेटली का नाम भ्रष्टाचार कांड में घसीटते हुए दावा किया कि भारत छोड़ने से पहले उन्होंने मंत्री से 'मामला सुलझाने' के लिए मुलाकात की थी। संयोग से, माल्या राज्यसभा के सदस्य भी रह चुके हैं। वे अपने गृह राज्य कर्नाटक से दो बार निर्दलीय सदस्य के रूप में राज्यसभा के लिए चुने गए थे - पहली बार 2002 में जनता दल (धर्मनिरपेक्ष) और कांग्रेस के समर्थन से और फिर 2010 में जनता दल (धर्मनिरपेक्ष) और भाजपा के समर्थन से।

माल्या के दावे के बाद, विपक्षी दलों ने सरकार पर हमला बोलते हुए आरोप लगाया कि माल्या की भारत छोड़ने की योजना की जानकारी होने के बावजूद, जेटली ने उसके खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की, जिससे संकेत मिलता है कि इसमें किसी तरह का लेन-देन हुआ होगा। मंत्री ने स्पष्ट रूप से इन आरोपों का खंडन किया, लेकिन जनता की धारणा यही बनी रही कि सरकार पर भरोसा नहीं किया जा सकता। लेकिन आम लोगों के मन में एक सवाल बना हुआ है: सरकार ने माल्या और नीरव मोदी के प्रत्यर्पण में समान उत्साह क्यों नहीं दिखाया?

आगे का रास्ता?

3 फरवरी 2019 को कोलकाता में पुलिस कमिश्नर राजीव कुमार के आवास के सामने अभूतपूर्व नाटकीय दृश्य देखने को मिले। सीबीआई के 35 से अधिक अधिकारी उन्हें गिरफ्तार करने के लिए वहां पहुंचे थे। यह बहुत ही असंभव था कि उनके जैसे हाई-प्रोफाइल व्यक्ति के आवास पर तैनात सुरक्षाकर्मी अचानक इतने सारे लोगों को अंदर घुसने देते। कोलकाता पुलिस ने सीबीआई टीम को अंदर नहीं जाने दिया। उन्होंने एक कदम आगे बढ़कर सीबीआई अधिकारियों को हिरासत में लिया, उन्हें वैन में बिठाया और वहां से भगा दिया। यह कितना चौंकाने वाला दृश्य था: देश की सबसे बड़ी जांच एजेंसी की टीम एक बड़े शहर के पुलिस प्रमुख के आवास पर आती है और खुद गिरफ्तार होकर अपमानित हो जाती है! भारत में ऐसा पहले कभी नहीं हुआ। एक बार फिर सीबीआई को शर्मिंदगी उठानी पड़ी और आम लोगों की नजरों में उसकी छवि को गहरा धब्बा लगा।

घटनाक्रम के कुछ ही घंटों के भीतर, पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी स्वयं पुलिस आयुक्त के आवास पर पहुंचीं और कुमार की रक्षा के लिए दीवार की तरह खड़ी हो गईं। जल्द ही सीबीआई और ममता बनर्जी के बीच आरोपों का सिलसिला शुरू हो गया, जिसमें दोनों ने एक-दूसरे पर भ्रष्टाचार, कुप्रथा और जांच में असहयोग का आरोप लगाया।

राज्य सरकारों के प्रति निष्ठा रखने वाले पुलिसकर्मियों और केंद्र सरकार के अधीन काम करने वाले सीबीआई अधिकारियों के बीच अतीत में कई बार टकराव हुए हैं। इन दोनों पक्षों के बीच

अक्सर कड़वाहट भरा, प्रेम-घृणा का रिश्ता रहा है, भले ही उन्हें एक-दूसरे के अनूठे कौशल और विशेषज्ञता का सम्मान करते हुए, व्यक्तिगत अहंकार से ऊपर उठकर, मिलकर काम करना पड़ता है। दोनों ही समान रूप से महत्वपूर्ण हैं और एक-दूसरे के पूरक हैं, और मतभेदों को बंद दरवाजों के पीछे आंतरिक रूप से सुलझाया जाना चाहिए। मेरी दशकों की सेवा में राज्य पुलिस और सीबीआई के बीच सार्वजनिक रूप से ऐसा अशोभनीय टकराव कभी नहीं हुआ।

कोलकाता की घटना सीबीआई संस्था की गिरफ्त में आई गिरावट का संकेत है। क्या सीबीआई की छवि और भी खराब हो सकती है? इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि अब आगे का रास्ता क्या है? इस संगठन का भविष्य क्या है? या फिर, इंडियन एक्सप्रेस में लिखने वाले सेवारत आईपीएस अधिकारी अभिनव कुमार के शब्दों में, क्या सीबीआई 'गुलामी की संस्कृति', 'कमजोर और राजनीतिक बल' या इससे भी बदतर स्थिति में बनी रहेगी?

'पुलिस तो बस तत्कालीन सरकार के बंधुआ सेवक हैं?' 46

खैर, मुझे इन सवालों के जवाब नहीं पता। फिर भी, मैं सीबीआई के लिए एक दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का प्रयास करूंगा और उन सुधारों की रूपरेखा बताऊंगा जिनकी मुझे तत्काल आवश्यकता महसूस होती है। मैं यह भी समझता हूं कि इन सुधारों का सुझाव देने वाला मैं पहला और आखिरी व्यक्ति नहीं हूं।

1. सीबीआई को कानूनी दर्जा: इस पुस्तक के दूसरे अध्याय में मैंने इसकी व्याख्या की है। सीबीआई और सीवीसी दोनों की शुरुआत कार्यकारी आदेशों से हुई थी। सीवीसी को कानूनी दर्जा 2003 में ही मिला, जबकि सीबीआई के पास अभी तक कोई कानूनी दर्जा नहीं है। सीबीआई अधिनियम के बिना, सीबीआई निदेशक और अन्य अधिकारी कार्मिक प्रशिक्षण विभाग के प्रशासनिक नियंत्रण और पर्यवेक्षण में ही रहेंगे, जिसका नेतृत्व वर्तमान में किया जा रहा है। प्रधानमंत्री कार्यालय। इन परिस्थितियों में, सीबीआई निदेशक सर्वथा प्रधानमंत्री के ही खास व्यक्ति होंगे।

2. जन लोकपाल की स्थापना और उसमें सीवीसी और सीबीआई दोनों को नियुक्त करना। इस पर कोई समझौता नहीं हो सकता—यह भ्रष्टाचार उन्मूलन की दिशा में पहला कदम है, लेकिन भारत में हम अभी तक यह पहला कदम नहीं उठा पाए हैं। स्वीडन में सौ साल से भी अधिक समय पहले लोकपाल प्रणाली बनाई गई थी और इसने उस स्कैंडिनेवियाई देश को काफी हद तक भ्रष्टाचार मुक्त सरकार प्रदान की है। वर्षों पहले, 1963 में, इसी तरह की सोच के साथ, कांग्रेस सांसद अभिषेक मनु सिंहवी के पिता, स्वर्गीय लक्ष्मी मल सिंहवी ने लोकपाल की स्थापना का सुझाव दिया था, लेकिन देश इसे वास्तविकता में बदलने के लिए 60 से अधिक वर्षों से संघर्ष कर रहा है। राफेल सौदे के बारे में सोचें। यदि लोकपाल होता, तो जांच बहुत पहले शुरू हो सकती थी। सीबीआई को केवल सीवीसी को रिपोर्ट करना चाहिए और दोनों संगठनों को लोकपाल के दायरे में होना चाहिए। जब स्वीडन में लोकपाल संस्था इतनी सफल हो सकती है, तो यह मानने का कोई कारण नहीं है कि भारत में लोकपाल प्रभावी नहीं होगा। एक सच्चा स्वतंत्र लोकपाल भ्रष्टों का नाश करने और निर्दोषों का रक्षक बनने की क्षमता रखता है। और देश में लोकपाल संस्था को प्रभावी बनाने के लिए ईमानदार, सक्षम और निष्पक्ष लोगों की कोई कमी नहीं है।

3. सीबीआई निदेशक की नियुक्ति: आगे का रास्ता

सीबीआई की सच्ची स्वतंत्रता और सक्रियता उसके प्रमुख या निदेशक के माध्यम से ही संभव है। संगठन के कामकाज में हस्तक्षेप तो हमेशा होता रहेगा, लेकिन आवश्यक कानूनी समर्थन और ढांचागत सुरक्षा प्राप्त एक सशक्त और निडर नेता बिना किसी दबाव के अपना काम कर सकता है। जांच अधिकारी एक अन्य महत्वपूर्ण नेता है जिसकी संरचना को रक्षा और समर्थन करना चाहिए। गहन जांच और मुकदमे की कड़ी निगरानी जांच अधिकारी के दो महत्वपूर्ण कर्तव्य हैं। जब किसी हाई-प्रोफाइल मामले की जांच हो रही हो, तो अगर सीबीआई अधिकारी को विश्वास हो कि वह कानून के दायरे में है, तो किसी भी राजनीतिक हस्तक्षेप का डटकर मुकाबला किया जा सकता है। अधिकारियों को यह याद दिलाना जरूरी है कि कानून उनका स्वामी है, न कि राजनीतिक नेता।

इसलिए, मेरा मानना है कि सीबीआई को एक संगठन के रूप में नहीं, बल्कि उसके नेतृत्व को दोषी ठहराया जाना चाहिए। सीबीआई के शुरुआती नेताओं ने विश्व स्तरीय जांच एजेंसी की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके स्मरण और सम्मान के लिए यहाँ कुछ संक्षिप्त उल्लेख करना उचित होगा।

सबसे पहले जिस नाम का जिक्र करना जरूरी है, वह है डीआईजी कुर्बान अली का, जिन्होंने सिंध पुलिस के कुछ अधिकारियों को इस खूंखार बल में परिवर्तित किया। फिर एक मुंबईकर थे जिन्होंने डीएसपीई को गति प्रदान की। हालांकि, सीबीआई के निर्माण का वास्तविक श्रेय डीपी कोहली को जाता है, जिन्होंने 1955 से 1967 के बीच 12 वर्षों तक इसका नेतृत्व किया, पहले डीएसपीई के महानिरीक्षक के रूप में और फिर सीबीआई के निदेशक के रूप में। वे दूरदर्शी, अत्यंत परिश्रमी और बेदाग व्यक्तिगत नैतिकता वाले व्यक्ति थे। वे हर मायने में सीबीआई के निर्माता थे। मिश्रित कैडर प्रणाली प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री के साथ-साथ उनकी भी दूरदृष्टि थी। कोहली ने ईमानदार अधिकारियों को भर्ती किया और दिखावटी लोगों को बाहर रखा। उन्होंने राज्यों से अधिकारियों का चयन किया और उन्हें स्थायी आधार पर भर्ती किया। उनके नेतृत्व में, सीबीआई को एक विस्तृत नियमावली के साथ औपचारिक रूप से संरचित किया गया। दुर्भाग्य से, उनकी सेवानिवृत्ति के तुरंत बाद, भ्रष्टाचार शुरू हो गया।

1968 से 1971 तक पद पर रहे दूसरे सीबीआई निदेशक एफ.वी. अरुल के कार्यकाल के दौरान, नई दिल्ली के राजनेताओं ने सीबीआई के भ्रष्टाचार में हाथ डालना शुरू कर दिया। उन्होंने संगठन पर अपना अधिकार जमाने और यह संदेश देने की कोशिश की कि कुछ राजनेता कानून से ऊपर हैं। के.बी. सहाय के नेतृत्व वाली बिहार सरकार में मंत्रियों के खिलाफ भ्रष्टाचार पर अय्यर आयोग की रिपोर्ट के बाद, अरुल ने उनमें से कुछ के कार्यालयों में छापेमारी की। प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने अचानक उन्हें तमिलनाडु वापस भेज दिया। राजनीतिक व्यवस्था में हर बदलाव के साथ सीबीआई प्रमुख का पद बदलता रहा। 1971 से 1977 तक सीबीआई निदेशक रहे देवेंद्र सेन को अपने 'अतिवाद' के लिए जेल जाना पड़ा और आपातकाल काल (जून 1975 से मार्च 1977) के दौरान कथित तौर पर प्रधानमंत्री के इशारे पर किए गए कुछ कार्यों के लिए उन पर भ्रष्टाचार के आरोप भी लगे।

जनता युग के दौरान, सेन के उत्तराधिकारी पी.वी. नरसिम्हन सीबीआई प्रमुख बने। वे एक प्रतिभाशाली अधिकारी थे, लेकिन इंदिरा गांधी की गिरफ्तारी और बाद में रिहाई ने उनका कार्यकाल समय से पहले ही समाप्त कर दिया। फिर, जॉन लोबो ने सीबीआई की कमान संभाली। वे संगठन में अनुभवी थे और इसे चलाने के लिए बेहतर रूप से सक्षम थे। आर.डी. सिंह, अपनी बेदाग छवि के बावजूद, जनवरी 1980 में इंदिरा गांधी के सत्ता में लौटने के सात महीने बाद ही पद छोड़ दिया, क्योंकि उन्होंने आपातकाल के दौरान कथित दुर्व्यवहारों से संबंधित उनके प्रशासन के खिलाफ मामलों की जांच की थी। उनके बाद जे.एस. बावा ने पदभार संभाला, जिन्होंने तत्कालीन प्रधानमंत्री को आर.डी. सिंह के नेतृत्व में सीबीआई द्वारा शुरू किए गए आपराधिक मुकदमों से 'बचने' में मदद की। अक्टूबर 1984 में इंदिरा गांधी की हत्या के बाद बावा को दरकिनार कर दिया गया और उनकी जगह मुंबई से मोहन जी कात्रे को नियुक्त किया गया। उन्होंने राजीव गांधी और गृह सचिव आर.डी. प्रधान और कैबिनेट सचिव बी.जी. देशमुख - दोनों उन्हीं की तरह महाराष्ट्र कैडर से - के साथ घनिष्ठ संबंध स्थापित किए। कात्रे के कार्यकाल के दौरान, सीबीआई एक आतंकवाद विरोधी बल भी बन गई, जिसने पंजाब और अन्य सीमावर्ती क्षेत्रों के लिए दो प्रकोष्ठ स्थापित करके अपने संचालन का विस्तार किया।

इसके बाद, केंद्र सरकारों का कार्यकाल छोटा रहा और सीबीआई निदेशकों का भी—एपी मुखर्जी (तीन महीने), राजेंद्र शेखर (एक वर्ष से कम), एसके दत्ता (एक वर्ष)। यह वास्तव में दुर्भाग्यपूर्ण था क्योंकि इन सभी ने सीबीआई में लंबे समय तक काम किया था और वे संगठन की संस्कृति से भली-भांति परिचित थे। यदि वे लंबे समय तक पद पर रहते, तो सीबीआई को लाभ होता। सीबीआई में निदेशक के लिए पूर्व अनुभव की आवश्यकता को समाप्त करते हुए, विजय करण (जिन्होंने 1990 में सीबीआई का नेतृत्व किया) और विजय रामा राव, दोनों को संगठन में कोई पूर्व अनुभव न होने के बावजूद, शीर्ष पद पर नियुक्त किया गया। हालांकि बाद वाले ने कुछ अच्छे प्रशासनिक कदम उठाए, लेकिन जैन हवाला डायरी और 133 करोड़ रुपये के यूरिया घोटाले की सीबीआई की गड़बड़ी के कारण उनकी विश्वसनीयता कम हो गई, जिसमें प्रधानमंत्री पीवी नरसिम्हा राव के परिजनों को लाभ पहुँचाया गया था। रामा राव ने सीबीआई को 'तत्कालीन सरकार के बंधुआ सेवकों' का अड्डा बनाकर उसकी छवि को धूमिल कर दिया और आज भी उसकी यही स्थिति बनी हुई है, जिसका परिणाम सीबीआई के दो शीर्ष अधिकारियों, आलोक वर्मा और राकेश अस्थाना के बीच अनुचित कटुता के रूप में सामने आया है, जिसमें दोनों एक-दूसरे पर भ्रष्टाचार का आरोप लगा रहे हैं।

ऐतिहासिक विनीत नारायण फैसले (47) ने सीबीआई सुधार की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम उठाया था। दुर्भाग्य से, मेरी राय में, सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के परिणामस्वरूप ऐसे निदेशकों की नियुक्ति हुई जिन्होंने सीबीआई की प्रतिष्ठा को और धूमिल किया। सत्ता में बैठे राजनेताओं ने संगठन के प्रमुखों की नियुक्तियों को निर्देशित किया। मेरी सिफारिश है कि सीबीआई प्रमुख की भर्ती एक पारदर्शी प्रक्रिया के माध्यम से की जानी चाहिए, जो आरटीआई अधिनियम के तहत पूछताछ के लिए खुली हो। चयन प्रक्रिया के लिए एक वस्तुनिष्ठ और गणितीय मॉडल विकसित किया जाना चाहिए, जिसमें वरिष्ठता, सीबीआई और भ्रष्टाचार विरोधी जांच में अनुभव और सबसे

बढ़कर, व्यक्तिगत ईमानदारी को महत्व दिया जाए।
इस प्रकार के मॉडल की रूपरेखा इस प्रकार है:
• सबसे वरिष्ठ पात्र उम्मीदवार के आवंटन का वर्ष होना चाहिए
1967 के समान, 10 अंक दिए गए और धीरे-धीरे कम किए गए।
1970 बैच के छात्रों को 10 अंक दिए जा सकते हैं और 1970 बैच के छात्रों को 7 अंक मिलेंगे।
• सीबीआई में अनुभव के लिए सेवा के प्रत्येक वर्ष के लिए 5 अंक दिए जाएंगे।
जबकि राज्य भ्रष्टाचार विरोधी ब्यूरो, राज्य/केंद्रीय संगठनों में सतर्कता निकायों, जांच आयोगों और लेखापरीक्षा में विशेषज्ञता में सेवा के लिए क्रमशः प्रत्येक वर्ष की सेवा के लिए 4, 3, 2 और 1 अंक दिए जा सकते हैं।
• दस वर्षों की निरंतर ईमानदारी का मूल्यांकन निम्नलिखित के लिए अंक आवंटित करके किया जा सकता है।
प्रत्येक वर्ष मूल्यांकन करने पर औसत निकाला जाता है—'बेदाग' ईमानदारी के लिए 10 अंक दिए जा सकते हैं, जबकि 'निस्संदेह' होने पर 9 अंक और 'कोई प्रतिकूल बात नहीं' होने पर 8 अंक दिए जा सकते हैं। यदि उम्मीदवार की ईमानदारी 'संदिग्ध' या 'खराब' मानी जाती है, तो अंक बहुत कम या शून्य भी हो सकते हैं।
• चूंकि वार्षिक गोपनीय रिपोर्ट (एसीआर) में प्रविष्टियाँ व्यक्तिपरक हो सकती हैं
मूल्यांकन किए जा रहे अधिकारियों और रिपोर्टिंग अधिकारियों की निकटता के आधार पर, अंकों को अंतिम रूप देने से पहले इन रिपोर्टों की सीवीसी और सीबीआई द्वारा क्रॉस-चेक की जानी चाहिए।
• प्रशंसा पत्र और अनुशंसा प्रमाण पत्र
सरकार को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता और उसे एक अंक दिया जा सकता है।
• 10 वर्षों की अवधि में एसीआर के समग्र मूल्यांकन के आधार पर,
उत्कृष्ट श्रेणी के उम्मीदवार को 10 अंक, बहुत अच्छे श्रेणी के उम्मीदवार को 8 अंक, जबकि अच्छे, औसत और औसत से नीचे श्रेणी के उम्मीदवारों को क्रमशः 6, 4 और 2 अंक दिए जाएंगे। प्रतिकूल एसीआर होने पर 2 अंक काटे जाएंगे।
• पद के चयन हेतु गठित पैनल में शामिल अधिकारियों की अंतिम सूची
इस प्रकार सीबीआई निदेशक की नियुक्ति निष्पक्ष और पारदर्शी तरीके से की जाएगी, जिससे मनमानी और राजनीतिक हस्तक्षेप की गुंजाइश कम हो जाएगी।
एक बार निष्पक्ष योग्यता-आधारित प्रणाली के बाद निदेशक की नियुक्ति हो जाने पर, उनका कार्यकाल निश्चित होना चाहिए ताकि मुख्य अधिकारी को अचानक बर्खास्तगी की चिंता किए बिना मामलों की सुनवाई करने की सुविधा मिल सके। यह नियम सीबीआई और सीवीसी दोनों के प्रमुखों पर लागू होना चाहिए। भर्ती प्रक्रिया पारदर्शी होनी चाहिए और आरटीआई अधिनियम के तहत पूछताछ के लिए खुली होनी चाहिए; कुछ जानकारी मामले के आधार पर रोकी जा सकती है, लेकिन जानकारी देने पर कोई पूर्ण प्रतिबंध नहीं होना चाहिए। एक मिश्रित कैडर प्रणाली होनी

चाहिए—सीबीआई का नेतृत्व ऐसे अधिकारियों द्वारा किया जाना चाहिए जिन्हें या तो यूपीएससी द्वारा सीधे भर्ती किया गया हो (और इसलिए, राजनीतिक हस्तक्षेप से मुक्त हों) या राज्य पुलिस बलों से प्रतिनियुक्ति पर भेजा गया हो। यह एक संतुलित दृष्टिकोण होगा और इससे ज्ञान, विशेषज्ञता और शिक्षण का स्वस्थ आदान-प्रदान होगा।

कुछ अन्य सुधार भी हैं जिनकी तत्काल आवश्यकता है और उनका विवरण यहां दिया गया है।

भ्रष्टाचार विरोधी कानूनों की समीक्षा और उनमें सुधार की आवश्यकता है। भारत ने भ्रष्टाचार के खिलाफ अपना पहला कानून 1947 में बनाया था। उस कानून में 1988 में संशोधन किया गया। यह कानून तीन दशक बाद 2018 तक अडिग रहा, जब सरकार ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 में महत्वपूर्ण बदलाव किए। इन संशोधनों ने भ्रष्टाचार विरोधी मुख्य कानून का स्वरूप पूरी तरह बदल दिया है। लेकिन क्या इन बदलावों ने भ्रष्टाचार के खिलाफ लड़ाई को आसान बनाया है या कठिन?

भ्रष्टाचार की परिभाषा और उसके लिए दंड में बदलाव किया गया है, जिसके अनुसार वर्तमान और पूर्व लोक सेवकों के विरुद्ध सभी कार्रवाइयों, अर्थात् 'पूछताछ और छानबीन' के लिए सक्षम प्राधिकारी की पूर्व अनुमति आवश्यक होगी (केवल रिश्वत लेते हुए पकड़े जाने की स्थिति में ही अपवाद है)। परिभाषा में यह बदलाव ईमानदारों की रक्षा करेगा, लेकिन भोले-भाले और गलती करने वाले लोक सेवकों को दंडित करेगा। सीबीआई में रहते हुए मैंने जो सबसे महत्वपूर्ण बात सीखी है, वह यह है कि कमजोर लोग अभियोजन के लिए आसान शिकार होते हैं, जबकि शक्तिशाली लोगों पर शायद ही कभी कार्रवाई होती है। अधिकांश लोक सेवाओं को इस तरह से बनाया गया है कि अमीर, भ्रष्ट और शक्तिशाली लोग लाभ उठाते हैं, जबकि ईमानदार लोग कुचले जाते हैं। भ्रष्टाचार विरोधी कानून को इस संस्कृति को जारी रखने और मजबूत करने का साधन नहीं बनना चाहिए।

मेरी दूसरी चिंता भ्रष्टाचार के दंड से संबंधित है। एक समय भ्रष्टाचार को चोरी, डकैती, हत्या और बलात्कार जैसे जघन्य अपराध नहीं माना जाता था। इसलिए, दंड न्यायाधीशों के विवेक पर निर्भर था। अधिकतम छह महीने का कारावास था। 1988 के कानून में 'छह महीने से कम नहीं, बल्कि पांच साल तक का दंड' निर्धारित किया गया था, लेकिन फिर भी इसमें न्यायाधीशों की 'गलत सहानुभूति' की गुंजाइश बनी रही, जैसा कि सर्वोच्च न्यायालय ने बताया। 1980 में, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश डी.ए. देसाई और ए.ओ. कौशल ने चेतावनी दी थी: 'न्यायालय को इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं होना चाहिए कि कानून द्वारा निर्धारित सीमाओं के भीतर पर्याप्त सजा देने के मामले में विवेकाधिकार प्रदान करते हुए, विधायिका सजा प्रक्रिया में गलत सहानुभूति के मामलों को पाते हुए न्यूनतम सजा निर्धारित करके और न्यूनतम से कम सजा देने के लिए विशेष कारणों को दर्ज करना अनिवार्य बनाकर न्यायालय के विवेकाधिकार को सीमित कर देती है।'

कानून में 2018 के संशोधन में लिखा है: '... कम से कम तीन साल की कैद, जो सात साल तक बढ़ सकती है और जुर्माना भी लगाया जा सकता है।' 1967 में छह महीने या उससे कम की कैद से लेकर 1988 में कम से कम छह महीने की कैद और अंत में 2018 में कम से कम तीन साल की कैद तक का सफर तय हुआ है। चिंता की बात यह है कि इन संशोधनों के माध्यम

से संसद ने फिर से पूर्व अनुमति का प्रावधान लागू कर दिया है, जिससे जांच पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। वर्तमान में अभियोजन से पहले मंजूरी का प्रावधान पहले से ही मौजूद है और यह संशोधन सेवारत सरकारी कर्मचारियों के अलावा सेवानिवृत्त सरकारी कर्मचारियों को भी इसके दायरे में लाता है। गंभीर अपराध की 'जांच और पड़ताल' करने की अनुमति में भी बाधा आ सकती है और इसमें देरी हो सकती है, जिससे सबूत गायब हो सकते हैं या उनमें छेड़छाड़ हो सकती है। पूर्व अनुमति की आवश्यकता भी निरर्थक प्रतीत होती है क्योंकि यदि जांच अधिकारी प्रारंभिक जांच भी नहीं कर सकता, तो वह सक्षम प्राधिकारी को यह समझाने के लिए प्रासंगिक सबूत कैसे जुटाएगा कि सरकारी कर्मचारी की जांच की जानी चाहिए? इसलिए नए कानून में संशोधन की आवश्यकता है।

अन्य महत्वपूर्ण सुधारों की भी आवश्यकता है। औपनिवेशिक काल के आधिकारिक गोपनीयता अधिनियम, 1923 को समाप्त कर दिया जाना चाहिए या कम से कम उसमें नरमी लाई जानी चाहिए।

तब, सीबीआई निदेशक को सरकारी प्रशासन में भ्रष्टाचार को उजागर करने, मुकदमा चलाने और दंडित करने का अधिकार होना चाहिए, चाहे वे सरकारी कर्मचारी हों या उनके राजनीतिक आका। उन्हें किसी प्रकार का संरक्षण नहीं दिया जाना चाहिए। सरकारी कर्मचारियों और उनके लोकतांत्रिक रूप से निर्वाचित शासकों के बीच के घनिष्ठ, लगभग नाजायज, संबंधों को समाप्त किया जाना चाहिए।

इस अध्याय को समाप्त करने से पहले, मीडिया की भूमिका पर कुछ कहना आवश्यक है। एक बार महाराष्ट्र के डीजीपी एसएस जोग ने मुझे पत्रकारों से बात करने के लिए फटकार लगाई थी। मुझे बताया गया था कि मुख्यमंत्री के निर्देश हैं कि जनरल ए.एस. वैद्य की हत्या के सिलसिले में गिरफ्तार किए गए दो आतंकवादियों से पूछताछ पूरी होने से पहले प्रेस को कोई सूचना नहीं दी जानी चाहिए। मुझे जांच से हटाने के प्रयास किए गए। मैं मीडिया को 'अनिवार्य बुराई' नहीं मानता। जांच अधिकारी के लिए पत्रकार बहुत मददगार हो सकते हैं। उन्हें हाई-प्रोफाइल मामलों पर अटकलें लगाने और सनसनीखेज कहानियां गढ़ने देने के बजाय, मीडिया को विश्वास में लिया जा सकता है और सीमित, रणनीतिक जानकारी दी जा सकती है, क्योंकि इससे जांच में मदद मिल सकती है और सीबीआई पर लोगों का विश्वास भी बढ़ सकता है।

7

एक जासूस के दिमाग से

हम सभी ने शर्लक होम्स के कारनामों के बारे में पढ़ा है। ज़रा सोचिए, अगर हम उनके दिमाग में चल रहे उन सभी तीक्ष्ण विचारों को मूर्त रूप दे सकें और उन्हें एक बड़े व्हाइटबोर्ड पर प्रदर्शित कर सकें। बस, यही मैं इस अध्याय में करने का प्रयास कर रहा हूँ। ये उन विभिन्न मामलों के अंश हैं जिनकी मैंने जाँच की, वे विचार जिन्होंने हमें कठिन मामलों को सुलझाने में मदद की, और कुछ अवास्तविक यादें भी। यहाँ मेरे दिमाग की गहराइयों से निकले लगभग 30 वर्षों के विचार हैं। इनमें से कुछ मामलों पर इस पुस्तक के पिछले अध्यायों में एक अन्वेषक के दृष्टिकोण से अधिक विस्तार से चर्चा की गई है।

सिकंद हत्याकांड पर और अधिक जानकारी: 1982

अपराध: दिल्ली के मशहूर सिकंद मोटर्स के मालिक सिकंद परिवार के 98 सुंदर नगर स्थित आवास पर पार्सल में भेजे गए ग्रेनेड से विस्फोट हुआ। ग्रेनेड के फटने से परिवार के सबसे छोटे सदस्य की मौत हो गई।

आरोपी: सेना में कार्यरत अधिकारी—स्वॉर्ड ऑफ ऑनर और वीर चक्र से सम्मानित। मानो इतना ही काफी नहीं था, उनके दिवंगत पिता ने भी पंजाब के उसी जिले में सीबीआई निदेशक के पिता के साथ उपायुक्त और पूर्व पुलिस अधीक्षक के रूप में काम किया था। आरोपी की मां, जो सीबीआई निदेशक की मौसी हैं, दक्षिण दिल्ली के पॉश इलाके न्यू फ्रेंड्स कॉलोनी में रहती थीं और अक्सर प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के सफदरजंग रोड स्थित आवास पर उनसे मिलने जाती थीं।

समस्या यह थी: मेरे सीबीआई निदेशक जेएस बावा थे। मेरे लिए आरोपियों के खिलाफ आरोपपत्र दाखिल करना आसान नहीं होता।

नोट: निदेशक उस समय इंटरपोल सम्मेलन में भाग लेने के लिए देश से बाहर थे। मैंने कार्यवाहक निदेशक की सहमति से आरोप पत्र दाखिल किया।

दिल्ली पुलिस नौ महीने तक इस मामले को सुलझाने के लिए संघर्ष करती रही। मुख्य जांच अधिकारी के रूप में मैंने जांच का जिम्मा संभाला। छह अधिकारियों की एक टीम द्वारा तीन महीने की कड़ी मेहनत के बाद, हम सेना अधिकारी तक पहुंचे। उसकी पत्नी और युवा सिकंद एक-दूसरे से प्यार करते थे और साथ रहते थे। वह दोनों को मारना चाहता था। लेकिन 2 अक्टूबर 1982 को शाम 5 बजे, सिकंद अपने कमरे में अकेला था और विस्फोट में उसकी मौत हो गई।

नोट: मेरे संगठन के प्रमुख पर जांच के परिणाम को प्रभावित करने का दबाव था। वे इस मामले से दूर रहना चाहते थे। उनकी विदेश यात्रा एक सुविधाजनक समय पर हुई। मुझे यह कैसे पता चला? वे आम तौर पर कम बोलने वाले और दखल न देने वाले व्यक्ति थे। हालांकि, इस मामले में उनका व्यवहार अलग था। इसके बाद और भी बुरी खबरें आईं। एक और सिकंद भाई ने आत्महत्या कर ली और अपनी पत्नी के लिए एक नोट छोड़ा जिसमें उन्होंने सुझाव दिया था कि वह श्री सेन से कहें कि '...जीत को बुलाएं'। मैं इस मामले की पूरी तरह से निगरानी कर रहा था। मुझे पता था कि दोषी कौन है, लेकिन मुझे अभी भी निर्णायक सबूत चाहिए थे। मैं सेना

अधिकारी से पूछताछ कर रहा था, लेकिन निदेशक बावा ने हस्तक्षेप किया। क्या वे हस्तक्षेप करने की कोशिश कर रहे थे? ऐसा नहीं था। मेरे बॉस मुझसे कई सवाल पूछ रहे थे। वे यह सुनिश्चित करने की कोशिश कर रहे थे कि मैंने भारतीय सेना के एक सेवारत मेजर को पूछताछ के लिए बुलाने से पहले सीबीआई की प्रक्रिया का अक्षरशः पालन किया है। सीबीआई निदेशक मदद करने की कोशिश कर रहे थे।

मैंने निदेशक बावा के लौटने से पहले ही आरोपपत्र तैयार करने की प्रक्रिया में तेजी ला दी। कैसे? क्योंकि सेना अधिकारी को गिरफ्तार कर पूछताछ कर ली गई थी। हमने तलाशी और जब्ती अभियान चलाकर ऐसे पुख्ता सबूत बरामद किए थे जो उसे अपराध से जोड़ते थे। उसे मुकदमे का सामना करना ही था।

सवाल यह है: क्या न्यायिक हिरासत में रहते हुए मैं उस पर मुकदमा चला सकता हूँ? कानून के अनुसार, किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी के बाद जांच पूरी करने के लिए केवल 90 दिनों की हिरासत की अनुमति है और यदि इस अवधि के भीतर आरोप पत्र दाखिल नहीं किया जाता है, तो आरोपी जमानत का पात्र हो जाता है।

कार्यकुशलता का दुःस्वप्न: आवश्यक कागजी कार्रवाई बहुत अधिक थी। आरोपपत्र दाखिल करने से पहले, हमें एक अंतिम रिपोर्ट की आवश्यकता थी, जिसके पहले भाग में मुख्य जांच अधिकारी द्वारा अब तक की गई जांच का विस्तृत विवरण, साक्ष्यों का गहन विश्लेषण, उनकी खूबियों और खामियों का वर्णन और आरोपपत्र दाखिल करने के औचित्य के तर्क शामिल थे। इस महत्वपूर्ण दस्तावेज़ के आधार पर अभियोजक अपना पक्ष रखता। फिर वह एक अन्य रिपोर्ट तैयार करता, जिसे अंतिम रिपोर्ट भाग 2 कहा जाता, जो विश्लेषण को और पुष्ट करती। इसके बाद, मुख्य जांच अधिकारी, विशेष जांच अधिकारी (यानी मैं), को हमारी सिफारिशें सटीक रूप से प्रस्तुत करनी होतीं। मुझसे शुरू करके, हमें पदानुक्रम में सभी अधिकारियों की स्वीकृति की आवश्यकता होती: डीआईजी, विशेष जांच अधिकारी (जिन्हें संयुक्त निदेशक भी कहा जाता है), और अंत में, स्वयं जांच अधिकारी (यानी सीबीआई निदेशक)। आरोपपत्र के साथ-साथ, सभी साक्ष्यों, मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्यों की प्रतियां, साथ ही प्रदर्शों को भी निचली अदालत में दाखिल करना आवश्यक था।

इस मामले में कितने कदम उठाने होते हैं, इसका हिसाब रखना मुश्किल था और हमारे पास सिर्फ तीन महीने का समय था। हमने तुरंत कार्रवाई की और तय समय सीमा के भीतर काम पूरा कर लिया। निदेशक के भारत लौटने से पहले ही 90 दिनों के भीतर आरोपपत्र दाखिल कर दिया गया। मुझे पक्का तो नहीं पता, लेकिन शायद तत्कालीन सीबीआई प्रमुख बावा ने अपनी चाची से कहा होगा कि उनके बेटे को मुकदमे के लिए भेजने का फैसला उन्होंने नहीं लिया था! सिकंद हत्याकांड के बारे में मैंने जो कुछ कहा है, वह मैं पहली बार कह रहा हूँ।

गोल्ड मोहर चेज़: 1987

अगर आप फिल्म 'पाइरेट्स ऑफ द कैरेबियन' के प्रशंसक हैं या रॉबर्ट लुई स्टीवेन्सन की 'ट्रेजर आइलैंड' में दफन सोने की कहानी से मोहित हैं, तो आप जानते होंगे कि सोने के सिक्कों का लोगों के मन में कितना आकर्षण होता है। 16वीं शताब्दी में भारत में मुगल शासन के दौरान,

यहाँ आने वाले यूरोपीय यात्री अपने साथ बड़े-बड़े सोने के सिक्कों की कहानियाँ लेकर लौटे, जिन पर शासक का नाम और अरबी छंद खुदे होते थे। 20वीं शताब्दी के अंत तक, ऐसे केवल दो सिक्के ही बचे थे। लेकिन किसी को नहीं पता था कि ये सिक्के कहाँ हैं। मेरे नेतृत्व में, सीबीआई की एक टीम ने गहन जांच की ताकि पता चल सके कि 18 मिलियन डॉलर मूल्य के दो विशाल सोने के मोहर कहाँ स्थित हैं। समुद्र की गहराई में दबे प्राचीन खजानों की तरह, वे दोनों सिक्के भी कहीं न कहीं हो सकते हैं और उनसे जुड़ी कई रहस्यमयी अनकही कहानियाँ हो सकती हैं।

सितंबर 1987 में, ग्रेट ब्रिटेन स्थित भारतीय उच्चायोग ने भारतीय सरकार को सूचित किया कि दो विशाल सोने के मोहर—एक जहाँगीर द्वारा 1633 में आगरा में ढाला गया, जिसका वजन 11,935.8 ग्राम और व्यास 20.3 सेंटीमीटर था, और दूसरा सोने का मोहर जिसका वजन 1,094.5 ग्राम और त्रिज्या 9.7 सेंटीमीटर थी, जिसे शाहजहाँ ने 1639 में लाहौर में ढाला था —उसी वर्ष नवंबर में जिनेवा में नीलाम होने वाले थे। ये विश्व के अब तक के सबसे बड़े सोने के सिक्के थे। ये मोहर औरंगजेब के थे और कई पीढ़ियों से चले आ रहे थे, अंततः हैदराबाद के निज़ाम के हाथों में आए।

1923 में न्यूमिस्मैटिक सोसाइटी ऑफ इंडिया द्वारा प्रकाशित एच.एस. होडीवाला की पुस्तक "हिस्टोरिकल स्टडीज ऑफ मुगल न्यूमिस्मैटिक्स" के अनुसार, ये सिक्के मुगल सम्राट द्वारा निज़ाम को भेंट किए गए थे क्योंकि उन्होंने राजकुमार मुहम्मद आज़म की सहायता की थी, जो उस समय बीजापुर को घेरे हुए थे। 1948 में, जब हैदराबाद भारत में शामिल हुआ, तब ये सिक्के निज़ाम के वंशज मुकर्रम जाह (हैदराबाद के नाममात्र के निज़ाम) के पास माने जाते थे। लेकिन भारत में शामिल होने के समय तैयार की गई निज़ाम की निजी संपत्तियों की सूची में इन सिक्कों का उल्लेख नहीं था, जो स्वतः ही भारतीय संघ की संपत्ति बन गए थे। इसलिए, भारत सरकार का यह दायित्व था कि वह पुरातन और कला धरोहर अधिनियम, 1972 के तहत इन सिक्कों की रक्षा और संरक्षण करे।

ये मोहरें निज़ाम के पोते, जाह (जो उस समय ऑस्ट्रेलिया के पर्थ में रह रहे थे) ने स्विट्ज़रलैंड के जिनेवा स्थित बैंक इंडोसुएज़ बैंक के पास गिरवी रखी थीं। ये गिरवीं 90 लाख स्विस फ्रैंक के ऋण के लिए गारंटी के तौर पर रखी गई थीं, जो क्रेस्टालोर सर्विसेज़ एसए पनामा और टैमरिंड कॉर्पोरेशन, ब्रिटिश वर्जिन आइलैंड्स, दोनों कंपनियों को दिए गए थे। इन कंपनियों ने भेड़ पालन फार्म स्थापित करने के लिए ऋण लिया था, लेकिन यह उद्यम विफल रहा और जाह लगभग दिवालिया हो गए। बैंक और उनके बीच हुए पत्राचार के अनुसार, 28 जून 1989 तक उन पर बैंक का 102 लाख स्विस फ्रैंक बकाया था। इसी बीच, सीबीआई ने नवंबर 1987 में इन सोने की मोहरों को देश में वापस लाने के लिए एक नियमित मामला दर्ज किया था, क्योंकि ये राष्ट्रीय संपत्ति थीं।

सीबीआई जब सिक्कों के ठिकाने का पता लगाने की कोशिश कर रही थी, तभी कोलकाता के एक होम्योपैथिक डॉक्टर-सह-रसायनज्ञ डॉ. पार्थ बनर्जी से कुछ सुराग मिले। उन्होंने पुष्टि की कि दोनों सिक्के 8 नवंबर 1987 को जिनेवा के मेगा हिल्टन होटल में बैंक इंडोसुएज़ की ओर से हैप्सबर्ग फेल्डमैन एसए द्वारा नीलामी के लिए रखे गए थे। हमें अन्य सूत्रों से पता चला कि

सिक्के बिक नहीं पाए क्योंकि आरक्षित मूल्य 90 लाख स्विस फ्रैंक था और नीलामी मूल्य 85 लाख स्विस फ्रैंक पर स्थिर हो गया था। बनर्जी ने यह जानकारी अपने जर्मन मित्र डॉ. गेज़ा बॉन हैप्सबर्ग से प्राप्त की थी, जो नीलामी करने वाली फर्म के अध्यक्ष थे और जिनसे उनकी दोस्ती साठ के दशक की शुरुआत में हुई थी। प्राचीन सिक्कों में उनकी साझा रुचि हमारी जांच में बहुत काम आई।

हमें सूचना मिली थी कि हैप्सबर्ग भारत आए थे और डॉ. बनर्जी उनके संपर्क सूत्र थे। कोलकाता के ग्रैंड होटल और नई दिल्ली के ओबेरॉय होटल के रजिस्टरों से यह पुष्टि हुई कि वे वास्तव में मार्च-अप्रैल 1988 में भारत आए थे और उनके होटल में ठहरने की व्यवस्था बनर्जी ने ही की थी। हैप्सबर्ग ने सिक्कों के खरीदार ढूंढने में बनर्जी की मदद मांगी थी, अधिमानतः भारतीय राष्ट्रीय संग्रहालय के लिए। बनर्जी ने अपने स्विस मित्र की मदद करने की कोशिश की, लेकिन तब तक सीबीआई पहले से ही उन सिक्कों को हासिल करने के काम में जुट चुकी थी जिन्हें चोरी की प्राचीन वस्तुएं माना जाता है। बनर्जी द्वारा दी गई जानकारी से यह पुष्टि हुई कि दो प्राचीन सोने के मोहर वास्तव में जाह द्वारा भारत से अवैध रूप से बाहर ले जाने के बाद स्विस बैंक में गिरवी रखे गए थे।

अभी भी कई अनसुलझे मामले थे जिन्हें सुलझाना बाकी था। कैनबरा और ऑस्ट्रेलिया के अन्य स्थानों पर जांच-पड़ताल करनी थी। सरकार ने मुझे (तब मैं डीआईजी था) और डीएसपी आरके सरन को जांच अधिकारी के तौर पर जाह से पूछताछ के लिए वहां भेजा। हालांकि, सरन की नाराज़गी के बावजूद, मैंने ऑस्ट्रेलिया न जाने का फैसला किया। मुझे आभास था कि पश्चिमी ऑस्ट्रेलिया पुलिस, जिसका कैनबरा पर अधिकार क्षेत्र था, हमारी जांच में सहयोग करने में आनाकानी करेगी। हालांकि सीबीआई निदेशक ने कहा कि वे सिक्कों को भारत वापस लाएंगे, लेकिन दुनिया के दो सबसे बड़े सोने के सिक्कों का भविष्य अभी भी अनिश्चित और अज्ञात है।

जनरल वैद्य की हत्या: 1986

अमृतसर के स्वर्ण मंदिर परिसर में चलाए गए ऑपरेशन ब्लू स्टार के दो प्रमुख प्रत्यक्ष परिणाम हुए। 31 अक्टूबर 1984 को प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की उनके ही सुरक्षा गार्डों ने गोली मारकर हत्या कर दी। 10 अगस्त 1986 को पूर्व सेना प्रमुख जनरल ए.एस. वैद्य की पुणे छावनी क्षेत्र में पंजाब के आतंकवादियों ने हत्या कर दी।

वे मारते हैं, तो आप भी मारते हैं। हर तरफ प्रतिशोधात्मक हिंसा का माहौल था। क्या हमें एक समूह के प्रति दूसरे समूह से अधिक सहानुभूति रखनी चाहिए? मुझे यकीन नहीं है। मेरे लिए, अपराध तो अपराध ही है। इस मामले में, जनरल वैद्य की दुर्भाग्यपूर्ण मृत्यु को रोका जा सकता था। वे एक सम्मानित सैनिक थे, जिन पर राष्ट्र को गर्व था। सुरक्षा में चूक के कारण ही उनकी जान बच पाई। ये है पूरी कहानी।

मैंने 16 अगस्त 1986 को जनरल वैद्य की हत्या की जांच अपने हाथ में ली। मुझे सबसे पहले क्या मिला? एक किताब। जी हां, एक जासूसी उपन्यास। पता चला कि तीन महीने पहले, 3 मई को, मुंबई के एंटॉप हिल स्थित एक फ्लैट पर पुलिस ने छापा मारा था। उन्हें अपार्टमेंट में कुछ नहीं मिला क्योंकि पंजाब के आतंकवादी, जिन्होंने उस जगह का इस्तेमाल किया था, तब तक

अपना ठिकाना छोड़कर भाग चुके थे। लेकिन वे कुछ तो पीछे छोड़ गए होंगे—जब आप फ्लैट खाली करते हैं तो कुछ न कुछ सामान तो छोड़ ही देते हैं, ऐसी चीजें जिन्हें बेकार समझा जाता है। वास्तव में, वे कुछ तो पीछे छोड़ गए थे, जिसे मुंबई और पुणे की पुलिस ने शायद बेकार समझा होगा। वरना, मैं आपको यह दुर्भाग्यपूर्ण कहानी नहीं सुना रहा होता।

जासूसों के उस्ताद केन फोलेट का 1978 का उपन्यास 'आई ऑफ द नीडल' कमरे के कोने में रखी एक मेज पर पड़ा था। किताब के एक पन्ने पर एक कार का लाइसेंस नंबर लिखा हुआ था: DIB1437 यह दिल्ली का नंबर था—इस नंबर पर भानुमति वैद्य के नाम पर एक सफेद मारुति 800 कार पंजीकृत थी।

सेवानिवृत्ति के बाद वैद्य अपनी पत्नी भानुमति के साथ पुणे में बस गए थे। हर सप्ताहांत वे अपनी पत्नी की कार लेकर किराने का सामान, घरेलू ज़रूरत का सामान और अपने पसंदीदा कबाब खरीदने के लिए बाज़ार जाते थे। वर्षों से गाड़ी न चलाने के कारण उन्हें गाड़ी चलाने में थोड़ी दिक्कत होती थी। लेकिन सेवानिवृत्ति के बाद उन्हें मजबूरन ड्राइवर बनना पड़ा और उनके साथ एक अकेला बंदूकधारी, हेड कांस्टेबल रामचंद्र क्षीरसागर रहता था। क्या उन्हें बेहतर और अधिक सुरक्षा नहीं दी जा सकती थी? क्या देश की खुफिया एजेंसियों को यह नहीं पता था कि पंजाब के आतंकवादियों की हिट लिस्ट में उनका नाम था?

10 अगस्त 1986 को, जब उनकी मारुति 800 धीरे-धीरे पुणे छावनी सड़क पर दाखिल हुई, तभी एक इंडसुजुकी मोटरसाइकिल पर एक सवार उनकी कार के पास आकर रुका। वैद्य स्टीयरिंग व्हील पर झुके हुए थे। एक सावधान ड्राइवर होने के बावजूद, मोटरसाइकिल सवारों को अपनी गाड़ी के इतने करीब आते देख वे घबरा गए और उन्हें रास्ता छोड़ने के लिए चिल्लाए। श्रीमती वैद्य भी उनके बगल में आगे की सीट पर बैठी थीं और उतनी ही घबराई हुई थीं। उन्होंने पिस्तौल की काली नोक देखी, गोली चलने की आवाज सुनी और नोजल से धुआं निकलते देखा। कार धीरे-धीरे दाईं ओर मुड़ी और ढलान से नीचे फिसल गई। वैद्य स्टीयरिंग व्हील पर धंस गए थे। मोटरसाइकिल तेजी से आगे निकल गई। क्षीरसागर ने अपनी रिवॉल्वर को लोड करने में कुछ समय लगाया और फिर उसे खाली कर दिया। तब तक मोटरसाइकिल काफी दूर जा चुकी थी। जनरल के पास भी भरी हुई पिस्तौल थी। लेकिन बहुत देर हो चुकी थी।

सुखदेव सिंह उर्फ सुखा और निर्मल सिंह, इन दोनों आतंकवादियों ने एंटॉप हिल पर एक सुरक्षित अपार्टमेंट मिलने के बाद मुंबई में कई बैंक डकैतियों, हत्याओं और कार चोरी की घटनाओं को अंजाम दिया था। बॉम्बे पुलिस फरवरी 1986 से ही उनकी तलाश कर रही थी। उन्होंने जिस कार का पीछा करना था, उसका नंबर एक किताब के पन्ने पर लिख लिया था। लेकिन पुलिस को इस बात का पता नहीं चला था।

कई अपराधों में वांछित दो आतंकवादियों को एक महीने के भीतर नाटकीय परिस्थितियों में गिरफ्तार कर लिया गया—पुणे-मुंबई राजमार्ग पर पिंपरी के पास—वह भी महज़ संयोग से। सीबीआई, पुणे पुलिस और खुफिया ब्यूरो ने आपस में घनिष्ठ समन्वय से काम किया था। लेकिन बॉम्बे पुलिस मुझसे नाराज़ थी क्योंकि मैंने पत्रकारों से बात की थी, जैसा कि इस किताब में पहले ही बताया जा चुका है। पुलिस प्रमुख और मुख्यमंत्री, जिन्होंने पत्रकारों से बात न करने के

निर्देश जारी किए थे, यह नहीं समझ पाए कि आतंकवादियों की गतिविधियों की जांच करना बलात्कार और हत्या जैसे अपराधों की जांच करने जैसा नहीं है। ये साधारण अपराधी नहीं थे। इन्होंने पहले ही कई अपराध किए थे।

मैंने तीन कारणों से एक प्रेस कॉन्फ्रेंस आयोजित की और मामले को सीमित प्रचार दिया: (i) संदिग्धों को यह बताकर उन पर दबाव डालना कि वे वांछित हैं और उनके खिलाफ राष्ट्रव्यापी खोज शुरू कर दी गई है; (ii) आम नागरिकों से जानकारी प्राप्त करने के लिए इस गिरोह की गतिविधियों के बारे में जनता को सतर्क करना; और अंत में (iii) पुलिस को हाई अलर्ट पर रखना।

कभी-कभी मुझे आश्चर्य होता है कि क्या हम सचमुच सुपर-जासूस थे या महज़ आम लोग जिन्हें किस्मत का साथ मिल गया। पाठक खुद इसका फैसला कर सकते हैं। हत्यारों को पकड़ने वाली टीम में हम छह लोग थे—मैं डीआईजी के पद पर, एसपी और सीबीआई की नवगठित आतंकवाद-विरोधी प्रकोष्ठ के चार इंस्पेक्टर, जिसे लोकप्रिय रूप से पंजाब प्रकोष्ठ कहा जाता था। हम सुराग और सबूतों का पता लगाने में खुद को सर्वश्रेष्ठ मानते थे। लेकिन एक बाइक के फिसलने से हमें अचानक मदद मिली!

महाराष्ट्र में गणेश उत्सव के दस दिवसीय समारोह का पहला दिन एक महत्वपूर्ण घटना होती है। उस वर्ष यह दिन 7 सितंबर को पड़ा और वह दिन वाकई घटनापूर्ण रहा। पिंपरी समेत राज्य के हर थाने में पुलिसकर्मी अलर्ट पर थे। एक सशस्त्र सब-इंस्पेक्टर पुलिसकर्मियों की एक टीम के साथ जीप लेकर तुरंत कार्रवाई के लिए तैयार थे। सुखदेव और निर्मल सिंह उस रात पुणे पहुंचे और अंधेरे का फायदा उठाकर सालुंके विहार की आर्मी कॉलोनी में उस घर की ओर चल पड़े जो उन्होंने भारतीय सेना के एक मेजर से किराए पर लिया था, जो उस समय चंडीगढ़ में तैनात थे। हालांकि पुलिस को बिना सत्यापन वाले किराएदारों पर नजर रखनी चाहिए थी, लेकिन दोनों बिना किसी की नजर में आए वहां पहुंच गए। क्या यह उनकी किस्मत थी? उन्होंने अपने हथियार, गोला-बारूद और कुछ कपड़े लिए और फिर मुंबई-पुणे राजमार्ग पर लंबी यात्रा के लिए मोटरसाइकिल पर सवार हो गए। पिंपरी के पास, एक तेज रफ्तार ट्रक को ओवरटेक करने की कोशिश में उनकी मोटरसाइकिल फिसल गई। और जैसे ही वे गिरे, उनके हाथ-पैर हवा में लहराने लगे और उनके हथियार जमीन पर गिर पड़े। क्या यह उनकी बदकिस्मती थी?

गणपति के आगमन का जश्न मनाने के बाद घर लौट रहे एक टेलीफोन ऑपरेटर ने ज़मीन पर पड़े उन दोनों को देखा और ज़मीन पर गिरी हुई बंदूकें भी देखीं। एक समझदार आदमी शायद पुलिस में रिपोर्ट दर्ज कराने की झंझट में पड़े बिना ही चला जाता। लेकिन हमारा आधा नशे में धुत टेलीफोन ऑपरेटर सीधे पिंपरी के पुलिस स्टेशन गया, उसने जो देखा वो बताया और खास तौर पर ज़मीन पर गिरी हुई बंदूकों पर ज़ोर दिया। और हैरानी की बात यह है कि पुलिस ने उसकी बात को गंभीरता से लिया!

जब तक पुलिस दुर्घटनास्थल पर पहुँची, तब तक दोनों मोटरसाइकिल छोड़कर भाग चुके थे। वे रेलवे स्टेशन की ओर दौड़ पड़े। वहाँ मुठभेड़ शुरू हो गई। सुखदेव उर्फ सुखा ने गोली चलाकर भागने की कोशिश की। लेकिन उसकी रिवॉल्वर—जिसका इस्तेमाल पहले प्रोफेसर एमएम

तिवारी, जीएस मनचंदा और जनरल वैद्य की हत्या में किया गया था—ने काम करना बंद कर दिया। वह जाम हो गई थी। चार बहादुर पुलिसकर्मियों ने उसे पकड़ लिया, नीचे गिरा दिया और कुछ ही देर में वह सलाखों के पीछे पहुँच गया।

भाग्य? दक्षता? या दोनों का थोड़ा-थोड़ा मिश्रण? 48

एक और भाग्यशाली सफलता

मुझे आज भी यह याद करके हैरानी होती है कि बैडमिंटन स्टार सैयद मोदी की हत्या की जांच में हमें जो सुराग मिला, उससे हमें कितनी बड़ी सफलता मिली। हम एक ऐसे मोड़ पर पहुँच गए थे जहाँ हमें कुछ पता नहीं था। हमें यह बिल्कुल भी नहीं पता था कि कौन उनकी हत्या करना चाहता था। एसपी ए.डब्ल्यू. दिगवेकर घटनास्थल के आसपास मौजूद थे। उन्होंने कुछ नंबर पुकारे जाते सुने: 1498, 3497, 7657। दिगवेकर बेहद उत्सुक थे। उन्होंने देखा कि कुछ मजदूर और रिक्शा चालक चार-चार नंबरों के समूह पुकार रहे थे और शर्त लगा रहे थे। यह वाकई एक अजीब खेल था। जैसे ही कोई कार केडी सिंह स्टेडियम के गेट के पास पहुँचती, जिसके बाहर मोदी को गोली मारी गई थी, उसकी नंबर प्लेट के चारों नंबर जोर से बोले जाते। जिसका नंबर कार के नंबर के सबसे करीब आता, वह शर्त के तौर पर रखी गई रकम जीत जाता।

दिगवेकर को आश्चर्य हुआ कि क्या इन लोगों ने 23 जुलाई 1988 को शाम लगभग 7:45 बजे हत्या के दिन इस्तेमाल किए गए वाहन के नंबर पर भी इसी तरह की शर्त लगाई थी। हैरानी की बात यह थी कि एसपी एक रिक्शा चालक से मोदी के हत्यारे द्वारा इस्तेमाल की गई कार का नंबर याद करवाने में सफल रहे। नंबर 1959 था। हालांकि, उसे कार की रजिस्ट्रेशन प्लेट पर लिखे अक्षर याद नहीं थे। शर्त सिर्फ नंबरों की थी। दूसरे शब्दों में, कार किस राज्य में पंजीकृत थी, यह ज्ञात नहीं था। फिर भी, दिगवेकर ने हार नहीं मानी। फिर आया भाग्य का क्षण। उत्तर प्रदेश पुलिस को लखनऊ के हजरतगंज पुलिस स्टेशन में HYG 1959 नंबर की एक वैगनआर खड़ी मिली। यह कार पुलिस स्टेशन में क्या कर रही थी? यह संयोगवश पता चला क्योंकि वाहन ने ट्रैफिक सिग्नल तोड़ दिया था और चालक के पास कोई स्वामित्व दस्तावेज नहीं था। इससे जांच का रास्ता खुला और अंततः मोदी की हत्या के आरोपी सभी सात व्यक्तियों पर मुकदमा चलाया गया।

प्यार, जुनून और अपराध

सच कहूँ तो, मैंने अमीता मोदी को हिरासत में उनकी सुरक्षा के लिए ही लिया था। मुझे लगा कि संजय सिंह जिस तरह का आदमी था, वो उसे भी मार सकता था। उसे बहुत कुछ पता था। हालाँकि, जैसा कि मैंने पहले ही बताया है, अदालत में अपराध में उसकी संलिप्तता कभी साबित नहीं हो सकी, फिर भी मेरा मानना है कि उन दोनों ने मिलकर इसकी योजना बनाई थी। अमीता को बेशक सुनियोजित हत्या की सही तारीख या शायद अपराध में शामिल लोगों के बारे में पता नहीं था। कोई पूछ सकता है कि अदालत के फैसले के बावजूद, मैं अब भी क्यों मानता हूँ कि मोदी की हत्या आवेश में की गई थी। इसका कारण उनके घरों की अचानक तलाशी में मिली ढेर सारी जानकारियाँ थीं। अमीता की डायरियों में संजय के लिए प्यार के पन्ने-दर-पन्ने लिखे हुए थे। उसने उन्हें बड़ी सावधानी से सहेज कर रखा था और अपनी पत्नी गरिमा की नज़रों से बचाकर

रखा था। यह एक अजीब और मदहोश कर देने वाला प्यार था। एक के बाद एक पत्रों में, वह बताती रही कि वह कितनी मोहित थी, डाक से उसके पत्र मिलते ही उसका दिल कितनी ज़ोर से धड़कता था और वह उसके फोन कॉल के लिए कितनी तरसती थी। और इस पूरे समय वह मोदी के साथ थी, दोनों एक टूर्नामेंट के लिए साथ में प्रशिक्षण ले रहे थे। अपने पत्रों में, अमीता संजय को सैयद के साथ बिताए अपने दिनों के बारे में बताती और गरिमा के बारे में भी पूछती, संजय से निवेदन करती कि वह गरिमा को उसका नमस्कार कह दे।

हिंदी में लिखे गए पत्रों में से एक में मोदी ने अमीता को बेवफाई के लिए फटकारा और बताया कि वह कितना रोए। उन्होंने आत्महत्या करने की इच्छा भी व्यक्त की। एक पत्र में उन्होंने लिखा कि यह उनका अमीता को लिखा आखिरी पत्र है। बार-बार उन्होंने दुनिया छोड़ने की बात की और अमीता की खुशी की कामना की। क्या उन्हें अपनी मृत्यु का पूर्वाभास हो गया था?

संजय के महल से—जो अमेठी के राजा का उत्तराधिकारी था—हमें एक और महत्वपूर्ण सबूत मिला: गरिमा का संजय को लिखा पत्र। वह संजय के दूसरे आदमी की पत्नी अमीता के प्रति आसक्ति से बहुत दुखी और व्यथित थी।

अमीता और संजय के खिलाफ तमाम सबूत होने के बावजूद, निचली अदालत, उच्च न्यायालय और सर्वोच्च न्यायालय ने सैयद मोदी की हत्या के आरोप को उनके खिलाफ बरकरार नहीं रखा। मेरा मानना है कि दोनों पर आरोप लगाया जाना चाहिए था। संजय और अमीता अब शादीशुदा हैं और दोनों अभी भी राजनीति में सक्रिय हैं। संजय की पहली पत्नी गरिमा, जिन्होंने तलाक के फैसले को रद्द करवाने के लिए सर्वोच्च न्यायालय तक का सफर तय किया, आज भी एक दुखी तलाकशुदा महिला हैं, जिन्हें 'वास्तविक' तलाक नहीं मिला है। इस बीच, परिवार संपत्ति से जुड़े लंबे कानूनी झगड़ों में उलझा हुआ है, जिसकी खबरें समय-समय पर मीडिया में आती रहती हैं।

अपराध और दंड

मुझे एक कहानी याद आती है जिससे मुझे आश्चर्य होता है कि रूसी लेखक फ्योदोर दोस्तोवस्की द्वारा 1866 में प्रकाशित प्रसिद्ध उपन्यास 'क्राइम एंड पनिशमेंट' के शीर्षक का भारत में क्या अर्थ है।

यह एक ऐसा विषय है जिस पर आपराधिक कानून के क्षेत्र में कई सिद्धांत मौजूद हैं। शिक्षाविदों और वकीलों ने इस विषय पर जीवन भर चिंतन किया है, अपराध और दंड की अवधारणाओं को समझने का प्रयास किया है और इस तरह के मुद्दों और प्रश्नों पर बहस की है कि किस कृत्य को अपराध कहा जा सकता है, दोष कैसे निर्धारित किया जाए, कितना दंड 'उचित' है और दंड का उद्देश्य क्या है। सैद्धांतिक बहसों में न जाते हुए, एक आम व्यक्ति के दृष्टिकोण से, अपराधियों को गिरफ्तार करने, उन पर मुकदमा चलाने और उनके अपराधों के लिए उन्हें दोषी ठहराने के तीन मुख्य कारण हैं। पहला कारण है दूसरों को इसी तरह के अपराध करने से रोकना। दूसरा, अपराधी को पश्चाताप करने और सुधरने का अवसर दिया जाना चाहिए। तीसरा कारण है पीड़ित के लिए न्याय सुनिश्चित करना। हालांकि, हमारी न्यायिक प्रणाली के कामकाज को देखते हुए, पीड़ित के लिए न्याय पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया है।

मैं यह दावा नहीं कर सकता कि मैं सजा के इस पहलू को लेकर हमेशा चिंतित रहा हूँ, हालाँकि

मैंने अपने पूरे पेशेवर जीवन में अपराधों की जाँच की है और अपराधियों पर मुकदमा चलाया है। मामलों को सुलझाने और यह सुनिश्चित करने के अलावा कि मेरी जाँच उस स्तर तक पहुँचे जहाँ आरोपियों को दोषी ठहराया जाए, पीड़ित की दुर्दशा ने मुझे शायद ही कभी चिंतित किया हो, सिवाय एक विशेष अवसर के।

मैं इस कहानी में सभी नामों को बदल रहा हूँ क्योंकि ये प्रमुख व्यक्तियों के नाम हैं और उनकी पहचान उजागर करने से मीडिया का ध्यान आकर्षित होगा। मैंने पहले भी उनके नाम नहीं लिए थे और अब भी नहीं ले रहा हूँ।

साल 1972 था; जगह थी कोलकाता के चर्च लेन में उच्च न्यायालय के बगल में स्थित एसपी आर्थिक अपराध शाखा (ईओडब्ल्यू) का कार्यालय। मुझे नौकरी करते हुए मुश्किल से छह महीने ही हुए थे। मैं एक आरामदायक कुर्सी पर बैठा था, तभी मेरे ड्यूटी ऑफिसर, जो मुझसे कहीं अधिक अनुभवी थे, एक आगंतुक को मेरे कार्यालय में लेकर आए। वे मेरे पास आए और मेरे कान में फुसफुसाए: 'सर, एक सूत्र चाहिए।'

आज के समय में 'सूत्र' को व्हिसलब्लोअर कहा जाता है। सीबीआई में फील्ड ट्रेनिंग के दौरान हमें सिखाया गया था कि हमारे काम में सूत्र सबसे महत्वपूर्ण होते हैं और ऐसे व्यक्ति की पहचान हर कीमत पर गुप्त रखी जानी चाहिए।

तो, वहाँ शंकर खड़ा था, एक नौजवान और घबराया हुआ लड़का। मैंने उसे एक कप चाय दी और कुछ हौसला बढ़ाने वाले शब्द कहे, उसकी घबराहट कम करने से ज़्यादा अपनी अनुभवहीनता को छुपाने के लिए। इसका असर हुआ और हम जल्द ही एक जीवंत बातचीत में मशगूल हो गए।

शंकर का विवाह सबिता और स्वर्गीय बिजय बनर्जी की इकलौती पुत्री माया से हुआ था और उनकी एक छोटी सी बेटी थी। बिजय का पचास वर्ष की आयु में असमय निधन हो गया था, जिसके बाद शंकर और माया सबिता के साथ रहने लगे। शंकर ने उस छोटी किराने की दुकान का कार्यभार संभाल लिया जो उनके परिवार की आय का एकमात्र स्रोत थी। परिवार कभी आर्थिक रूप से संपन्न नहीं था और बिजय के निधन के बाद उनकी आर्थिक स्थिति और भी खराब हो गई थी। तब तक उनकी कहानी में आर्थिक अपराध का कोई संकेत नहीं था, जब तक कि उन्होंने अपनी जेब से यूनाइटेड बैंक ऑफ इंडिया (यूबीआई) के कुछ पत्र नहीं निकाले। ये पत्र बिजय बनर्जी को संबोधित थे और उनमें उन्हें सूचित किया गया था कि उनकी 1 लाख रुपये की सावधि जमा (एफडी) बैंक में है और उसे भुनाया जाना चाहिए। यहीं से मामला पेचीदा हो गया। शंकर की जानकारी के अनुसार, न तो बिजय का और न ही उनके परिवार के किसी सदस्य का बैंक में खाता था। एक परिवार जो मुश्किल से अपना गुजारा कर रहा था, अचानक पता चला कि मृतक मुखिया के एक रहस्यमय बैंक खाते में फिक्स्ड डिपॉजिट (एफडी) जमा थे, जिसके बारे में उन्हें कोई जानकारी नहीं थी। शंकर को शक हुआ कि कहीं किसी ने कोई अपराध तो नहीं किया है।

मुझसे संपर्क करने से पहले, शंकर पत्रों के साथ बैंक की शाखा में गए थे और उन्हें एफडीआर की रसीदों की प्रतियां लेकर लौटने के लिए कहा गया था। शंकर ने हार नहीं मानी और बैंक के चक्कर लगाते रहे, अधिकारियों से जान-पहचान बढ़ाते रहे और सवाल पूछते रहे। आखिरकार उन्होंने पहेली सुलझा ली। बैंक के एक कर्मचारी ने कहा कि वह एफडीआर के रहस्य को सुलझाने

में उनकी मदद कर सकता है। शंकर ने अपनी सास को भी जांच में शामिल किया और अधिकारी को सच्चाई बताने के लिए राजी कर लिया। पता चला कि बिजय का वास्तव में बैंक में खाता था, लेकिन वह पूरी तरह से उनके नियंत्रण में नहीं था। खाता खुलवाते समय बिजय के साथ उसी बैंक का एक और ग्राहक भी था—एक ऐसा व्यक्ति जिसका नाम गुप्त रखा जाना चाहिए, एक प्रभावशाली और दबदबा रखने वाला व्यक्ति, जो बेहद अमीर भी था। पता चला कि इस व्यक्ति ने बिजय के नाम पर एक बेनामी खाता खुलवाया था। इस खाते में समय-समय पर पैसे जमा होते थे। जब कोई एफडीआर परिपक्व होता था, तो बिजय और दूसरा ग्राहक पैसे निकाल लेते थे। बैंक अधिकारी को पता था कि बिजॉय दूसरे व्यक्ति के निर्देशों पर काम कर रहा था।

बिजॉय अब इस दुनिया में नहीं थे, लेकिन उनके नाम पर अब भी पाँच सावधि जमा (फिक्स्ड डिपॉजिट) थीं। दो परिपक्व हो चुकी थीं, इसीलिए बैंक से पत्र आए थे। तीन और सावधि जमा बाद में परिपक्व होने वाली थीं। मुझे पता चला कि यह रहस्यमय व्यक्ति बिजॉय का बचपन का दोस्त था। उसने ताड़ के रस से एक ऐसी दवा बनाई थी जिसने बाजार में धूम मचा दी थी और उसे खूब मुनाफा हुआ था। वह समृद्ध व्यक्ति अपने बचपन के दोस्त से दोस्ती का फायदा उठाकर आयकर से बच रहा था। शंकर ने एक आर्थिक अपराध का पर्दाफाश किया था और इस उम्मीद में मेरे पास आया था कि इस मामले में कुछ कार्रवाई की जाएगी।

सन् 1972 में, काला धन हमारी अर्थव्यवस्था के लिए उतना गंभीर खतरा नहीं माना जाता था जितना कि आज है। सीबीआई की ईओडब्ल्यू शाखाएं आयात-निर्यात कानूनों और आवश्यक वस्तु अधिनियम, 1955 के उल्लंघन की जांच करती थीं। एसपी होने के नाते, मुझे बैंकों या दो 'दोस्तों' के बीच ऐसे संदिग्ध लेन-देन की जांच करने का अधिकार नहीं था। बैंकों के अपने ग्राहकों के साथ लेन-देन को गोपनीय माना जाता था, जब तक कि वे भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम का उल्लंघन न करें। मुझे यकीन नहीं था कि यह मामला जांच के लिए उपयुक्त है। मुझे पता था कि अगर मैंने जांच अपने हाथ में ली तो उस मशहूर व्यवसायी का नाम सुर्खियों में आ जाएगा। मुझे यह भी लग रहा था कि भले ही बहुत हंगामा होगा, लेकिन हम अपराधी पर मुकदमा नहीं चला पाएंगे या उसे दोषी साबित नहीं कर पाएंगे।

हालांकि, आयकर विभाग को इस तरह के मामले को अपने हाथ में लेने का अधिकार था। इसलिए मेरे लिए कलकत्ता में आयकर के मुख्य आयुक्त को फोन करना और उन्हें अपनी जानकारी देना आसान निर्णय था। आयुक्त एक वरिष्ठ अधिकारी थे जिन्होंने तुरंत कार्रवाई की। हमने मेरे कार्यालय में एक बैठक आयोजित की जहाँ उन्होंने शंकर से मुलाकात की और उन्हें अपने संरक्षण में ले लिया। उन्होंने हमें मामले को गुप्त रखने की सलाह दी।

आर्थिक अपराध का मामला सामने आने पर, मुझे जल्द से जल्द उचित कार्रवाई शुरू करनी थी। लेकिन जब शंकर मेरे पास आया, तो मैंने एक ऐसे पहलू पर विचार किया जो नियमों में नहीं था। इस युवक को, जिसके परिवार का पेट पालना है, इस मामले से क्या लाभ होगा? ईओडब्ल्यू के पास मुखबिर को इनाम देने का कोई प्रावधान नहीं था। दूसरी ओर, आयकर विभाग कर जुर्माने के रूप में जब्त की गई राशि में से मुखबिरों को अच्छा-खासा हिस्सा देकर पुरस्कृत कर सकता था। विभाग की कार्रवाई सफल रही। उसने जुर्माने के रूप में एक बड़ी राशि वसूल की और शंकर

को उसका उचित इनाम मिला—प्रत्येक मूल्यांकन के लिए ₹50,000 से ₹100,000 के बीच की राशि।

1972 में, दिल्ली विकास प्राधिकरण (डीडीए) द्वारा निर्मित दो बेडरूम वाले फ्लैट की कीमत ₹41,000 से ₹71,000 के बीच थी। पद्मिनी फिएट कार ₹8,000 में उपलब्ध थी। स्पष्ट रूप से, शंकर को इनाम के रूप में मिली धनराशि ने उनके जीवन को आरामदायक बना दिया था। एक दिन, छह साल बाद, 1978 में, कलकत्ता के चौरंगी इलाके में, जहाँ मैं अपनी पत्नी के साथ टहल रहा था, शंकर, उनकी पत्नी और उनकी छोटी बेटी ने मुझे रोका। शंकर और उनका परिवार खुश और समृद्ध दिख रहा था। उद्यमी स्वभाव के शंकर ने एक नई कार खरीदी थी और निजी टैक्सी व्यवसाय शुरू किया था। उनकी सास अभी भी परिवार के साथ रहती थीं। मुझे एहसास हुआ कि मैंने एक व्यक्ति और उसके परिवार को बेहतर जीवन जीने में मदद की है। और इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि मुझे इस मामले को आगे बढ़ाने से पेशेवर रूप से कोई लाभ नहीं हुआ, बल्कि मैंने इसे आयकर विभाग को सौंप दिया ताकि मुखबिर को लाभ मिल सके।

एक बैंक डकैती और एक बड़ी सफलता: 1987

आज के युवाओं के लिए एक रोचक तथ्य। नोटबंदी आतंकवाद को नहीं रोक सकती अगर उसका वित्तपोषण काले धन से नहीं, बल्कि बैंकों से सीधे निकाले गए शुद्ध सफेद धन से हो रहा हो। यह कहानी डाकुओं की है, रॉबिन हुड जैसे डाकुओं की नहीं, बल्कि उन खतरनाक डाकुओं की जो लूटपाट करके भाग जाते थे। वे खालिस्तान कमांडो फोर्स (केसीएफ) के उग्रवादी सदस्य थे।

12 फरवरी 1987 को, इनमें से बारह लोगों ने लुधियाना के औद्योगिक क्षेत्र में पंजाब नेशनल बैंक (पीएनबी) की शाखा में एक ऐसी डकैती को अंजाम दिया, जिसे उस समय भारत की सबसे बड़ी डकैती माना गया। वे लगभग 7 करोड़ रुपये लूटकर फरार हो गए, जो उस समय एक बहुत बड़ी रकम थी। बैंकों को लूटना खालिस्तानी आतंकवादियों का मुख्य तरीका था—ऐसा अनुमान है कि लगभग बीस लोगों के इसी समूह ने ऐसी 19 डकैतियां की थीं और हत्याएं भी की थीं। इन शातिर अपराधियों के जालंधर, चंडीगढ़ और दिल्ली के कई स्थानों पर ठिकाने थे, और उन्होंने पंजाब से गुजरात तक, पाकिस्तान सीमा के साथ पूरे भारत में आतंक फैलाया था। उनका नेटवर्क मुंबई और पुणे से लेकर दुर्ग, भिलाई, रायपुर, कोलकाता और जमशेदपुर तक फैला हुआ था। उन्होंने भारी मात्रा में हथियार और गोला-बारूद जमा कर रखा था और हथियारों को रखने के लिए गुप्त केबिन वाले दो स्टील-प्लेटेड ट्रक खरीदे थे। ऐसा माना जाता है कि इस समूह के दमदमी टकसाल जैसे सिख शिक्षण संस्थानों में भी सहयोगी थे, जहां लूटे गए 3 करोड़ रुपये छिपाए गए थे। पंजाब में आतंकवादी आंदोलन का मुख्य सूत्रधार केसीएफ था।

आतंकवादियों ने 1984 में डाकुओं के रूप में अपनी गतिविधियाँ शुरू कीं। तीन साल बाद उन्होंने बैंक डकैती को अंजाम देकर बड़ी सफलता हासिल की। लेकिन हम उन्हें पकड़ने में कामयाब रहे और उन्हें और अपराध करने से रोक दिया। हमने जो काम किया उसके लिए मुझे अपनी प्रशंसा करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि तत्कालीन पंजाब डीजीपी जूलियो रिबेरो ने 26 जून 1987 को तत्कालीन सीबीआई निदेशक मोहन जी कात्रे को व्यक्तिगत रूप से पत्र लिखकर मेरी टीम के प्रयासों की सराहना की थी।

मैं अधिकारियों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करना चाहता हूँ।
सीबीआई को इस मामले की जांच का कठिन काम सौंपा गया है।
लुधियाना बैंक डकैती मामला. श्री एस. सेन, डीआइजी, श्री मुरारी, एसपी और
अन्य अधिकारियों ने भी कड़ी मेहनत की और वर्दीधारी कर्मियों की मदद से
पुलिस ने चरमपंथियों के विभिन्न ठिकानों पर छापा मारा, हथियार जब्त किए और
अपराधी।
मैं इन उपलब्धियों को इसलिए संजोता हूँ क्योंकि इससे मेरा अहंकार नहीं बढ़ता, बल्कि इसलिए कि हमारे कार्यों ने मेरे राष्ट्र के लिए क्या उपलब्धियाँ हासिल कीं। पंजाब में आतंकवादियों की गतिविधियाँ धीरे-धीरे कम हो गईं। यह बताना ज़रूरी है कि कैसे हमने सभी वर्गों के बहुमूल्य सहयोग से लुधियाना बैंक डकैती का पर्दाफाश किया। इसमें कोई राजनीतिक हस्तक्षेप नहीं था। और हाँ, एक विशेष विमान की भी बहुत मदद मिली!
दिल्ली स्थित गृह मंत्रालय द्वारा मामला सीबीआई को सौंपे जाने के तुरंत बाद, मुझे और मेरी टीम को विशेष रूप से लुधियाना भेजा गया। हमने लुधियाना के 81 फील्ड गंज में एक कमरा किराए पर लिया। हमने इस पते को कैसे चुना? जब हमने अपनी जांच शुरू की, तो मैंने स्थानीय पुलिस को निर्देश दिया कि वे हमें लूटी गई पीएनबी शाखा के आसपास के सभी नए किरायेदारों की रिपोर्ट भेजें। 81 फील्ड गंज भी ऐसा ही एक स्थान था। लेकिन जब तक हमने वहां छापा मारा, तब तक किरायेदार बदल चुके थे और वे रसोई में दोपहर के भोजन के लिए गरमागरम खाना और कई अन्य सामान, जिनमें एक भरा हुआ कैमरा भी शामिल था, छोड़कर भाग गए। जब कैमरे की रील को डेवलप किया गया, तो वह जानकारी का खजाना साबित हुई। हमारे पास आतंकवादियों की तस्वीरें, उनके वाहन और यहां तक कि उनके फर्जी पहचान पत्रों की प्रतियां भी थीं।
हमने एक कार जब्त की और उसमें से एक फर्जी ड्राइविंग लाइसेंस बरामद किया जिस पर असली पता लिखा था। इससे हमें बलबीर सिंह का पता चला, जो भारतीय सेना से भाग गया था। हमने उससे हथियार, गोला-बारूद, लॉकर की चाबियां और 1,96,750 रुपये नकद बरामद किए। बलबीर को जल्द ही गिरफ्तार कर लिया गया और उसने हमें गिरोह की फर्जी पहचान और छिपने के ठिकानों के बारे में जानकारी दी। जून 1987 के मध्य तक, हमने 18 आतंकवादियों के पूरे गिरोह को एक-एक करके गिरफ्तार कर लिया था। हमने 25 सहयोगियों के बारे में भी जानकारी जुटाई। हमारी जांच ने राज्य में खालिस्तानी आतंकी आंदोलन की कमर तोड़ने में काफी हद तक अहम भूमिका निभाई। तत्कालीन संयुक्त निदेशक, सीबीआई, राजेंद्र शेखर, जो बाद में निदेशक बने, ने अपनी आत्मकथा 'मेमोरीज आर मेड ऑफ दिस' में लिखा है कि इस आतंकी गिरोह ने सीबीआई टीम के नेता, यानी मुझे मारने की योजना बनाई थी। लेकिन मैं बच गया। वरना यह किताब लिखी ही न जाती।
इस मामले ने एक अलग ही इतिहास रच दिया। बड़े शहरों में रहने वाले सभी लोग जानते हैं कि जब भी कोई मकान किराए पर दिया जाता है, तो मकान मालिक को किराएदार का नाम, उसकी फोटो पहचान पत्र और अन्य दस्तावेज सत्यापन के लिए स्थानीय पुलिस स्टेशन में जमा करने होते हैं। हालांकि, 1980 के दशक में यह प्रथा व्यापक रूप से प्रचलित नहीं थी। सीबीआई द्वारा

पंजाब में जांचा गया पहला आतंकी अपराध जून 1984 में अमृतसर में चलाया गया ऑपरेशन ब्लू स्टार था। इसके तुरंत बाद, एक डीआईजी के अधीन पंजाब सेल का गठन किया गया। मैं पहला डीआईजी था।

उन दिनों आतंकवादी अपराधों से सबसे ज़्यादा प्रभावित राज्य पंजाब, हरियाणा और दिल्ली थे। तत्कालीन केंद्रीय गृह सचिव राम प्रधान ने इन राज्यों के अधिकारियों का एक समूह गठित किया, जिसकी साप्ताहिक बैठक चंडीगढ़ में होती थी। सीबीआई के डीआईजी के रूप में, मैं बैठक का संयोजक था और आईबी का एक उप निदेशक सदस्य होता था। हम हर सप्ताह मिलते थे, विभिन्न जांचों में हुई प्रगति का जायजा लेते थे और बैठक का विवरण दर्ज करते थे ताकि जहां भी और जब भी आवश्यक हो, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र और जम्मू-कश्मीर में स्थित विभिन्न पुलिस विभागों और खुफिया एजेंसियों द्वारा संयुक्त कार्रवाई की जा सके।

ऐसी ही एक बैठक के दौरान, लुधियाना स्थित पीएनबी शाखा और उसके आसपास के सभी नए किरायेदारों की पहचान करने के लिए एक व्यापक अभियान चलाने की हमारी रणनीति पर चर्चा हुई। किरायेदार सत्यापन का यह विचार बाद में उल्लिखित राज्यों द्वारा अपनाया और लागू किया गया। अहमदाबाद के एक विशेष क्षेत्र में नए किरायेदारों का सर्वेक्षण करते समय, गुजरात पुलिस को लगा कि इसका इस्तेमाल आतंकवादी कर रहे हैं। हालांकि, बाद में पता चला कि अपराधी बैंक लुटेरे थे, जिन्हें लूटी गई रकम का कुछ हिस्सा लेकर किराए के मकान में वापस आने पर पकड़ा गया।

लुधियाना बैंक डकैती के मामले को समाप्त करते हुए, जुलाई 1987 में आरोपियों पर टीएडीए कोर्ट में मुकदमा चलाया गया। मुकदमा लंबा चला और अंततः नवंबर 2012 में, मुकदमे में शामिल सभी 12 आरोपियों को दोषी ठहराया गया और उन्हें दस साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई।

एक कम चुना हुआ रास्ता: 1987

यह कहानी भी अस्सी के दशक के उत्तरार्ध की है, जब पंजाब और उत्तरी भारत के अन्य हिस्से खालिस्तानी समूहों के आतंकी हमलों से त्रस्त थे। सिख धर्म के अनुयायियों के लिए प्रसिद्ध मदरसा दमदमी टकसाल में उपदेश देने वाला एक व्यक्ति, जो अपने उग्र और भड़काऊ भाषणों से नफरत और हिंसा भड़काने के लिए कुख्यात था, पंजाब के सीमावर्ती शहर मुक्तसर से गिरफ्तार किया गया। यह हमारे लिए एक बड़ी सफलता थी क्योंकि उपदेशक लंबे समय से छिपा हुआ था। पूछताछ के लिए उसे सीबीआई की पंजाब प्रकोष्ठ के मुख्यालय, यानी मेरे कार्यालय में लाया जाना था।

मैंने फैसला किया, 'हम सड़क मार्ग से यात्रा नहीं करेंगे।'

क्यों? सड़क यात्रा के दौरान पकड़े गए कैदियों को छुड़ाने के कई प्रयास पहले ही हो चुके थे। रविवार का दिन था। दिल्ली में सर्दी का मौसम शुरू हो रहा था। मैं सीमा सुरक्षा बल (बीएसएफ) के महानिरीक्षक (वायु) को फोन करके मुक्तस्तर से दिल्ली जाने के लिए विमान की व्यवस्था करने ही वाला था कि अचानक मेरे आरएएक्स फोन की घंटी बजी।

[नोट: बीएसएफ उन विमानों और हेलीकॉप्टरों की संरक्षक है जिनकी आवश्यकता केंद्रीय जांच/

खुफिया संगठनों को हो सकती है। आरएएक्स, प्रतिबंधित पहुंच एक्सचेंज का संक्षिप्त रूप है, जो दिल्ली में स्थित एक टेलीफोन एक्सचेंज है जिसका उपयोग त्वरित और सुरक्षित संचार के लिए चुनिंदा सरकारी अधिकारियों तक ही सीमित है। आरएएक्स फोन पर आने वाली कॉल का जवाब व्यक्तिगत रूप से देना होता था या उसे बजने देना होता था।]

आरएएक्स कॉल के दूसरी तरफ सीबीआई निदेशक मोहन जी कात्रे थे। हमारी बात एक घंटे पहले ही हुई थी, जब मैंने उन्हें मुक्तसर गिरफ्तारी के बारे में जानकारी दी थी। ऐसा लग रहा था कि वे कुछ और चर्चा करना चाहते हैं, क्योंकि उन्होंने मुझे एक घंटे के भीतर नॉर्थ ब्लॉक स्थित अपने कार्यालय में आने के लिए कहा। बीएसएफ के आईजी (एयर) को मेरा कॉल अभी रुक गया। मैंने अपने बॉस को खुशमिजाज पाया। इससे पहले कि मैं कुछ कह पाता, उन्होंने कहा: 'उसे सड़क मार्ग से ले आओ।'

तब तक मैं खालिस्तानी अलगाववादी आंदोलन का विशेषज्ञ बन चुका था और मैं सोच रहा था कि मेरी योजना के बारे में सुने बिना ही वह यह कठोर आदेश क्यों जारी कर रहे हैं? मैं स्तब्ध रह गया, लेकिन बिना तर्क दिए हार मानने को तैयार नहीं था। उन्होंने मेरी बात सुनी और फिर अपने आदेश दोहराए। उन्होंने अपने रुख पर अडिग रहते हुए कहा कि तत्कालीन गृह सुरक्षा मंत्री अरुण नेहरू और पंजाब के राज्यपाल सिद्धार्थ शंकर राय दोनों का यही मत था कि इस आतंकवादी को मुक्तसर से दिल्ली तक सड़क मार्ग से जाना चाहिए।

यह आदमी खतरनाक था; उसे मारा जा सकता था। उसकी सुरक्षा के लिए जाने वाली टीम पूरी तरह से हथियारों से लैस होनी चाहिए। मैं खुद टीम का नेतृत्व करूंगा। निदेशक, जो अब हंसमुख नहीं बल्कि गंभीर दिख रहे थे, ने सिर हिलाया। मैंने दृढ़ता से कहा, 'हम उसे भागने की कोशिश में न तो बचाए जाने देंगे और न ही मारे जाने देंगे।'

मैं उनके कमरे से निकला और सीधे घर चला गया। उसी दोपहर बाद, निदेशक के निजी सहायक ने मुझे बताया कि मुझे फिर से उनके कार्यालय जाना चाहिए। मैं तुरंत वहाँ पहुँचा और कात्रे के मुस्कुराते चेहरे को देखकर दंग रह गया। उन्होंने मुझे बैठने के लिए कहा और कुछ देर तक मुस्कुराते रहे। मैं अचंभित था। तीन मिनट बाद, उन्होंने मुझसे कहा: 'सेन, मुक्तसर के लिए एक विमान भेजो और सुनिश्चित करो कि वह कल दिल्ली में हों।'

मुझे अपने कानों पर विश्वास नहीं हुआ। मैं अंदर से बहुत खुश था, लेकिन बाहर से शांत दिखने की कोशिश कर रहा था। मैं उत्सुक था और पिछले कुछ घंटों में जो कुछ हुआ था, उसके बारे में उससे और जानकारी लेने लगा। मेरे बॉस ने मंत्री और राज्यपाल को मेरी बात बता दी थी कि सीबीआई उसे भागने नहीं देगी और अगर उसे भागने देने की कोई कोशिश की गई तो खून-खराबा होगा। मेरी बात मान ली गई। उस खतरनाक आतंकवादी को दिल्ली लाया गया, टीएडीए के तहत पुलिस हिरासत में लिया गया, फिर राष्ट्रीय सुरक्षा अधिनियम (एनएसए) के तहत हिरासत में लिया गया और बाद में दो साल तक जम्मू के एक नजरबंदी केंद्र में रखा गया। रिहा होने के बाद वह किसान बन गया।

मैं सिर्फ अनुमान ही लगा सकता हूँ कि अगर उसे मुक्तसर से दिल्ली सड़क मार्ग से लाया जाता तो क्या होता। मैं खून-खराबे के लिए तैयार था। मैं अपनी जान जोखिम में डालने को भी तैयार

था। लेकिन खैर, ऐसा नहीं हुआ।

भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर की प्रतिभूति घोटाले में भूमिका: 'आप झूठे हैं,' भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर एस वेंकिटारमनन ने पलटवार किया जब संयुक्त संसदीय समिति (जेपीसी) के सदस्य और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी (सीपीआई) से संबंधित सांसद गुरुदास दासगुप्ता ने उन पर 1991 के प्रतिभूति घोटाले के मास्टरमाइंड मुंबई स्थित स्टॉकब्रोकर 'बिग बुल' हर्षद मेहता की मदद करने का आरोप लगाया।

भारत में ऊंचे ओहदे वाले लोग अक्सर कानून की गिरफ्त से बच निकलते हैं। देश के केंद्रीय बैंक और सर्वोच्च मौद्रिक प्राधिकरण के प्रमुख भी बच निकले। लेकिन हममें से कुछ लोगों ने—दिवंगत दासगुप्ता और मैंने—कम से कम यह सुनिश्चित किया कि वेंकितरमनन को बदनामी झेलनी पड़े और उन्हें कार्यकाल विस्तार न मिले।

यह घोटाला इस बात से जुड़ा था कि देश के सबसे बड़े बैंक, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया (एसबीआई) के नेतृत्व में सरकारी बैंकों ने, आरबीआई गवर्नर के आशीर्वाद से, मेहता जैसे सट्टेबाजों के लिए अपने खजाने खोल दिए थे। जब मेरी टीम मेहता की जांच कर रही थी और उसके लेखाकार खंडेलवाल को गिरफ्तार कर रही थी, उसी दौरान कांग्रेस सांसद राम निवास मिर्धा की अध्यक्षता वाली जेपीसी, जिसमें दासगुप्ता भी शामिल थे, अपना काम कर रही थी। बाद में उन्होंने अपनी पुस्तक में इस घोटाले की जांच का विस्तृत और सटीक विवरण लिखा।

मोनोग्राफ: द सिक्योरिटीज स्कैंडल: ए रिपोर्ट टू द नेशन (1993)। 49

यहां मैं संक्षेप में उस कहानी को बताता हूं कि कैसे आरबीआई गवर्नर पर आरोप लगे, मेहता के साथ मिलीभगत पाई गई और अंततः दो साल के कार्यकाल के अंत में उन्हें अपमानजनक तरीके से पद छोड़ना पड़ा। सीबीआई जांच की संभावना को देखते हुए, वेंकिटारमनन दिल्ली आए और विशेष रूप से प्रतिभूति घोटाले की जांच के लिए गठित टीम के प्रमुख के रूप में सीबीआई के संयुक्त निदेशक के. माधवन की सेवाएं मांगीं। माधवन को वे जानते थे। उन्होंने अतिरिक्त सचिव (वित्त) के.जे. रेड्डी और सीबीआई निदेशक विजय करण से मुलाकात की, जिनके बाद एस.के. दत्ता निदेशक बने। करण ने सीबीआई का नेतृत्व करने से पहले कभी सीबीआई में काम नहीं किया था, जबकि दत्ता सीबीआई के निदेशक बनने से पहले सभी वरिष्ठ पदों पर काम कर चुके थे। दासगुप्ता ने उनसे मुलाकात की, पूरी घटना बताई और सीबीआई की इस विफलता की आलोचना की कि वह उन सरकारी कर्मचारियों के बीच भ्रष्टाचार के सबूत नहीं ढूंढ पाई, जिन्होंने मेहता जैसे स्टॉक ब्रोकरों को बैंकों के पैसे का दुरुपयोग करने की खुली छूट दी थी।

दत्ता ने बदलाव किए। सबसे पहले, उन्होंने मेहता की जांच के लिए माधवन को ही नियुक्त किया। फिर, उन्होंने उनकी जिम्मेदारियों को साझा करने के लिए एक और संयुक्त निदेशक को नियुक्त किया। घोटाले में सरकारी कर्मचारियों की भूमिका की जांच दो भ्रष्टाचार-विरोधी इकाइयों द्वारा की जानी थी, जिनमें से प्रत्येक का नेतृत्व सीबीआई मुख्यालय में तैनात एक डीआईजी द्वारा किया जाना था। दोनों इकाइयां मुझे रिपोर्ट करती थीं क्योंकि उस समय मैं भ्रष्टाचार-विरोधी विभाग में संयुक्त निदेशक के पद पर था।

दासगुप्ता ने अपने मोनोग्राफ में लिखा: 'भारत में सरकारी बैंकों ने सट्टेबाजों के लिए अपने दरवाजे

खोल दिए, जिनके संदिग्ध लेन-देन 13,00,000 करोड़ रुपये तक पहुंच गए: शेयर बाजार में उछाल आया और हर कोई खुशी से झूम उठा; जिसे उस समय बदलाव के अनुरूप एक प्रणाली माना जा रहा था—तेजी से बढ़ते बाजार ने निवेशकों की भीड़ को आकर्षित किया: छोटे-छोटे अनुभवहीन निवेशक जो जल्दी पैसा कमाने की तलाश में थे। बेलगाम सट्टेबाजी चल रही थी—धन दलालों से आ रहा था और सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम अधिशेष निधि बैंकों में जमा कर रहे थे: और बैंक उन्हें दलालों को बांट रहे थे।'

मेरी भूमिका यह पता लगाने की थी कि सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम मेहता के माध्यम से बैंकों में अपना अधिशेष क्यों जमा कर रहे थे, और बैंक उसे अपने पैसे का उपयोग करके सट्टेबाजी करने की अनुमति क्यों दे रहे थे। यह स्पष्ट हो गया कि आरबीआई गवर्नर वेंकिटारमनन ही जांच में मुख्य भूमिका निभा रहे थे। जांच दल के प्रमुख के रूप में संयुक्त निदेशक के चयन को प्रभावित करने के बाद, वे अक्सर नाश्ते पर उनसे मिलते थे और जांच की प्रगति के बारे में जानकारी लेते थे (जो घोटाले में लोक सेवकों की भूमिका की जांच से पूरी तरह बच रही थी)। इससे नए निदेशक दत्ता और एमपी दासगुप्ता चिंतित हो गए। आरबीआई गवर्नर द्वारा जांच को प्रभावित करने के प्रयासों के बावजूद, हमें उन्हें दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त सबूत मिले। हमने आरबीआई, एसबीआई और यूसीओ (पूर्व में यूनाइटेड कमर्शियल) बैंक के कर्मचारियों पर मुकदमा चलाया। हमने ऑयल एंड नेचुरल गैस कॉर्पोरेशन (ओएनजीसी), मारुति उद्योग लिमिटेड और नेशनल थर्मल पावर कॉर्पोरेशन के उन कर्मचारियों पर भी मुकदमा चलाया, जो मेहता के साथ मिलीभगत कर रहे थे। चौंकाने वाली बात यह थी कि घोटालेबाज का संरक्षक स्वयं आरबीआई गवर्नर था। अन्य बातों के अलावा, उन्होंने एसबीआई अध्यक्ष एम.एन. गोइपुरिया के मेहता के खाते को निगरानी में रखने के आदेश को रद्द करके मेहता की मदद की। यह कार्य उसने अपने गुर्गे और बैंक के प्रबंध निदेशक ए. महादेवन की सेवाओं का उपयोग करके हासिल किया, जिन्हें बाद में बर्खास्त कर दिया गया।

वेंकिटारमनन के आशीर्वाद से मेहता का खाता सक्रिय किया गया। उनके साथ मिलकर काम करने वाले एक अन्य व्यक्ति के. मार्गबंधु थे, जो एसबीआई के पूर्व अधिकारी थे और बाद में यूनाइटेड कमर्शियल बैंक के प्रबंध निदेशक बने। उन पर मुकदमा चला और उन्हें जेल भेज दिया गया। दासगुप्ता ने 'हाथ में हाथ: मिलीभगत की कहानी' नामक अध्याय में इस घटनाक्रम का भयावह विवरण दिया है। मैं उस टीम का हिस्सा था जिसने दासगुप्ता के साथ मिलकर मेहता द्वारा अपने संदिग्ध सौदों को अंजाम देने के लिए बुने गए प्रभावशाली लोगों के जाल को सुलझाने का काम किया।

एक हिट फिल्म का निर्देशन: 1965

कई लोग 1960 के दशक को पॉप संस्कृति का स्वर्ण युग मानते हैं। भारत की कुछ बेहतरीन क्लासिक फिल्में इसी दौर में बनीं। मैंने भी इसी दौरान एक छोटी फिल्म बनाई थी, और वह सुपरहिट रही।

1965 में मैं कलकत्ता (अब कोलकाता) में था, सीबीआई में भर्ती हुए मुझे मुश्किल से छह महीने हुए थे और मैं अभी भी प्रोबेशन पर था। एक दिन मेरे बॉस, एबी चौधरी, एसपी, सीबीआई,

कलकत्ता ने मुझे बुलाया। वरिष्ठ निरीक्षक एनएल बोस पहले से ही उनके कमरे में मौजूद थे। चौधरी ने मेरा संक्षिप्त मूल्यांकन किया, सिर हिलाया और कुछ ऐसा कहा जो मुझे 54 साल बाद भी याद है। उन्होंने कहा: 'तुम तैयार हो और अब अकेले जाओ। बोस के साथ जाओ। वह तुम्हें जानकारी देंगे।'

मुझे 'माई फर्स्ट ट्रैप' या 'माई फर्स्ट हंट' नामक फिल्म का निर्देशन करने का काम सौंपा गया था, आप इसे जो चाहें नाम दे सकते हैं।

नागरिकों को सेवाएं प्रदान करने या लाभ पहुंचाने का दायित्व सौंपे गए सरकारी अधिकारी अक्सर कमजोर नागरिकों से रिश्वत मांगने (और लेने) की स्थिति में होते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि उनके बिना उनका काम नहीं हो सकता। कई लोग रिश्वत दे देते हैं, लेकिन कुछ लोग विरोध करते हैं। वे टालमटोल करते हैं, सौदेबाजी करते हैं और फिर एक कदम आगे बढ़कर रिश्वत मांगने वाले को फंसाने और उसे गिरफ्तार करवाने की कोशिश करते हैं। मुझे अभी-अभी ऐसा ही एक काम सौंपा गया है।

दक्षिण पूर्वी रेलवे (एसईआर) के फेयरली प्लेस कार्यालय में एक वरिष्ठ कैशियर वह भ्रष्ट अधिकारी था जिसे मुझे जाल बिछाकर पकड़ना था। एक सिविल ठेकेदार काफी समय से एसईआर के साथ नियमित रूप से काम कर रहा था। उसका आखिरी बिल स्वीकृत हो चुका था और चेक तैयार था, लेकिन कैशियर घोष अपना कमीशन मिलने तक चेक देने को तैयार नहीं था। मुझे कैशियर को रंगे हाथों पकड़ने का जिम्मा सौंपा गया था। जाल बिछाना एक जटिल काम है और आमतौर पर सीबीआई के वरिष्ठ अनुभवी अधिकारियों को ही ऐसा काम सौंपा जाता है। याद रखिए, यह उस समय की बात है जब ईमेल, फोन हैकर, सीसीटीवी (क्लोज-सर्किट टेलीविजन) कैमरे या कमरे की गुप्त जासूसी करने वाले उपकरण नहीं थे। जाल को बहुत सावधानी से तैयार करना पड़ता था। ऐसे लोगों या एजेंटों को लगाया जाता था जो जाल का हिस्सा बनकर बाद में अदालत में गवाह के रूप में गवाही देते—उन्हें दोनों मुख्य किरदारों के बीच की बातचीत सुननी होती थी। मेरे लिए यह काम किसी फिल्म के निर्देशन से कम नहीं था। मैं युवा और जोश से भरा हुआ था, मैंने पूरी लगन से अपनी भूमिका निभाई।

सीबीआई अकादमी में अपने प्रशिक्षण के दौरान, मैंने जाल बिछाने के तरीकों के बारे में पढ़ा तो था, लेकिन कभी इसका प्रत्यक्ष प्रदर्शन नहीं देखा था। मेरे पास सिर्फ़ एक मैनुअल ही मार्गदर्शक था। बुनियादी चरण ये थे कि सबसे पहले उस व्यक्ति का आकलन किया जाए जो जाल बिछाने में मदद करने वाला था, इस मामले में, वह एक नागरिक ठेकेदार था। क्या वह सच बोल रहा था? क्या उसका मकसद वाकई वही था जो वह बता रहा था? चूंकि वह एसईआर का ठेकेदार था, तो उसके कैशियर के फंसने के बाद संगठन के साथ उसके पेशेवर संबंधों का क्या होगा? अगर वह सीबीआई के सहयोगी के रूप में जाना जाने लगे तो क्या होगा? क्या वह अपने इरादे के परिणामों से अवगत था?

मुझे इस बात का भी यकीन करना था कि वह सीबीआई को अपराधी पकड़ने में मदद करने के लिए वहां आया था, न कि सिर्फ निजी दुश्मनी निकालने के लिए कैशियर को निशाना बनाने के लिए। मुझे उसके इरादों के बारे में पूरी तरह आश्वस्त होना था। कोई भी गलती सीबीआई को

शर्मनाक स्थिति में डाल सकती थी—जिससे मेरे पेशेवर करियर पर धब्बा लग जाता। मेरी सारी पृष्ठभूमि जांच गुप्त रूप से की जानी थी ताकि किसी को भी आगाह न हो। मुझे पता चला कि इस व्यक्ति का एसईआर के साथ ठेकेदार के रूप में अच्छा रिकॉर्ड था। उसे नियमित रूप से काम मिल रहे थे और भुगतान भी हो रहा था। मैंने अनुमान लगाया कि वह नियमित रूप से कैशियर को रिश्वत भी दे रहा था। पूछताछ करने पर उसने मुझे बताया कि वह एसईआर से अपना संबंध खत्म करने जा रहा है और भ्रष्ट कैशियर को उसके सभी पुराने अपराधों के लिए सजा दिलवाना चाहता है। वह एक ईमानदार व्यक्ति लग रहा था। मैंने अपने बॉस की अनुमति प्राप्त की और पीड़ित को जाल में फंसाने के काम में जुट गया।

तैयारियां काफी जटिल थीं। वह जगह तय की गई जहां पैसों का लेन-देन होना था। दो गवाह इस 'घटना' को देखेंगे, लेकिन किसी को शक नहीं होने देंगे कि वे वहां क्यों हैं। सौभाग्य से, एसईआर कार्यालय का फेयरली प्लेस स्थित कार्यालय एक सार्वजनिक स्थान था और किसी अनजान व्यक्ति (जो गवाह के रूप में काम करेगा) की उपस्थिति से ज्यादा संदेह पैदा नहीं होगा। फिर मुख्य व्यक्ति, यानी रिश्वत देने वाले को प्रशिक्षित करने का काम शुरू हुआ। उसे न केवल रिश्वत देनी थी, बल्कि तभी देनी थी जब रिश्वत लेने वाला मांगे और यह भी सुनिश्चित करना था कि गवाह बाद में अदालत में गवाही दे सकें कि उन्होंने रिश्वत की 'मांग' होते हुए सुना या देखा था - यह मुकदमे के दौरान दोष साबित करने के लिए अनिवार्य था।

मैंने फिल्म निर्देशक का रूप धारण किया और तीन व्यक्तियों को उनकी भूमिका निभाने के लिए कहा: दो गवाह और रिश्वत की रकम ले जाने वाला व्यक्ति। यह साबित करना था कि रिश्वत देने वाले और रिश्वत लेने वाले दोनों के पास ही वह 'दागी रकम' मौजूद थी। नोटों पर एक प्रकार का पाउडर छिड़का गया। नकदी के लेन-देन के बाद, नोटों को छूने वाले दोनों व्यक्तियों के हाथों को पानी में डुबोया गया, जिससे वे चमकीले गुलाबी हो गए - हमें अदालत में यह साबित करना था कि आरोपी कैशियर को 'रंगे हाथों' पकड़ा गया था।

जाल कामयाब रहा। कैशियर दोषी पाया गया और उसे छह महीने की जेल हुई। पहले कलकत्ता उच्च न्यायालय और फिर सर्वोच्च न्यायालय ने उसके फैसले को बरकरार रखा। 30 फीट की दूरी से मैंने सारा घटनाक्रम अपनी आँखों से देखा। रिश्वत देने वाला पहले तो चला गया, फिर कैशियर ने उसे रुकने का इशारा किया और अपनी चीज़ माँगी, जो उसे लगता था कि उसकी है। गवाहों ने उसकी बातें सुनीं और मैं उसके होंठ पढ़ सकता था। जिरह की कोई भी हद मेरी गवाही को हिला नहीं सकी। हमारे सबूत पुख्ता थे। फिल्म बॉक्स ऑफिस पर सुपरहिट रही।

एक अनकही कहानी: 1972

मुझे यहाँ एक रोमांचक कहानी याद आ रही है जो अब तक अनकही है। मैं स्वीकार करता हूँ कि मुझे कई बातें याद नहीं हैं, लेकिन मुझे याद है कि मैं कितना उत्साहित था यह सोचकर कि मैं यह कहानी अपनी उस समय की युवा पत्नी को सुनाऊँगा। लेकिन वह अवसर कभी नहीं आया। नहीं, मेरी पत्नी अभी भी स्वस्थ और तंदुरुस्त है। फिर क्या हुआ? रुकिए, चलिए शुरू से शुरू करते हैं।

यह सन् 1972 की बात है, मैं अपनी पत्नी और बच्चों के साथ दिल्ली से कोलकाता आया था और आर्थिक कानूनों से संबंधित अपराधों से निपटने वाली सीबीआई शाखा का कार्यभार संभाला

था। एक मुखबिर ने हमें सूचना दी थी कि एक प्रसिद्ध महिला के घर में भारी मात्रा में काला धन छिपा हुआ है। उसने हमें बताया कि नोट कहाँ छिपाए गए थे और धन की राशि कितनी थी। मैं बहुत उत्साहित था। मेरी पत्नी भी उत्साहित थी, जिसे आगे की पूरी जानकारी देने का वादा किया गया था।

सीबीआई टीम के घटनास्थल पर पहुंचते ही काफी हलचल मच गई। चारों ओर अफरा-तफरी और हंगामा मच गया। हमारे अधिकारियों को कुछ प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। कानूनी औपचारिकताएं पूरी करने में छापेमारी से भी ज्यादा समय लग गया। जब मैं घर लौटा तो आधी रात हो चुकी थी। रास्ते में मैं मन ही मन दिन भर की घटनाओं को सुनाने का अभ्यास कर रहा था, जिसमें नाटकीय प्रभाव के लिए थोड़ा मसाला भी मिला रहा था। जब मैं अपनी कॉलोनी के लोहे के गेट तक पहुंचा तो थका हुआ और नींद से व्याकुल था। मैंने सोचा कि कहानी अगले कार्यदिवस पर सुनाऊंगा। मुझे तब एहसास हुआ कि मेरी पत्नी मेरा इंतजार कर रही थी जब मैंने देखा कि हमारे बेडरूम की बत्तियां जल रही थीं जबकि बाकी कॉलोनी में अंधेरा छाया हुआ था।

मैंने दरवाज़े की घंटी दबाई। कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। मैंने फिर से दबाई। फिर भी कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। मैंने थोड़ी देर इंतज़ार किया। फिर घंटी को बार-बार दबाया। तब तक हमारे पड़ोसी जाग चुके थे। जिस इमारत में हम रहते थे, उसमें दूसरे फ्लैटों के दरवाज़े खुल गए थे और लोग बाहर आ गए थे। कुछ लोग अपनी आँखें मल रहे थे, जबकि कुछ इस बात से हैरान थे कि सीबीआई अधिकारी की पत्नी उस फ्लैट का दरवाज़ा क्यों नहीं खोल रही है, जिसमें वे मुश्किल से दो हफ्ते पहले ही रहने आए थे। मैं शर्मिंदा था। दो युवकों को एक विचार आया कि वे हमारे बेडरूम की खिड़की पर पत्थर फेंकेंगे, जहाँ मेरी पत्नी और हमारे बच्चे होने चाहिए थे। उन्होंने ऐसा किया भी। लेकिन इससे कोई फायदा नहीं हुआ। आखिरकार, हममें से कुछ लोगों ने अपने कंधों का इस्तेमाल करके दरवाज़ा थोड़ा सा खोला। मैं दौड़कर बेडरूम में गया। मेरी पत्नी गहरी नींद में सो रही थी, उसे कुछ पता ही नहीं था कि क्या हुआ है। हमारे बच्चे उसके बगल में सो रहे थे। मैंने उसे हल्का सा धक्का दिया। वह चौंककर उठी और मुझसे पूछा कि मैं अंदर कैसे आ गया।

यह बिल्कुल निराशाजनक अंत था। मैंने अपने पड़ोसियों से कहा कि चिंता न करें, सब ठीक है और मेरी पत्नी पौराणिक कुंभकर्ण की तरह सो रही थी। मुझे इस बात की राहत थी कि वह और बच्चे सुरक्षित थे। लेकिन उस दिन की कहानी अनकही रह गई, और इस किताब के छपने तक भी अनकही ही रही।

8

एलजी के पुलिस सलाहकार ने बात की

भारत के राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र को कभी-कभी देश की अपराध राजधानी कहा जाता है। इस अध्याय में, मैं दिल्ली के उपराज्यपाल (एलजी) तेजेंद्र खन्ना के सलाहकार के रूप में अपने अनुभवों को साझा करता हूँ। मैंने 24 जुलाई 2007 को उनका सलाहकार पद ग्रहण किया और जुलाई 2013 में समाप्त हुए उनके पूरे कार्यकाल में उनके साथ रहा। दिल्ली गृह विभाग, जिसमें दिल्ली पुलिस, दिल्ली कारागार, दिल्ली अग्निशमन सेवा और अभियोजन विभाग शामिल हैं, इस अवधि के दौरान मेरे माध्यम से एलजी को रिपोर्ट करता था। इन सभी विभागों में से, अभियोजन विभाग सीधे विधि मंत्री को रिपोर्ट करता था और केवल कुछ ही मामले जिनमें अभियुक्तों को बरी कर दिया गया था और अपील दायर करनी थी, एलजी के आदेशों के लिए प्रस्तुत किए जाते थे। यद्यपि वे विभाग के दैनिक कार्यों की निगरानी नहीं करते थे, फिर भी दोषसिद्धि की कम दर ने दिल्ली पुलिस की प्रतिष्ठा पर और अप्रत्यक्ष रूप से एलजी की प्रतिष्ठा पर भी बुरा प्रभाव डाला। खन्ना ने दिल्ली में भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और मैंने भी उनके साथ अपना योगदान दिया। किसी भी राज्य में पुलिसकर्मियों का मूल्यांकन अपराध की रोकथाम और पता लगाने तथा अपराधियों पर सफल अभियोजन के आधार पर किया जाता है। सफल अभियोजन दर का अर्थ है उच्च दोषसिद्धि दर। दिल्ली पुलिस ने पारंपरिक रूप से अन्य महानगरों और राज्यों के पुलिस विभागों की तुलना में अपराध की रोकथाम और पता लगाने में बेहतर प्रदर्शन किया है, लेकिन अभियोजन के मामले में उसका रिकॉर्ड खराब है और इसलिए राष्ट्रीय राजधानी में दोषसिद्धि दर निराशाजनक रूप से 80 प्रतिशत अपराधों में से केवल 30 प्रतिशत है। यहां यह उल्लेख करना आवश्यक है कि दिल्ली पुलिस सीधे केंद्र सरकार के गृह मंत्रालय के अधीन आती है, न कि निर्वाचित राज्य सरकार के; और उपराज्यपाल केंद्र सरकार द्वारा नामित व्यक्ति होते हैं।

भारत में दोषसिद्धि की कुल दर मात्र 46 प्रतिशत है, जो बेहद दयनीय है, खासकर कनाडा (97 प्रतिशत), संयुक्त राज्य अमेरिका (75 प्रतिशत), यूनाइटेड किंगडम (80 प्रतिशत) और चीन (99 प्रतिशत) जैसे देशों की तुलना में। अधिकांश विकसित देशों में, किसी मामले को मुकदमे के लिए भेजने का निर्णय एक स्वतंत्र निकाय द्वारा लिया जाता है, जिसे विभिन्न देशों में अलग-अलग नामों से जाना जाता है। उदाहरण के लिए, अमेरिका में इसे डिस्ट्रिक्ट अटॉर्नी और ब्रिटेन में क्राउन प्रॉसिक्यूशन सर्विस कहा जाता है। भारत में, हमारे पास ऐसा कोई अलग निकाय नहीं है और आरोप पत्र दाखिल करने और अभियोजन कार्यवाही शुरू करने का निर्णय पुलिस विभाग के जांच अधिकारी (आईओ) पर निर्भर करता है। भारत में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 25ए के तहत एक अभियोजन निदेशक (डीपी) का प्रावधान है, जो उच्च न्यायालय द्वारा नियुक्त किया जाएगा और जिसके पास किसी मामले को अभियोजन के लिए भेजने का निर्णय लेने से पहले साक्ष्यों की पूरी तरह से जांच करने की स्वतंत्र शक्तियां होंगी। नियुक्ति के बाद, न्यायिक सलाहकार (डीपी) को साक्ष्य की जाँच करने, अभियोजन पक्ष के गवाहों से पूछताछ करने और

मामले को अदालत में भेजने से पहले अन्य सभी पहलुओं की जाँच करने का अधिकार होगा। यदि डीपी को साक्ष्य अपर्याप्त या नाकाफी लगते हैं, तो वे आगे की जाँच की सिफारिश कर सकते हैं। डीपी की स्थापना भारतीय आपराधिक न्याय प्रणाली के लिए एक महत्वपूर्ण सुधार है जिसकी उसे आवश्यकता है।

अपने उपराज्यपाल कार्यकाल के दौरान, खन्ना ने दिल्ली में पुलिस थाना (डीपी) स्थापित करने के कई प्रयास किए, लेकिन मुख्यमंत्री शीला दीक्षित ने उनके प्रस्ताव को ठुकरा दिया। फिर भी, 2007 से 2013 के बीच, उन्होंने दिल्ली में अपराधों का पता लगाने और उन्हें रोकने के प्रयासों को जारी रखा। इनमें से कुछ उल्लेखनीय हैं। 2007 में, 700 पुलिस 'बीट्स' थे, जो चार वर्षों में तीन गुना बढ़कर 2,100 हो गए। आतंकवादी गतिविधियों और महिलाओं और बुजुर्गों के खिलाफ अपराधों में कमी आई; और मोटर वाहन दुर्घटनाओं की संख्या में भी कमी आई। 2006 में प्रकाश सिंह और अन्य बनाम भारत संघ मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले के अनुसार एक पुलिस शिकायत प्राधिकरण की स्थापना की गई। यह पहल भारत में अपनी तरह की पहली पहल थी। भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के तहत, नागरिक दिल्ली पुलिस के खिलाफ जबरन वसूली, उत्पीड़न, दुर्व्यवहार, गैरकानूनी हिरासत या गिरफ्तारी से संबंधित शिकायतें दर्ज करा सकते थे। इस कदम से शिकायतों के निवारण में काफी हद तक मदद मिली।

नागरिक समाज के कई सदस्यों ने दिल्ली पुलिस के परिवर्तन कार्यक्रम में सहयोग दिया, जिसे महिलाओं को अपराधों की रिपोर्ट करने में मदद करने के लिए स्थापित किया गया था। इस कार्यक्रम के तहत, प्रत्येक पुलिस स्टेशन में महिला अधिकारियों को तैनात किया गया था।

पुलिस स्टेशन। एक अन्य पहल युवा पहल 50 थी, जिसने झुग्गी-झोपड़ी वाले इलाकों में अपराध दर को कम करने के लिए युवाओं को अपने कौशल को बेहतर बनाने में मदद की। यह कार्यक्रम राष्ट्रीय कौशल विकास निगम (एनएसडीसी) के साथ समन्वित था और प्रशिक्षित कुछ युवा लड़के-लड़कियों ने पुलिस विभाग में नौकरी की। 2007 से 2013 के बीच, दिल्ली पुलिस ने आपराधिक गतिविधियों का अधिक कुशलता से पता लगाया। हालांकि, सजा दिलाने के मामले में, दिल्ली सरकार के असहयोग के कारण पुलिस अक्सर असफल रही। मेरा मानना है कि राज्य सरकार अभियोजन पर अपनी पकड़ छोड़ना नहीं चाहती थी।

हाल के दिनों में, दिल्ली के वर्तमान मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल और पूर्व उपराज्यपाल नजीब जंग के कार्यालय के बीच सत्ता संघर्ष और भी तीव्र हो गया है। केजरीवाल के नेतृत्व वाली आम आदमी पार्टी (आप) ने फरवरी 2015 में 70 विधानसभा सीटों में से 67 सीटें जीतकर ऐतिहासिक बहुमत के साथ सत्ता हासिल की थी। जुलाई 2018 में, दिल्ली सरकार ने आरोप लगाया कि केंद्र सरकार के अधीन पूरी नौकरशाही वस्तुतः हड़ताल पर है और कोई भी सरकारी कर्मचारी राज्य सरकार के आदेशों का पालन करने को तैयार नहीं है, जिससे राज्य का कामकाज ठप्प हो गया है। उपराज्यपाल पर नरेंद्र मोदी सरकार के इशारे पर तानाशाही तरीके से काम करने का आरोप लगाया गया। जंग ने कई महत्वपूर्ण सरकारी कर्मचारियों की नियुक्तियों को अमान्य घोषित कर दिया था। विशेष रूप से, उन्होंने बिहार पुलिस के पांच अधिकारियों को भ्रष्टाचार विरोधी ब्यूरो (एसीबी) में शामिल होने से रोक दिया था, जिसके परिणामस्वरूप एक लंबी कानूनी

लड़ाई चली और अंत में उपराज्यपाल के पक्ष में फैसला आया।

दिल्ली पुलिस के एक अतिरिक्त आयुक्त के नेतृत्व में संचालित एसीबी भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने वाली एक महत्वपूर्ण संस्था है। मेरे कार्यकाल के दौरान, केंद्र शासित प्रदेश कैडर के एक उत्कृष्ट रिकॉर्ड वाले अधिकारी एन दिलीप कुमार, जिन्होंने बैंगलोर (अब बेंगलुरु) में सीबीआई के एसपी के रूप में कार्य किया था, एसीबी के प्रमुख के रूप में शामिल हुए। कार्यभार संभालने के तुरंत बाद, उन्होंने दिल्ली जल बोर्ड (डीजेबी) के सदस्य (इंजीनियरिंग) को गिरफ्तार कर लिया, जिससे राजनीतिक नेता नाराज हो गए। डीजेबी का नेतृत्व मुख्यमंत्री करते हैं और दीक्षित को यह स्वीकार्य नहीं था कि उनकी अध्यक्षता वाले बोर्ड के किसी सदस्य को उनकी जानकारी के बिना गिरफ्तार किया जाए। हालांकि, दिलीप कुमार ने एलजी खन्ना के पूर्ण समर्थन से भ्रष्ट नौकरशाहों के खिलाफ कार्रवाई जारी रखी। संयोग से, वह मेरे घनिष्ठ मित्र हैं।

दिलीप कुमार ने एसीबी को सुधारने और मजबूत करने के लिए कई प्रयास किए, लेकिन उनके सभी प्रयास राजनीतिक नेतृत्व द्वारा विफल कर दिए गए। उनके जाने के बाद, देश की राजधानी में भ्रष्टाचार कम करने के प्रयास फीके पड़ गए। विशिष्ट शिकायतों के आधार पर भ्रष्टाचार के व्यक्तिगत मामलों की जांच तो जारी रही, लेकिन सामाजिक कल्याण विभाग, डीजेबी और दिल्ली नगर निगम (एमसीडी) जैसे विभागों में संस्थागत रूप से व्याप्त भ्रष्ट आचरण, जो दिलीप कुमार के नेतृत्व वाली एसीबी की निगरानी में थे, को रोकने के लिए कोई प्रयास नहीं किए गए। वाणिज्यिक वाहनों द्वारा प्रदूषण की रिपोर्टिंग और निगरानी के लिए नियुक्त निजी फर्मों के चयन और नियुक्ति में अनियमितताएं पाई गईं। लेकिन दीक्षित सरकार ने इन अनियमितताओं को नहीं रोका।

एसीबी को सशक्त बनाने के मेरे प्रयासों से सत्ताधारियों को भी नाराजगी हुई। इसके जवाब में, मेरे खिलाफ निराधार आरोप लगाए गए और संदिग्ध एफआईआर दर्ज की गईं। इनमें से कोई भी आरोप साबित नहीं हुआ और मुझे सभी आरोपों से बरी कर दिया गया।

एलजी खन्ना एक कुशल और मेहनती व्यक्ति थे, जिनमें संगठनात्मक क्षमताएँ प्रबल थीं। अपराध नियंत्रण के सभी प्रयासों पर उनकी पैनी नज़र थी और वे नियमित रूप से विशिष्ट निर्देश जारी करते थे, जिन्हें वे 'बुलेट पॉइंट्स' कहते थे। 30 अप्रैल 2008 से 30 मई 2013 के बीच, कानून व्यवस्था बनाए रखने, महिलाओं, वरिष्ठ नागरिकों और बच्चों की सुरक्षा सुनिश्चित करने, वाहनों के सुचारू संचालन को सुगम बनाने और आतंकवाद पर अंकुश लगाने के लिए हजारों निर्देश जारी किए गए। सामुदायिक पुलिसिंग को मजबूत किया गया। इनमें से कुछ पहलें नई नहीं थीं, लेकिन इन पर बार-बार ज़ोर देना और नागरिकों से पुलिस को कानून व्यवस्था बनाए रखने में मदद करने की सार्वजनिक अपील करना महत्वपूर्ण था। दिल्ली में कई प्राचीन स्मारक हैं जो भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण (एएसआई) के प्रशासनिक नियंत्रण में आते हैं। खन्ना ने आदेश दिया कि इनकी पर्याप्त सुरक्षा की जाए। आम नागरिकों में पुलिस के प्रति विश्वास बढ़ाने के लिए कई अन्य पहलें भी लागू की गईं।

हाल के महीनों में, जनता की नज़र में दिल्ली पुलिस की छवि को भारी नुकसान पहुंचा है। नवंबर 2019 में, वकीलों ने पुलिसकर्मियों पर सार्वजनिक रूप से हमला किया और उसके बाद,

वर्दीधारी और सादे कपड़ों में पुलिसकर्मियों ने दिल्ली पुलिस मुख्यालय के सामने प्रदर्शन किया, हाथों में तख्तियां लेकर नारे लगाए और यहां तक कि कमिश्नर जैसे शीर्ष अधिकारियों को भी परेशान किया। इस तरह का उद्दंड व्यवहार अभूतपूर्व था। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, जामिया मिलिया इस्लामिया, गार्गी कॉलेज और शाहीन बाग में पुलिस की कार्रवाई और निष्क्रियता की कड़ी आलोचना हुई है।

उपराज्यपाल के विशेष कर्तव्य अधिकारी के रूप में, मैंने 2007 से 2013 के बीच दिल्ली पुलिस के कामकाज को संभाला। मैंने स्वयं इस 84,000 सदस्यीय बल के लगभग 90 प्रतिशत कर्मियों की दयनीय स्थिति देखी। इनमें से कई, परिस्थितियों के अनुसार, अपराध के शिकार और अपराधी दोनों बन जाते हैं। भारतीय पुलिस सेवा (आईपीएस) के वरिष्ठ पुलिस अधिकारी, साथ ही राज्य पुलिस सेवाओं के वे अधिकारी जो अरुणाचल प्रदेश, गोवा, मिजोरम और नागालैंड जैसे राज्यों और अंडमान एवं निकोबार द्वीप समूह, लक्षद्वीप और पुडुचेरी जैसे केंद्र शासित प्रदेशों में सेवा देने के बाद दिल्ली पुलिस में शामिल होते हैं, उनके नियंत्रण का मुख्य स्रोत गृह मंत्रालय (MHA) है। दिल्ली में सेवा देने वाला आईपीएस कैडर इन राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में भी सेवा देता है। हालांकि, बल का अधिकांश हिस्सा दिल्ली राज्य सरकार के नियंत्रण में है। इन कनिष्ठ रैंक के पुलिसकर्मियों की भर्ती दिल्ली के गृह सचिव और उपराज्यपाल द्वारा की जाती है। दूसरे शब्दों में, शीर्ष स्तर का छोटा सा हिस्सा गृह मंत्रालय के अधीन है, जबकि निचले स्तर का बड़ा हिस्सा राज्य सरकार के अधीन है। इससे दिल्ली पुलिस का कामकाज ठप्प हो जाता है।

दिल्ली राज्य में एक गृह मंत्री, एक गृह सचिव और एक उपराज्यपाल हैं। ये तीनों, अलग-अलग और साथ मिलकर, लगभग हमेशा उच्च अधिकारियों से संपर्क में रहते हैं और अधीनस्थ पदों पर बैठे लोगों की परवाह कम ही करते हैं। पुलिसकर्मियों के आवास की समस्या बहुत गंभीर है। कांस्टेबल, हेड कांस्टेबल, सहायक सब-इंस्पेक्टर और सब-इंस्पेक्टर जैसे साधारण पुलिसकर्मी अक्सर दिन में 14 घंटे काम करते हैं और उन्हें अपने रहने और आराम करने के स्थानों से लंबी दूरी तय करनी पड़ती है। छुट्टियां बहुत कम मिलती हैं। शिक्षा सुविधाएं अपर्याप्त हैं। ऐसे कई पुलिसकर्मी दिल्ली के पड़ोसी राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश, राजस्थान और हरियाणा से आते हैं।

राज्य सरकार द्वारा निगरानी और प्रतिक्रिया के लिए दो संस्थाएँ स्थापित की गई हैं – एक लोक शिकायत प्रकोष्ठ और एक पुलिस शिकायत प्राधिकरण। प्रतिकूल टिप्पणियाँ हमेशा कनिष्ठ पुलिसकर्मियों के खिलाफ की जाती हैं, न कि उनके वरिष्ठ अधिकारियों के खिलाफ। इन सबके ऊपर सबसे बड़ी गड़बड़ी का कारण है। निर्वाचित राज्य सरकार को कानून व्यवस्था बनाए रखने के तरीके में कोई दखल नहीं है और उपराज्यपाल केंद्र सरकार द्वारा नियुक्त एक राजनीतिक अधिकारी है जो केंद्रीय गृह मंत्रालय के प्रति जवाबदेह है।

गृह मंत्रालय द्वारा लागू की गई द्वैध शासन प्रणाली दिल्ली पुलिस की कई समस्याओं का मूल कारण है। लगभग 2007 तक राष्ट्रीय राजधानी में पुलिस बल अपेक्षाकृत छोटा था। लगभग 50,000 जवानों से बढ़कर अब दिल्ली पुलिस में लगभग 90,000 जवान तैनात हैं। बारह साल पहले दिल्ली में मुश्किल से 100 पुलिस स्टेशन थे, लेकिन अब इनकी संख्या 155 से अधिक हो गई है। अपराध और अदालती मामलों में भारी वृद्धि हुई है। उत्तरी दिल्ली के तीस हजारी और

मध्य दिल्ली के पटियाला हाउस से लेकर अब पूर्वी दिल्ली के कड़कड़डूमा, दक्षिणी दिल्ली के साकेत और पश्चिमी दिल्ली के द्वारका में भी अदालतें हैं। अभियोजन कार्यवाही दिल्ली राज्य सरकार द्वारा संचालित की जाती है, जबकि जांच की निगरानी गृह मंत्रालय के अधीन कार्यरत अधिकारियों द्वारा की जाती है। यह अव्यवस्थित प्रणाली निश्चित रूप से आपदा का कारण बनेगी। ये समस्याएं इतनी जल्दी दूर नहीं होने वाली हैं और भविष्य में फिर से उत्पन्न हो सकती हैं।

9

यात्रा डायरी

सीबीआई अधिकारियों को कुछ ऐसे लाभ प्राप्त होते हैं जो राज्य पुलिस कर्मियों को नहीं मिलते, विशेष रूप से आधिकारिक कार्य के लिए विदेश यात्रा करने का विशेषाधिकार। मुझे कई देशों की यात्रा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और इनमें से कुछ यात्राओं का विवरण यहाँ दिया गया है।

जुलाई 1970 में एक दोपहर, मुझे सीबीआई के डीआईजी जॉन लोबो ने बुलाया और तेहरान स्थित सार्वजनिक क्षेत्र के तेल और प्राकृतिक गैस आयोग (ओएनजीसी) के प्रतिनिधि द्वारा अवैध रूप से धन के गबन की शिकायतों की जांच के लिए ईरान जाने की तैयारी करने को कहा। मैं और मेरा सहायक एक महीने तक ईरान की राजधानी और अबादान में रहे और कुवैत की यात्रा भी की। विदेश मंत्रालय (एमईए) के कर्मचारियों के साथ-साथ ईरान और कुवैत की स्थानीय पुलिस ने भी हमारी बहुत मदद की। ओएनजीसी की आरोपी महिला कर्मचारी को हमने पकड़वाया। हमें विशेष रूप से ईरानी मूल की एक युवती से मदद मिली, जिसने दिल्ली विश्वविद्यालय के मिरांडा हाउस में पढ़ाई की थी और ओएनजीसी में सचिव के रूप में काम करती थी।

लोबो ने हमारे काम की सराहना की और नौ साल बाद, जब वे सीबीआई निदेशक थे और मैं कोलकाता में एसपी था, उन्होंने मुझे एक और विदेश यात्रा पर भेजा, इस बार जापान। 1979 में, टोक्यो में जापान अंतर्राष्ट्रीय सहयोग एजेंसी (जेआईसीए) द्वारा आपराधिक जांच पर एक सेमिनार आयोजित किया गया था, जिसमें विभिन्न दक्षिण एशियाई और दक्षिण-पूर्वी एशियाई देशों के प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। एक महीने तक, हमने कई सेमिनारों में भाग लिया और विभिन्न देशों में अपराधों की जांच और न्याय व्यवस्था के कामकाज के लगभग सभी पहलुओं पर जीवंत चर्चाएँ हुईं। हमने जापान में घूमने का भी खूब आनंद लिया। लगभग हर रात हमारे लिए शानदार पार्टियाँ आयोजित की जाती थीं। उस यात्रा के बारे में मुझे सबसे ज्यादा जो याद है, वह टोक्यो के एक पुलिस स्टेशन का हमारा दौरा है। उस स्टेशन पर मुझे जो बात सबसे ज्यादा चौंका गई, वह यह थी कि एक गाड़ी का इंजन हमेशा चालू रहता था। मुझे बताया गया कि यह पुलिस प्रमुख की गाड़ी थी जो किसी भी क्षण चलने और निकलने के लिए तैयार रहती थी।

यहीं मैंने पहली बार फैक्स मशीन देखी और पुलिसकर्मियों को वातानुकूलित कारों का इस्तेमाल करते हुए देखा। 1979 में भारत में हम लोग पुराने जमाने के डाकघर की सेवाओं का इस्तेमाल करते थे और हमारे कमरों में पंखे होते थे, एसी नहीं।

* * * * *

मैंने 1979 से 1982 के बीच तीन साल सिक्किम के गंगटोक में बिताए। जब मेरी तैनाती वहाँ हुई, सिक्किम भारत का संरक्षित राज्य नहीं रहा था। फिर भी, सिक्किम की लगभग पूरी आबादी मुझे और मेरे परिवार को ऐसे 'भारतीय' मानती थी जिन्होंने उनके 'देश' पर 'कब्जा' कर लिया था। ऊपरी तौर पर तो वे सौहार्दपूर्ण थे, लेकिन उनमें से अधिकांश के मन में भारत के किसी भी व्यक्ति के लिए कोई स्नेह नहीं था। हालाँकि, जब तक मेरा कार्यकाल पूरा हुआ, तब तक मैंने कई सिक्किमी लोगों के साथ संबंध सुधार लिए थे, या कम से कम मैं ऐसा मानना चाहूँगा क्योंकि गंगटोक से मेरे जाने से पहले मुझे वहाँ तैनात रखने के कई प्रयास किए गए थे। मुझे विदाई देने के लिए एक भव्य राजकीय भोज का आयोजन किया गया था। यह एक अलग बात थी कि उस समय तक भारत का एक राज्य बन चुके सिक्किम के राज्यपाल ने मेरा कार्यकाल छोटा करने का असफल प्रयास किया। उन्होंने आरोप लगाया कि मैं तत्कालीन प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई का 'जासूस' था, जिन्होंने मुझे वहाँ भेजा था। राज्यपाल चाहते थे कि मैं उन्हें और नई दिल्ली में अपने वरिष्ठ अधिकारियों को रिपोर्ट करूँ। मैंने उनसे मुख्य सचिव से बात करने को कहा। उन्हें इस बात से भी चिढ़ थी कि मेरा आधिकारिक आवास राजभवन परिसर में था, जहाँ वे स्वयं रहते थे। खुफिया ब्यूरो और मेरे विभाग को मुझमें कोई खामी नहीं मिली। फिर भी, मैं राज्यपाल के रवैये से सबसे ज्यादा नाराज था और एक समय तो मैंने इस्तीफा देने की पेशकश भी कर दी थी। सीबीआई निदेशक ने मेरे पत्र पर कोई कार्रवाई नहीं की और चार महीने की छुट्टी के बाद मैंने नई दिल्ली स्थित सीबीआई कार्यालय में कार्यभार ग्रहण किया।

1983 में, मैं दुबई में रहने वाले भारतीय नागरिकों द्वारा निर्यात-आयात नियंत्रण आदेशों के उल्लंघन की जांच के सिलसिले में अबू धाबी गया था। मैं लगभग अकेला ही इस काम में लगा हुआ था। मुझे महावाणिज्यदूत और दुबई पुलिस से भरपूर मदद मिली। जब मैं लौटा, तो संयुक्त निदेशक ने व्यंग्यपूर्वक टिप्पणी की: 'दुबई आपको रास आया लगता है। आप समृद्ध दिखते हैं।'

मैंने वाकई खूब मेहनत की थी और खूब पार्टी भी की थी। नतीजतन, मेरा वजन काफी बढ़ गया था!

मैं पेरिस में इंटरपोल द्वारा आयोजित आतंकवाद पर पहले सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधिमंडल के नेता के रूप में गया था। यह वह समय था जब आतंकवाद वैश्विक स्तर पर एक गंभीर चिंता का विषय बन रहा था। दरअसल, मई 1986 में सम्मेलन से कुछ ही सप्ताह पहले इंटरपोल पर एक आतंकवादी हमला हुआ था।

पेरिस स्थित मुख्यालय।51 सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए, इंटरपोल के महासचिव ने घटनाक्रम का विस्तृत विवरण दिया। वैश्विक संगठन के मुख्यालय में बम विस्फोट स्पेन और जर्मनी में सक्रिय एक आतंकवादी समूह द्वारा किया गया था। विस्फोट से खिड़कियाँ टूट गईं और इमारत को नुकसान पहुँचा, लेकिन कहानी का एक रोचक पहलू यह था: महाभारत में अर्जुन के सारथी भगवान कृष्ण की भारत द्वारा भेंट की गई प्रतिमा सुरक्षित रही। इंटरपोल के महानिदेशक ने कहा, 'इसलिए, मैंने आदेश दिया कि प्रतिमा को तुरंत मेरे कार्यालय में ले जाया जाए और वहाँ रखा जाए।'

सम्मेलन में मैंने पंजाब में खालिसानी समर्थक आतंकवादियों का मुकाबला करने के अपने

अनुभवों को साझा किया।

पेरिस से मैं ब्रिटेन, अमेरिका और कनाडा की दो महीने लंबी यात्रा पर निकला। मेरी पत्नी सुनंदा लंदन में मुझसे मिलने आई। हम, जो सीबीआई जैसी संस्था में काम कर चुके हैं, मौत-मौत और छोटे-मोटे अपराधों के आदी हो जाते हैं। लेकिन कभी-कभी कोई छोटा-मोटा अपराधी हमें भी मात दे देता है। लंदन के जिस होटल में हम ठहरे थे, उसकी लॉबी में मेरा ब्रीफकेस चोरी हो गया। उसमें हमारे वापसी के हवाई टिकट, 80 पाउंड नकद, एक कैमरा, थिएटर के टिकट और पुलिस मुख्यालय स्कॉटलैंड यार्ड के आदर्श वाक्य की एक प्रतिकृति थी। उसी दिन शाम तक, अधिकांश सामान बरामद हो गया और मैंने राहत की सांस ली। कैमरा और नकद पैसे गायब थे। जो कुछ हुआ था, उससे शर्मिंदा होकर लंदन पुलिस ने होटल से मुझे 100 पाउंड का मुआवजा दिलवाया। थिएटर जाने से पहले मैंने पुलिसकर्मियों के साथ चिवस रीगल की एक बोतल साझा की - चोर ने टिकट लौटा दिए थे!

जिस समय मैं कनाडा में जांच पूरी करने के बाद भारत लौटने की योजना बना रहा था, उसी दौरान एयर इंडिया के कनिष्क बोइंग विमान दुर्घटना की रॉयल कैनेडियन माउंटेड पुलिस (आरसीएमपी) की जांच में एक नया मोड़ आया। कनाडाई जांचकर्ताओं का मानना था कि विश्व इतिहास में अपनी तरह की इस सबसे भीषण घटना में भारत का भी गहरा हाथ था।

विमानन। 52 25 जून 1985 को दो धमाके हुए थे। एक धमाका कुषाण वंश के सम्राट कनिष्क के नाम पर रखे गए विमान के अंदर हुआ था, जो टोरंटो से मुंबई जा रहा था। यह विमान अटलांटिक महासागर में गिर गया, जिसमें सभी 329 यात्री और 22 चालक दल के सदस्य मारे गए। दूसरा बम धमाका एयर इंडिया के एक अन्य विमान में हुआ, जो टोक्यो से मुंबई जा रहा था। टोक्यो के नरिता अंतरराष्ट्रीय हवाई अड्डे पर सामान स्थानांतरित करते समय बम फट गया, जिसमें दो सामान संचालक मारे गए। दोनों धमाकों के पीछे कनाडा से संचालित होने वाले एक ही सिख चरमपंथी समूह का हाथ होने का संदेह था। इंदरजीत सिंह रेयात मुख्य संदिग्ध था। उसे टोक्यो में हुए धमाके का दोषी पाया गया, लेकिन तकनीकी आधार पर कनिष्क विमान के अंदर हुए धमाके के मामले में वह बच गया।

जैसे ही सीबीआई को जांच में शामिल किया गया, मुझे न्यूयॉर्क में ही रुकने का निर्देश दिया गया जबकि मेरी पत्नी भारत लौट गईं। मेरे साथ एसपी एके सूरी भी शामिल हुए और हम आरसीएमपी के साथ मिलकर काम करने के लिए टोरंटो चले गए। भारतीय उच्चायुक्त के अधीन दो भारतीय पुलिस अधिकारियों, मोलोय धर और बाद में एपी भटनागर ने भी हमारी बहुत मदद की।

टोरंटो की एक यात्रा के दौरान मैंने अपने कॉलेज के प्रोफेसर गोविंद नारायण शर्मा से मिलने की कोशिश की। मेरे पास उनका पता नहीं था। मैंने आरसीएमपी में अपने सहयोगियों से उन्हें ढूंढने में मदद मांगी। हालांकि मैं शर्मा से मिल नहीं सका, लेकिन जो जानकारी मुझे मिली वह दिल दहला देने वाली थी। दुर्घटनाग्रस्त कनिष्क विमान में शर्मा के भाई और उनके परिवार के सदस्य सवार थे, जो टोरंटो में उनसे मिलने के बाद भारत लौट रहे थे।

1987 और 1988 में, मैंने कई बार सिंगापुर की यात्रा की। एक यात्रा हीरा व्यापारियों के

अपहरण के मामले से संबंधित थी और दूसरी वी. कृष्णमूर्ति की गतिविधियों के बारे में सबूत जुटाने के लिए थी। कृष्णमूर्ति की जांच का मैंने विस्तार से वर्णन किया है, लेकिन हीरा व्यापारियों के अपहरण की कहानी का जिक्र नहीं किया है। हमारी जांच को सिंगापुर ले जाने का कारण यह था कि जब हम दिल्ली में अपहृत हीरा व्यापारियों में से एक की तलाश कर रहे थे, तब हमें पता चला कि उसके क्रेडिट कार्ड का इस्तेमाल उसी देश में किया गया था।

1988 में, मैं विदेश मंत्रालय के प्रतिनिधिमंडल के साथ भारत-ब्रिटेन प्रत्यर्पण संधि पर बातचीत करने के लिए फिर से लंदन गया था। उसी वर्ष, मैंने कनाडा के साथ इसी तरह की प्रत्यर्पण संधि पर बातचीत करने के लिए ओटावा का दौरा किया। हमारे प्रतिनिधिमंडल के सदस्य बातचीत के बाद हर शाम उच्चायुक्त जे. चटवाल से मिलते थे। वे हमें जानकारी देने के लिए दूतावास के बगीचे में ले जाते थे क्योंकि उन्हें पता था कि उनके कमरे में जासूसी उपकरण लगे हुए हैं!

अगले वर्ष, मैं जनरल वैद्य की हत्या के संबंध में प्रत्यर्पण मुकदमे के लिए अमेरिका के न्यू जर्सी गया। उनकी हत्या की साजिश रचने के साथ-साथ राजस्थान के उदयपुर और मुंबई में अन्य अपराधों में शामिल दो संदिग्धों को प्रत्यर्पित किया जाना था। मैंने सीबीआई टीम का नेतृत्व किया जिसमें अजीत डोवाल भी शामिल थे, जो उस समय खुफिया ब्यूरो में उप निदेशक थे और अब नरेंद्र मोदी सरकार में राष्ट्रीय सुरक्षा सलाहकार हैं।

प्रत्यर्पण की कार्यवाही के दौरान स्थानीय पुलिस द्वारा प्रदान की गई सुरक्षा व्यवस्था से हम बहुत प्रभावित हुए। संदिग्धों को हथकड़ी पहनाकर और पैरों में रस्सियाँ बाँधकर अदालत में लाया गया। सुनवाई के दौरान हर महत्वपूर्ण स्थान पर पूर्ण रूप से सशस्त्र गार्ड तैनात थे। हमें जूरी के लिए आरक्षित सीटों पर बैठाया गया था। मुकदमे के दौरान, आरोपियों ने अपने ऊपर लगाए गए शारीरिक प्रतिबंधों का पुरजोर विरोध किया और जब उन्होंने उच्च न्यायालय (सेशन कोर्ट) में अपील की, तो न्यायाधीश ने उनकी हथकड़ियों और रस्सियों को हटाने के बजाय ढीला करने की अनुमति दी।

बचाव पक्ष ने हमारे द्वारा प्रस्तुत विशेषज्ञ साक्ष्य को इस आधार पर चुनौती दी कि उदयपुर मामले से संबंधित साक्ष्य फोरेंसिक प्रयोगशाला पहुंचने से पहले पुलिस की सुरक्षित हिरासत में नहीं रखे गए थे और उनके साथ छेड़छाड़ की जा सकती थी। हमने न्यू जर्सी के अभियोजक से अनुरोध किया कि वे राजस्थान के एसपी, जो हमारी टीम के सदस्य थे, को गवाह के रूप में पेश होने के लिए बुलाएं ताकि वे गवाही दे सकें कि साक्ष्य हमेशा सुरक्षित हिरासत में थे। सामान्यतः, प्रत्यर्पण सुनवाई के लिए हलफनामे पर्याप्त माने जाते हैं। यह पहली बार था कि किसी प्रत्यर्पण मुकदमे में गवाहों की प्रत्यक्ष उपस्थिति, उनके बयान और जिरह हुई। इस गवाही से हमें सभी मामलों से संबंधित प्रत्यर्पण आदेश प्राप्त करने में मदद मिली। डोवाल यात्रा के परिणाम से बहुत प्रसन्न थे और उन्होंने कहा: 'हम आपके गुण गाएंगे।'

1989 में इंटरपोल का वार्षिक सम्मेलन बीजिंग में होना था। लेकिन 4 जून 1989 को तियानमेन स्क्वायर में प्रदर्शनकारी छात्रों के नरसंहार पर अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मचे बवाल के बाद सम्मेलन रद्द कर दिया गया। इस घटना को लेकर चीनी अधिकारियों ने विशेष प्रयास किए और ड्रग्स की अंतरराष्ट्रीय तस्करी से जुड़े एक भारतीय प्रतिनिधिमंडल (जिसमें मैं भी शामिल था) को

वहाँ भेजा। हमारा शाही मेहमानों की तरह स्वागत किया गया—शानदार गाड़ियाँ उपलब्ध कराई गईं, दर्शनीय स्थलों की सैर कराई गई और 48 व्यंजनों का भोज आयोजित किया गया।

1992 में, ब्रिटिश नागरिक डेविड वारिंग से मिले एक पत्र के बाद, हमने योजना आयोग के पूर्व सदस्य वी. कृष्णमूर्ति और उनके दो बेटों के बारे में अब तक अज्ञात तथ्यों का पता लगाया। वारिंग ने कृष्णमूर्ति और उनके बेटे के. चंद्र से संबंधित दस्तावेज़ हमें उपलब्ध कराने की पेशकश की। वे पूर्व केंद्रीय मंत्री सीएम स्टीफन के दामाद बेनोय जैकब को भी सज़ा दिलवाना चाहते थे, जिन्होंने कृष्णमूर्ति के बेटों के साथ मिलकर फर्जी कंपनियाँ बनाई थीं और इस काम में कृष्णमूर्ति के नाम का इस्तेमाल किया था। मेरे सहयोगी महेंद्र प्रताप सिंह और मैं वारिंग के दस्तावेज़ देखने और बैंक रिकॉर्ड की जाँच करने के लिए हांगकांग गए। हमारी यात्रा का समन्वय हांगकांग स्थित इंटरपोल कार्यालय ने किया था। वहाँ पहुँचने पर, मैंने इंटरपोल के प्रतिनिधि को हांगकांग के उन निवासियों की सूची सौंपी जिनसे हम अपनी जाँच के सिलसिले में मिलना चाहते थे। जब मैं वारिंग के आवास पर उनसे पूछताछ कर रहा था, तभी चंद्र का फोन आया, जिसमें उन्होंने सीबीआई अधिकारियों के बारे में पूछा। उन्होंने वारिंग को हमारे साथ सहयोग न करने के लिए कहा और आश्वासन दिया कि उनके सभी बकाया का भुगतान कर दिया जाएगा। वारिंग के अलावा, भारतीय मूल के कई अन्य व्यक्तियों से भी पूछताछ करनी थी। सूची को देखकर हांगकांग में इंटरपोल डिवीजन के ब्रिटिश प्रमुख ने तीखी टिप्पणी की: 'ये सभी भारतीय हैं। ये सभी आपसे झूठ बोलेंगे।'

1995 में, मैं एक सरकारी प्रतिनिधिमंडल (जिसमें आरबीआई और वित्त मंत्रालय के प्रतिनिधि शामिल थे) के साथ ब्रिटेन गया था ताकि वहां के विशेष धोखाधड़ी जांच कार्यालय (एसएफआईओ) के कामकाज का अध्ययन कर सकूं। हमने भारत में एक वैधानिक कॉर्पोरेट धोखाधड़ी जांच कार्यालय स्थापित करने की सिफारिश की। 2003 में, भारत में एसएफआईओ की स्थापना हुई, जो वर्तमान में कॉर्पोरेट मामलों के मंत्रालय के अधीन है। लेकिन इस निकाय की स्थापना संसद के अधिनियम द्वारा नहीं, बल्कि एक अधिसूचना द्वारा की गई थी। मेरी राय में, यह एक महत्वपूर्ण संस्था है और इसे गिरफ्तारी और हिरासत में पूछताछ की शक्तियां प्रदान करने के लिए संसद के अधिनियम द्वारा समर्थित कानून की आवश्यकता है।

अगले वर्ष, मैं विदेश मंत्रालय के तत्कालीन सचिव (पश्चिम) के साथ दुबई में रहने वाले अनीस इब्राहिम के प्रत्यर्पण की मांग करते हुए अबू धाबी गया। अबू धाबी का शासक उसे आसानी से हमें सौंप सकता था। इससे पहले, बहरीन से उसे प्रत्यर्पित करने का प्रयास किया गया था, जहां उसे 1993 के बॉम्बे बम धमाकों के मामले में हमारी विनती पर जारी इंटरपोल रेड अलर्ट नोटिस के बाद हिरासत में रखा गया था। यह प्रयास विफल रहा क्योंकि दुबई ने बहरीन से भारत में उसके प्रत्यर्पण को इस आधार पर रोक दिया कि वह दुबई में अपराधों के लिए वांछित था। भारतीय सरकार ने अबू धाबी के अमीर से बातचीत करने का फैसला किया, जो दुबई सहित सात संयुक्त अरब अमीरातों के शासक थे। जाहिर है, अमीर पर भारत की तुलना में पाकिस्तान और दाऊद इब्राहिम का अधिक प्रभाव था, जिन्होंने अनीस को भारत को सौंपने से इनकार कर दिया।

अंतिम शब्द: एक युद्धघोष

भ्रष्टाचार तभी खत्म होगा जब बड़ी संख्या में अयोग्य व्यक्तियों को वेतन दिया जाएगा।
उन्हें यह एहसास हो कि राष्ट्र का अस्तित्व उनके शोषण के लिए नहीं है, बल्कि
वे राष्ट्र की सेवा के लिए मौजूद हैं। इसके लिए नैतिकता और अतिवादी दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है।
जो लोग इस कलंक से मुक्त हैं, उनकी ओर से सतर्कता। उदासीनता
अपराध होगा।
— Mahatma Gandhi, 27 January 1948

कहानी सुनाना इतिहास और संस्कृति को आकार देने के लिए मानव जाति के सबसे शक्तिशाली साधनों में से एक है। सदियों से, मनुष्य कहानियों के माध्यम से अपना ज्ञान और बुद्धिमत्ता एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाते आए हैं। इस पुस्तक में, मैंने कहानियों के माध्यम से भारत के युवाओं तक पहुंचने का प्रयास किया है, जिनमें 84 मिलियन पहली बार मतदान करने वाले मतदाता भी शामिल हैं। मुझे आशा है कि मेरे व्यक्तिगत अनुभवों से प्रेरित होकर उनमें से कई लोग भ्रष्टाचार के खिलाफ अथक संघर्ष करेंगे।

एक सदी के संघर्ष के बाद, हमने अपने ब्रिटिश औपनिवेशिक आकाओं से स्वतंत्रता प्राप्त की। विचारधारा और दलगत सीमाओं से परे, वे भारत के नागरिकों की सेवा के लिए समर्पित थे। गांधी, नेहरू, पटेल, जेपी, श्यामा प्रसाद मुखर्जी, अपने मतभेदों के बावजूद, सभी महान ईमानदारी और सत्यनिष्ठा के धनी थे। लेकिन अगली पीढ़ी के नेता स्वार्थी थे। देश की जनता की सेवा करने के बजाय, वे सत्ता और अधिकार के भूखे शासक बन गए। वे सार्वजनिक संपत्ति और देश के संसाधनों पर नियंत्रण रखना चाहते हैं। समाचार पत्र और टेलीविजन चैनल जनता के पैसे से भुगतान किए गए विज्ञापनों से भरे पड़े हैं, जिन पर हमारे राजनीतिक नेताओं और निर्वाचित प्रतिनिधियों के मुस्कुराते हुए चेहरे दिखाई देते हैं। कल्याणकारी योजनाओं की घोषणा और उद्घाटन बड़े धूमधाम से किए जाते हैं, लेकिन इन कार्यक्रमों के कार्यान्वयन और उनके लक्षित लाभार्थियों तक पहुंचने पर बहुत कम चर्चा या सार्वजनिक संवाद होता है।

दुख की बात है कि हम भारतवासी सार्वजनिक जीवन में नैतिकता और मूल्यों के पतन में भागीदार रहे हैं। कई भारतीय मतदाता भावनात्मक अपीलों से प्रभावित होकर अपने नेताओं के प्रति अंधभक्ति दिखाते हैं। हम अपने चुने हुए प्रतिनिधियों को सेवा प्रदाता के रूप में नहीं देखते, जो हमारे प्रति जवाबदेह हों। सत्ता में बैठे लोगों से सवाल करने के बजाय, हम उनकी पूजा देवताओं की तरह करते हैं। हमें इस अज्ञानता से जागना होगा। हमने राजाओं, सामंतों और औपनिवेशिक शासकों से मुक्ति पाई है। हमें अपने समाज को उन राजनेताओं से मुक्त करना होगा जो हम सभी के हक को लूटते हैं। वे हमारे पैसे का इस्तेमाल चुनाव जीतने के लिए करते हैं और हमारे प्रति जवाबदेह नहीं होना चाहते। और अगर हम भ्रष्ट लोगों को अपने राजनीतिक तंत्र से नहीं हटाते, तो हम सभी को इसका खामियाजा भुगतना पड़ेगा।

इस पुस्तक के माध्यम से, मैं युवा पाठकों से निर्वाचित प्रतिनिधियों और नागरिकों के बीच संबंधों में आमूलचूल परिवर्तन लाने का आग्रह करता हूँ। आइए, भारत में एक वास्तविक लोकतंत्र का निर्माण करें। पुरानी कहावत याद रखें: निरंतर सतर्कता ही स्वतंत्रता की कीमत है। सतर्कता का

अर्थ है शासन प्रक्रिया में भागीदारी और सरकार में बैठे लोगों से लगातार सवाल करना। हमें अपने नेताओं और सरकारी अधिकारियों को पैनी नजर से देखना होगा। आइए, हम सभी मांग करें कि हमारी राजनीतिक पार्टियां अधिक लोकतांत्रिक बनें और आंतरिक चुनाव कराएं। आइए, हम अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों से कार्य-प्रदर्शन रिपोर्ट मांगने और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें वापस बुलाने का अधिकार प्राप्त करें। आइए, हम राजनीतिक निधियों में पारदर्शिता की मांग करें और गुमनाम चुनावी बांडों के झांसे में न आएं। और आइए, हम सीबीआई के लिए अधिक स्वतंत्रता की मांग करें। यह सूची लंबी है और इसमें और भी बदलाव होते रहेंगे।

प्रिय पाठकों, यह जान लीजिए कि राजनेता भ्रष्टाचार को समाप्त नहीं कर सकते और न ही करेंगे। यह जिम्मेदारी हम पर है।

फुटनोट

1 इलिनोइस लॉ रिव्यू, खंड X (1915) में प्रकाशित।

2 आर शमासास्त्री, और फ्लीट, डॉ जेएफ। कौटिल्य अर्थशास्त्र. कम कीमत प्रकाशन, संस्करण 2012।

3. विनियमन अधिनियम – 1773. http://www.indhistory.com/regulating-act.html

4 ई. थॉम्पसन. मैकमिलन एंड कंपनी लिमिटेड, सेंट मार्टिन स्ट्रीट लंदन। 1935. https://archive.org/details/in.ernet.dli.2015.210780/page/n5

5. द टेलीग्राफ, यूके, 28 अप्रैल 2004।

6. सीबीआई: राष्ट्र की सेवा में, कॉफी टेबल बुक। पृष्ठ 28।

7. मनमोहन सिंह ने नोट बंदी पर कहा: 'यह एक संगठित लूट थी, जिसे वैध बना दिया गया था।' लूटपाट; छोटे व्यवसायों की कमर तोड़ दी; द इंडियन एक्सप्रेस, 7 नवंबर 2007. https://indianexpress.com/article/india/manmohan-singh-gst-demonetisation-note-ban-narendra-modi-4926385/

8. भटनागर, गौरव वी. 'आरटीआई के जवाबों में, इस बात के सबूत मिले हैं कि मोदी ने कैसे 'लोकपाल नियुक्ति में देरी की।' द वायर। 21 दिसंबर 2018. https://thewire.in/government/for-all-its-anti-corruption-मोदी सरकार लोकपाल मामले में ढिलाई बरत रही है (उनके बयानों के अनुसार)।

9 वर्मा, पवन. के. 'विचार: चुनावी बांड और एफसीआरए संशोधन 'अघोषित राजनीतिक निधियों का मार्ग प्रशस्त करना।' द इकोनॉमिक टाइम्स। 31 मार्च 2018। https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-राष्ट्र/चुनावी बांड और एफसीआरए संशोधन मार्ग प्रशस्त करते हैं for-unaccounted-political-funding/articleshow/63553978.cms

10. 1976 के बाद राजनीतिक दलों को प्राप्त विदेशी वित्त पोषण को छूट दी गई है जांच पड़ताल। द बिजनेस लाइन, 15 मार्च 2018। https://www.thehindubusinessline.com/news/national/foreign-1976 के बाद राजनीतिक दलों को दी जाने वाली धनराशि को छूट दी गई है। जांच/आर्टिकल23263844.ईसीई

11 मई 2013. सीबीआई पिंजरे में बंद तोते की तरह अपने मालिक की आवाज में बोल रही है: सुप्रीम कोर्ट। द हिंदू, 9 https://www.thehindu.com/todays-paper/tp-in-school/cbi-a-caged-parrot-speaking-in-its-masters-voice-sc/article4697433.ece

12. 26 साल बाद, 98 वर्षीय सिकंद को न्याय मिला। टाइम्स ऑफ इंडिया, 29 अप्रैल 2008। http://timesofindia.indiatimes.com/articleshow/2993126.cms

13 कृष्णा सिकंद हत्याकांड: कर्नल चौधरी बरी। द हिंदू।
17 मई 2009. https://www.thehindu.com/todays-paper/tp-national/tp-newdelhi/कृष्णा-सिकंद-हत्या-मामला-कर्नल-चौधरी-बरी/अनुच्छेद16598030.ईसीई
14 विकिपीडिया. राम सुभग सिंह.
15 सुब्रमणियन, एस. लॉन्ग व्यू: भारत का पहला भ्रष्टाचार घोटाला।
द न्यू यॉर्क टाइम्स, 9 मई 2012।
https://india.blogs.nytimes.com/2012/05/09/long-view-indias-very-पहला भ्रष्टाचार घोटाला/
16 चागला, एमसी, दिसंबर में गुलाब। भारतीय विद्या भवन, बम्बई।
17. एक मार्मिक स्मृति, गोपाल कृष्ण गांधी, 31 मई 2013,
हिंदुस्तान टाइम्स https://www.hindustantimes.com/columns/a-haunting-memory/story-QftyfD30mjf6k6v096imbO.html
18 मल्होत्रा, आई. मुंद्रा कांड। द इंडियन एक्सप्रेस, 12 दिसंबर
2008.
19 एक मार्मिक स्मृति, गोपाल कृष्ण गांधी, 31 मई 2013,
हिंदुस्तान टाइम्स। https://www.hindustantimes.com/columns/a-haunting-memory/story-QftyfD30mjf6k6v096imbO.html
20 मल्होत्रा, आई. रामलिंगा राजू से पहले धर्म तेजा थे। रेडिफ,
12 फरवरी 2009. http://www.rediff.com/money/2009/feb/12-before-raju-there-was-dharma-teja.htm
21 पाइरेट्स ऑफ द कैरेबियन एक व्यावसायिक रूप से सफल हॉलीवुड फिल्म है।
जेरी ब्रुकहाइमर द्वारा निर्मित फिल्म फ्रैंचाइज़, जो वॉल्ट डिज़्नी के इसी नाम के थीम पार्क पर आधारित है।
22. थापा, जे. विजया। पूर्व मंत्री जेल की सजा का सामना करते हुए भी अडिग हैं।
दाऊद के सहयोगियों को शरण देना, इंडिया टुडे, 29 फरवरी 1996।
https://www.indiatoday.in/magazine/special-report/story/19960229-पूर्व मंत्री शरण देने के आरोप में जेल की सजा का सामना करने के बावजूद अडिग हैं।
dawood-associates-833063-1996-02-29
23. घिमिरे, वाई. राव ने अपने बेटे को बचाने के लिए मुझे फंसाया। आउटलुक, 17 अप्रैल
1996. https://www.outlookindia.com/magazine/story/rao-implicated-मुझे उसके बेटे को बचाने के लिए/201214
24 पचौरी, पी. सीबीआई सत्ताधारी पार्टी का राजनीतिक हथियार बन गई है।
इंडिया टुडे, 15 सितंबर 1989।
https://www.indiatoday.in/magazine/special-report/story/19890915-

सीबीआई सत्तारूढ़ दल का राजनीतिक हथियार बन गई है-816523
1989-09-15
भ्रष्टाचार के आरोप में सीबीआई के वरिष्ठ अधिकारी ओ.पी. शर्मा को निलंबित किया गया।
आरोप, इंडिया टुडे, 31 जुलाई 1991।
https://www.indiatoday.in/magazine/indiascope/story/19910731-
सीबीआई के वरिष्ठ अधिकारी ओ.पी. शर्मा को भ्रष्टाचार के आरोप में निलंबित किया गया है।
शुल्क-814638-1991-07-31
26 1991 जैन हवाला मामला: रिश्वत लेने के आरोप में पूर्व डीआईजी को जेल की सजा सुनाई गई।
टाइम्स ऑफ इंडिया, 25 मार्च 2013।
https://timesofindia.indiatimes.com/india/1991-Jain-hawala-case-Ex-
DIG को रिश्वत लेने के लिए जेल की सजा सुनाई गई/articleshow/19194100.cms
27 शेफाली, आर. सीबीआई प्रतिभूति घोटाले में वी. कृष्णमूर्ति को दोषी साबित करने में विफल रही।
अन्य आरोपों की जांच जारी है। इंडिया टुडे। 30 जून 1994।
https://www.indiatoday.in/magazine/economy/story/19940630-cbi-
सुरक्षा घोटाले में वी. कृष्णमूर्ति को दोषी साबित करने में विफल - आगे की जांच
into-other-charges-809333-1994-06-30
28 कृष्णमूर्ति वित्त मंत्री द्वारा गठित एक समिति के प्रमुख थे।
मनमोहन सिंह को विनिवेश की प्रक्रिया की जांच करने और वैकल्पिक रास्ते सुझाने का निर्देश दिया गया है।
29 खान, ए. सैयद मोदी हत्याकांड में एक को आजीवन कारावास। द हिंदू।
23 अगस्त 2009. https://www.thehindu.com/todays-paper/tp-
राष्ट्रीय/सैयद मोदी हत्याकांड में एक व्यक्ति को आजीवन कारावास की सजा
case/article16539339.ece
30 प्रधान, एस. अमेठी द्वितीय की लड़ाई। इंडिया टुडे. 11 अगस्त 2004.
https://www.outlookindia.com/magazine/story/battle-of-amethi-
ii/291562
31 भारत, विश्व में यूरिया का दूसरा सबसे बड़ा उपयोगकर्ता, 5 देशों में आयात समाप्त करने की कोशिश कर रहा है।
वर्ष, द इकोनॉमिक टाइम्स, 17 अप्रैल 2017।
https://economictimes.indiatimes.com/news/economy/agriculture/
ind
ia-worlds-second-largest-urea-user-seeks-to-end-imports-in-5-
वर्ष/आर्टिकलशो/58219438.सेमी

32. फिरोज खान ने संजय दत्त को दाऊद इब्राहिम से मिलवाया। लेहरेन
डायरी। https://www.youtube.com/watch?v=s7HzTZO7AzA
33 टू हेल एंड बैक, क्रिस रोडली, यूनाइटेड किंगडम, 1996।
https://www.youtube.com/watch?v=xNl_8HxpyjI
34. 1993 मुंबई विस्फोट: दोषसिद्धि तक पहुंचने वाली घटनाओं का क्रम
अबू सलेम और अन्य। लाइवमिंट। 16 जून 2017।
https://www.livemint.com/Politics/zv0noZRc5OZ47pLnhqFoJK/1993-Mumbai-serial-blasts-case-A-timeline-of-incidents-lead.html
अन्य सभी हिरासत में लिए गए लोगों की 35 'स्थिति रिपोर्ट' या परिस्थिति विवरण, संयोगवश, सबूतों से पता चला कि हिरासत में लिए गए लोग युद्ध क्षेत्र से बाहर थे और उनके पास कोई हथियार नहीं थे। इस कारक ने उन्हें रिहा करने के फैसले में अहम भूमिका निभाई।
गुजरात के पास सोहराबुद्दीन शेख नाम के एक छोटे-मोटे अपराधी की हत्या कर दी गई।
नवंबर 2005 में गांधीनगर में गुजरात पुलिस अधिकारियों ने उन्हें आतंकवादी बताकर उनकी हत्या कर दी थी। उनकी पत्नी कौसर बी की भी हत्या कर दी गई थी। तुलसीराम प्रजापति, जो दंपति के साथ थे और अपराध के गवाह बने, उनकी एक साल बाद हत्या कर दी गई। सीबीआई ने अमित शाह और कई अन्य पुलिस अधिकारियों को मुख्य आरोपी बनाया था।
37 नंबर 1 बनाम नंबर 2: सीबीआई में चल रही जंग सबके सामने है, सुशांत सिंह, द इंडियन एक्सप्रेस। 16 जुलाई 2018।
https://indianexpress.com/article/india/no-1-vs-no-2-war-in-cbi-is-खुले में-5261171/
सीबीआई ने अस्थाना के विशेष निदेशक के खिलाफ एफआईआर दर्ज कराई। द पायनियर, 21 अक्टूबर
2018. https://www.dailypioneer.com/2018/page1/cbi-files-fir-against-
spl-director-asthana.html
39 सारिन, आर. एक और भी निम्न स्तर। द इंडियन एक्सप्रेस, 26 अक्टूबर 2018।
https://indianexpress.com/article/opinion/a-lower-low-5418861/
40 राफेल सौदे का विश्लेषण: आरोपों से प्रतिआरोपों तक।
एनडीटीवी, 29 अगस्त 2018. https://www.ndtv.com/india-news/decoding-राफेल सौदे के आरोपों से लेकर प्रति-आरोपों तक-1908313
सोहराबुद्दीन मामला: सीबीआई ने उच्च न्यायालय में अपील क्यों नहीं की?
41. अमित शाह ने कांग्रेस से पूछा। फर्स्टपोस्ट, 30 मार्च 2015।
https://www.firstpost.com/politics/sohrabuddin-case-didnt-cbi-approach-higher-court-amit-shah-asks-congress-2180335.html
42 बोफोर्स मामला: सीबीआई ने दिल्ली उच्च न्यायालय के फैसले को रद्द करने के खिलाफ

सुप्रीम कोर्ट में याचिका दायर की
अभियुक्तों के खिलाफ आरोप। हिंदुस्तान टाइम्स, 2 फरवरी 2018।
https://www.hindustantimes.com/india-news/bofors-case-cbi-moves-sc-against-delhi-hc-order-quashing-charges-against-accused/story-T8CoOnle7UdhFDoTmDRuQL.html
43. सुप्रीम कोर्ट ने बोफोर्स मामले में देरी को लेकर सीबीआई की अपील खारिज कर दी।
अपील दाखिल करने के संबंध में। हिंदुस्तान टाइम्स, 2 नवंबर 2018।
https://www.hindustantimes.com/india-news/supreme-court-refuses-
सीबीआई ने अपील दाखिल करने में देरी के कारण बोफोर्स मामले को फिर से खोलने की अपील की/कहानी
adan1BuzGPggk9H9TwqwLL.html
सोहराबुद्दीन मुकदमे के अंतिम दिनों में 44 चौंकाने वाली गवाही।
टेलीग्राफ, 26 नवंबर 2018।
https://www.telegraphindia.com/opinion/one-of-last-prosecution-
सोहराबुद्दीन मामले में गवाहों के नाम - अमित शाह, डीजी वंजारा और
राजकुमार-पांडियन-मुख्य-षड्यंत्रकारियों-में-शामिल/cid/1676494
45 अय्यर, एस. नीरव मोदी, जिन पर 1.8 अरब डॉलर की धोखाधड़ी का आरोप है, उनके साथ थे।
नरेंद्र मोदी दावोस में। क्वार्ट्ज, 15 फरवरी 2018।
https://qz.com/india/1208133/punjab-national-bank-fraud-nirav-
18 अरब की धोखाधड़ी के आरोपी मोदी नरेंद्र मोदी के साथ थे।
कुछ सप्ताह पहले दावोस में
46 कुमार, ए. एसएचओ की मृत्यु। द इंडियन एक्सप्रेस, 6 दिसंबर 2018।
https://indianexpress.com/article/opinion/columns/death-of-an-sho-
सुबोध कुमार सिंह द्वारा गौ वध, सतर्कता समूह द्वारा भीड़ का हमला
बुलंदशहर-बिल्ली का बच्चा-5480391/
47 विनीत नारायण और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य, सर्वोच्च न्यायालय
न्यायालय, 18 दिसंबर 1997।
पिंपरी में इन गिरफ्तारियों के अलावा, कई अन्य आतंकवादियों को भी गिरफ्तार किया गया था। जनरल वैद्य की हत्या के साथ-साथ अन्य अपराधों के सिलसिले में उन्हें गिरफ्तार किया गया था। लंबी और जटिल जांच के बाद, 1989 में सुखदेव सिंह सुखा और हरजिंदर सिंह जिंदा (जिन्हें दिल्ली से गिरफ्तार किया गया था) को मौत की सजा सुनाई गई और 9 अक्टूबर 1992 को उन्हें फांसी दे दी गई।
गुरुदास दासगुप्ता (1993)। प्रतिभूति घोटाला: एक रिपोर्ट

राष्ट्र, जन प्रकाशन गृह।
सामुदायिक पुलिसिंग में दिल्ली पुलिस की 50वीं पहल – युवा कौशल
पीएमकेवीवाई योजना के अंतर्गत विकास कार्यक्रम।
http://yuva.delhipolice.gov.in/about-us.html
पेरिस में इंटरपोल कार्यालय पर हमला, द न्यूयॉर्क टाइम्स, 17 मई
1986. वेब अभिलेखागार।
https://www.nytimes.com/1986/05/17/world/interpol-office-in-
paris-
attacked.html
52 कनिष्क विमान दुर्घटना के बारे में आपको जो कुछ भी जानना चाहिए, वह सब कुछ, सबसे भीषण दुर्घटना।
इतिहास में विमानन आतंकवाद। इंडिया टुडे, 28 जनवरी 2016।
https://www.indiatoday.in/fyi/story/kanishka-air-crash-of-1985-
इतिहास का सबसे भीषण विमानन आतंकवाद-305885-2016-01-28

लेखक के बारे में

शान्ताउ सेन

27 अप्रैल 1938 को जन्मे शांतनु सेन राजस्थान के जयपुर में बसे एक प्रतिष्ठित बंगाली परिवार से थे, जहाँ उन्होंने अपना अधिकांश बचपन, किशोरावस्था और युवावस्था बिताई। गुलाबी शहर जयपुर में सेंट जेवियर स्कूल और महाराजा कॉलेज में शिक्षा प्राप्त करने के बाद, वे दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदू कॉलेज चले गए, जहाँ उन्होंने अंग्रेजी साहित्य में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की। अपने करियर की दिशा को लेकर अनिश्चित होने के कारण, उन्होंने अपने अध्ययन के विषय के शिक्षक के रूप में कार्य करना शुरू किया। 1963 में, उन्हें संघ लोक सेवा आयोग द्वारा सीधे भर्ती किए गए अधिकारियों के पहले बैच में शामिल किया गया, जिन्होंने दिल्ली विशेष पुलिस प्रतिष्ठान में काम किया, जो बाद में केंद्रीय जांच ब्यूरो (सीबीआई) बन गया।

उन्होंने सीबीआई में विभिन्न पदों पर रहते हुए तरक्की की, भारत के विभिन्न हिस्सों में तैनात रहे और फ्रांस, चीन, यूनाइटेड किंगडम, जर्मनी, कनाडा और सिंगापुर सहित कई देशों की यात्रा की। उन्हें 1986 में सराहनीय सेवा के लिए पुलिस पदक और 1992 में विशिष्ट सेवा के लिए भारत के राष्ट्रपति का पुलिस पदक प्राप्त हुआ। उन्होंने सीबीआई में 33 वर्षों की सेवा के बाद 1996 में संयुक्त निदेशक के पद से सेवानिवृत्ति ली।

अपने करियर के दौरान, उन्होंने देश में सुर्खियां बटोरने वाले कुछ सबसे सनसनीखेज और चर्चित आपराधिक मामलों की जांच की। सेवानिवृत्ति के बाद, उन्होंने दिल्ली के उपराज्यपाल के सलाहकार और सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों की विभिन्न कंपनियों के सलाहकार सहित कई पदों पर कार्य किया। 1998 में, सेमिनार मासिक पत्रिका के संपादक हर्ष सेठी और प्रख्यात समाजशास्त्री शिव विश्वनाथन के साथ मिलकर, उन्होंने "फौल प्ले: क्रॉनिकल्स ऑफ करप्शन" नामक पुस्तक का संकलन किया, जिसमें 1947 से 1997 के बीच भारत में फैले भ्रष्टाचार की 18 सच्ची कहानियाँ शामिल हैं। वे विभिन्न प्रकाशनों के लिए लेख और स्तंभ लिखते हैं और टेलीविजन समाचार चैनलों पर नियमित रूप से टिप्पणीकार के रूप में दिखाई देते हैं।

पश्चिम बंगाल के जलपाईगुड़ी में जन्मीं संजुक्ता बसु नई दिल्ली में रहने वाली 42 वर्षीय लेखिका, फोटोग्राफर और नारीवादी विद्वान हैं। उन्होंने गैर-लाभकारी संगठनों में संचार सलाहकार के रूप में काम किया है और वकालत भी की है। वर्तमान में वे महिलाओं के मुद्दों, राजनीति और अल्पसंख्यक अधिकारों पर लिखती हैं। उनके साहित्यिक और फोटोग्राफिक कार्य फर्स्टपोस्ट, हफिंगटन पोस्ट, डेलीओ, आउटलुक और द वायर सहित विश्व भर के मीडिया आउटलेट्स में प्रकाशित हो चुके हैं। 2006 से भारत की अग्रणी डिजिटल कार्यकर्ताओं में से एक, उनके लेखों को 7 लाख से अधिक बार देखा जा चुका है।

2009 में, उन्हें ब्लॉगिंग और डिजिटल सक्रियता के लिए TED फेलोशिप से सम्मानित किया गया था। वह एक सार्वजनिक वक्ता और प्रशिक्षक भी हैं। वह हर्ष मंदर के नेतृत्व वाले कारवां-ए-मोहब्बत समूह का हिस्सा हैं और उन्होंने घृणा अपराधों की कहानियों को दस्तावेज़ित करने के लिए पूरे भारत की यात्रा की है। वर्तमान में वह लैंगिक अध्ययन में पीएचडी कर रही हैं।

उन्होंने इस पुस्तक के शोध और लेखन के लिए शांतनु सेन के साथ एक वर्ष तक काम किया।

परंजय गुहा ठाकुरता द्वारा प्रकाशित
paranjoy@gmail.com
मुद्रित पुस्तक ISBN: 978-9-38728-059-5
© संजुक्ता बसु के साथ शान्तानु सेन, 2020
शांतनु सेन, संजुक्ता बसु के साथ मिलकर, इस कृति के लेखक के रूप में पहचाने जाने के नैतिक अधिकार पर जोर देते हैं।
पहला संस्करण: मार्च 2020
प्रकाशन में सहायता: ऑथर्सअपफ्रंट
सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी भाग लेखक की पूर्व लिखित अनुमति के बिना, या कानून द्वारा स्पष्ट रूप से अनुमत होने पर, या संबंधित पुनरुत्पादन अधिकार संगठनों के साथ सहमत शर्तों के तहत, किसी भी रूप में या किसी भी माध्यम से पुनरुत्पादित, संग्रहीत या प्रसारित नहीं किया जा सकता है। उपरोक्त के दायरे से बाहर पुनरुत्पादन संबंधी पूछताछ लेखक को भेजी जानी चाहिए।